प्रकाशक
रामकृष्ण शर्मा
हिन्दी साहित्य संसार,
नई सड़क, दिल्ली।

मूल्य
तीन रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक
नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चांदनी चौक, दिल्ली।

डॉक्टर सरला शुक्ला एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर–हिन्दी-विभाग (लखनऊ वि०वि०)
के कर-कमलो मे
सादर समर्पित

८ पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य—प्रो० शिवसहाय पाठक
९ कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा
१० हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
११ तसव्वुफ अथवा सूफीमत—डा० चन्द्रबली पाण्डेय
१२. कुछ अन्य ग्रथ तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाए आदि ।

सामग्री का उपयोग करते समय मैंने यथास्थान लेखकों का नामो कर दिया है, जहाँ कही नही कर पाया हूँ उसके लिए मै क्षमाप्रार्थी हूँ । भी मुझ से बन पडा है ग्रथ पाठको के सामने है । आलोचना के क्षेत्र मे मेर प्रारम्भिक प्रयास है जिससे इसमें अनेक त्रुटियो का पाया जाना स्वाभावि इस समय मैं सूफी-साहित्य के विशेष अध्ययन एव शोध-कार्य में रत हूँ, ईश्वरीय कृपा और विद्वानो के सहज स्नेह से वचित नही हुआ तो शीघ्र ही वर्षो में अपने सहृदय पाठकों के सम्मुख कुछ उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करूँ पर यह भविष्य की बात है ।

हिन्दी साहित्य ससार, नई सडक देहली के सुयोग्य व्यवस्थाप रामकृष्ण शर्मा जी का मै विशेष कृतज्ञ हूँ जिनके आग्रह के फलस्वरूप ह ग्रथ का प्रणयन और प्रकाशन हो सका । ग्रथ-निर्माण में दुर्भाग्यवश मुझे से भी सहायता नही मिली है, इससे उसकी समस्त त्रुटियों का दायित्व म ऊपर है ।

बस, इस समय इतना ही । आशा है सामान्य अध्येताओ एव विद्या इस लघु कृति द्वारा जायसी-साहित्य के समझने में सहायता मिलेगी । य हुआ तो मै अपना श्रम सार्थक समझूँगा ।

—दानबहादु

९-७-५८

प्रश्न-सूची

प्रश्न — पृष्ठ

-'सूफी' शब्द की व्याख्या करते हुए 'सूफी-धर्म' के उद्भव और विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कीजिए तथा भारत में उसके प्रवेश और साहित्य पर प्रभाव का भी उल्लेख कीजिए। १

-जायसी का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुए उनके कवि के उद्भव और विकास मे उसका योग बताइए। १८

-जायसी के ग्रन्थों का सक्षिप्त परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए। ३६

-हिन्दी प्रेम-गाथा काव्य का सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए उसमें जायसी का योगदान बताइए। ६१

-पद्मावत का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य में उसका स्थान बताइए। ७५

-जायसी की रचनाओ में अपने मत-विशेष के प्रचार के साथ-साथ साहित्य सवर्द्धना का पक्ष भी प्रवल है, स्पष्ट कीजिए। १०२

-जायसी के प्रेमगाथा काव्य में भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनो ही शैलियो का समिश्रण है। सप्रमाण समझाइये। ११४

-जायसी की तत्कालीन तथा पूर्ववर्ती-विभिन्न परिस्थितियो का दिग्दर्शन कराइए। १२

-सिद्ध कीजिए कि पद्मावत फारसी शैली का एक मसनवी काव्य है। १३

-जायसी का अत्यधिक विलासमय वर्णन आध्यात्मिकता के चित्र को अस्पष्ट कर देता है। इस मत से आप कहाँ तक सहमत हैं ? तर्क-

\

प्रश्न १—'सूफी' शब्द की व्याख्या करते हुए 'सूफी-धर्म' के उद्भव और वकास का सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कीजिये तथा भारत मे उसके प्रवेश एव ाहित्य पर उसके प्रभाव का भी उल्लेख कीजिए।

'सूफी धर्म' के उद्भव को जानने के पूर्व 'सूफी' शब्द की उत्पत्ति का ज्ञान ाप्त कर लेना नितात आवश्यक है, वस्तुत अत्यधिक महत्वपूर्ण न होते हुए भी वद्वानो के विवाद का यह एक गभीर विषय रहा है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध ं विभिन्न मत हैं जिनमें कुछ प्रमुख मतो का उल्लेख हम यहाँ कर रहे है —

"कुछ लोगों की धारणा है कि मदीना मे मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था, उसी पर जो फकीर बैठते थे वे सूफी कहलाये। दूसरे लोगो का कहना है कि सूफी शब्द के मूल में 'सफ' (पंक्ति) है। निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एव व्यवहार के कारण औरो से अलग एक पंक्ति में खड़े किये जायेंगे, वास्तव मे उन्हीं को सूफी कहते हैं। चौथे दल के विचार में सूफी शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपातर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता । पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द वास्तव में सूफ (ऊन) से ना है। सूफधारी ही वास्तव में सूफी के नाम से विख्यात हुए। निकल्सन, ब्राउन, ारगोलियथ प्रभृति विद्वानो ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ बना है। अनेक मुस्लिम प्रतिभाओ ने भी इसे स्वीकार किया है। अस्तु हमको ह व्युत्पत्ति मान्य है। बपतिस्मा देने वाला जान या यूहन्ना भी सूफधारी था, र अब सूफी का प्रयोग मुस्लिम सत या फकीर के लिए ही नियत सा समझा ाता है।"—(तसव्वुफ अथवा सूफीमत—आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय)।

"ईसा की आठवीं शताब्दी मे इस्लाम धर्म में एक विप्लव हुआ। राजनीतिक नहीं धार्मिक। पुराने विचारो के कट्टर मुसलमानों का एक विरोधी दल 5 खडा हुआ। वह फारस का एक छोटा सा सप्रदाय था। इसने परम्परागत

डा० विमलकुमार जैन की दृष्टि में "विधि-विधानो से मुख मोड निखिल विश्व मे व्याप्त इस शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति की झलक सर्वत्र पाकर मुस्लिम साधको ने जो रहस्य अभिव्यक्त किये उन्हीं के सामजस्य का नाम सूफीमत है।" सूफीमत या तसव्वुफ भी रहस्यवाद ही है जो अन्तर्निहित भावना के सार्वकालीन एव सार्वदेशिक होते हुए भी मूलत मुस्लिम सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। विश्व मे सचाई एक है। रहस्यवाद, चाहे वह सूफीमत हो चाहे अद्वैत मत, उसी सचाई के आविष्करण का नाम है।"

"इस प्रकार सूफीमत केवल आदर्शवाद से परे तथा बौद्धिक स्तर को आधार न बनाता हुआ एक धर्म है। जिसमे रहस्य के प्रकटन का प्राधान्य होता हुआ भी चमत्कार को कोई स्थान नहीं है।"

डा० लक्ष्मीधर शास्त्री ने भाषा-विज्ञान के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस्लाम से पूर्व दक्षिणी अरब और यीमेन की सभ्यता का उद्गम भारतीय था। ईसा की तीसरी शताब्दी में ईसाई प्रचारको ने अरब में पग रखे और नजरान में आकर बसे। ईसाई साधु इतस्तत भ्रमण करते तथा हनीफ लोगो को मूर्ति पूजा के त्याग और एकेश्वरवाद की शिक्षा देते। साथ ही सन्यस्त जीवन को अपनाने के लिए उत्साहित करते थे और सादा वस्त्र एव अनेक प्रकार के भोजनो से निवृत्ति की शिक्षा भी देते थे। कुरान में भी इसाइयो की प्रशसा की गई है।

"इस्लाम से पूर्व अरब में बहुविवाह प्रचलित था। वह प्रथा मुसलमानों में भी आई। ईसाई मत इस विषय में प्रभाव न डाल सका। अनेक गुह्य मण्डलियाँ भी थीं तथा देव दासियों का भी प्रचार था, जिनके द्वारा रति को प्रदीप्ति मिल रही थी। साधको ने उस रति भाव को रति परक कर दिया जिसमें कुरान मे वर्णित, ईश्वर सब का है, विश्व के सारे धर्म उसी एक की आराधना करते हैं, भिन्न-भिन्न रूपों में वही किसी महापुरुष द्वारा सद्ज्ञान प्रचारित करता है। अत दृश्य भिन्न रूपता नगण्य है। इन शिक्षाओं ने उदारशयों के हृदय में विश्व बन्धुत्व उत्पन्न कर बडा योग दिया। आगे चलकर यही रतिभाव

सूफीमत का आधार बना। सूफी साधको ने इसी सांसारिक प्रेम को दैवी प्रम की सीढी माना।" —डा० विमलकुमार जैन

मुहम्मद साहब के जीवन का अध्ययन हमे बतलाता है कि वे ससार से विरक्त भी थे। ससार का अतर्द्वन्द उन्हे कभी-कभी विकल कर देता था और वे एकान्त चिन्तन में लीन रहते थे। चालीस वर्ष की अवस्था से कुछ पूर्व वे हेरा की गुफाओ मे चले जाते थे और कई दिनो पर्यन्त ईश्वरीय ध्यान मे निमग्न रहते थे। सन् ६०९ ई० रमजान के दिनो मे एक रात उसी गुफा मे उन्हे ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त हुई। उनमें दैवी गिरा अवतरित हुई। कुरान उसी का परिणाम है। उन्होने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित किया। हेरा की गुफा का यही चिन्तन सूफीमत के चिन्तन का प्राथमिक आधार बना। इस प्रकार आदि सूफियो को अतिम रसूल के जीवन में सूफीमत के बीज मिले।

कुछ सूफियो का कथन है कि सूफीमत का आदम मे बीजवपन हुआ, नूह मे अकुर जमा, इब्राहिम में कली खिली, मूसा मे विकास हुआ एव मसीह मे परिपाक और मुहम्मद मे फलागम हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफीमत अथवा तसव्वुफ के आविर्भाव मे पैग-म्बर साहब की शिक्षाओ एव उनके निजी व्यक्तित्व ने पर्याप्त सहयोग दिया। मुहम्मद साहब द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कोई नई चीज नही थी वरन् वैदिक तथा ईसाई एकेश्वरवाद का ही यह प्रतिरूप था। ईश्वर का जो स्वरूप वर्णित है उसमे सूफियो के लिए रहस्यवाद के बीज विद्यमान थे। सूफी ईश्वर को भय का कारण न मानकर प्रेम का पात्र मानते है। कुछ लेखको का विश्वास है कि सूफीमत का मूल स्रोत कुरान ही है जिसका रहस्यपूर्ण अर्थ केवल सूफियो के हृदय में ही प्रकाशित हुआ था।

"सूफियों की भावाविष्टावस्था उनके प्रेमोन्माद और परमात्मा को पाने की आतुरता कुरान से आई हुई नहीं जान पड़ती। इस्लाम धर्म की प्रकृति में इस प्रकार की रहस्यवादी भावना नहीं है। वैसे ऐसा कहने का अर्थ यह नहीं है कि रहस्यवादी भावना इस्लाम में एकदम नहीं है, लेकिन इतना अवश्य है

कि प्रारम्भिक काल के धार्मिक प्रवृत्ति वाले मुसलमानो का ध्यान उसकी ओर नही था। मनुष्य और परमात्मा के बीच प्रेम का सम्बन्ध तथा अन्य रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ उसमें बाहर से आईं।" —प्रो० रामपूजन तिवारी

सूफीमत की रहस्यात्मक प्रवृत्ति जब इस्लाम से नही आई तो आखिर कहाँ से आयी। इस सम्बन्ध मे कुछ योरूपीय विद्वानो ने खोज की है जिनमे से अधिकाश का यह मत है कि उस काल मे जिस समय सूफीमत ने रूप लेना प्रारम्भ किया था ग्रीक दर्शन और ग्रीक विचारको का प्रभाव इस्लामी दुनियाँ मे अधिक था।

एडलवर्ट मर्क्स ने सूफी मत का आविर्भाव यूनानी दर्शन से बताया है।

ब्राउन का कहना है कि अन्य विचार धाराओ की अपेक्षा सूफीमत के सिद्धान्तो के बनने मे नव अफलातूनी दर्शन का सबसे अधिक हाथ है।

निकोल्सन ने यूनानी प्रभाव को सूफीमत के आविर्भाव तथा विकास मे प्रमुख स्थान दिया है उसके अनुसार यूनानी प्रभाव के कारण इस्लाम के प्रारम्भ कालीन सन्यास का रूप बदल गया और रहस्यवादी प्रवृत्तियो का उसमे प्रवेश हुआ तथा सन्यास जीवन के क्रिया-कलापो का उद्देश्य यह माना जाने लगा कि वे आत्मा की शुद्धि के लिए साधन मात्र है। आत्म शुद्धि का प्रयोजन यह समझा जाता था कि आत्मा विशुद्ध होकर परमात्मा को जान सके, उससे प्रेम कर सके तथा उसके साथ एकत्व प्राप्त कर सके। इसके साथ ही निकोल्सन ने सूफीमत पर ईसाई धर्म तथा बौद्ध धर्म का भी प्रभाव माना था।

सूफियो की अनेक क्रियाओ मे भारतीयता की छाप है। वान क्रेमर के साथ गोल्डजिहिर इस बात पर एक मत है कि सूफियो के भावाविष्टावस्था को उत्पन्न करने वाली कुछ क्रियाये तथा प्राणायाम आदि जैसी क्रियाये भी निस्सन्देह सूफीमत मे भारत से आयी।

वान क्रेमर ने सूफीमत पर ईसाई साधको के तापस जीवन और बौद्धो की चिन्ताधारा दोनो का प्रभाव माना है। उसकी दृष्टि मे बौद्ध तत्व चिन्ता

के द्वारा इस्लाम की रहस्यवादी प्रवृत्ति मे जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए वही सूफीमत के रूप मे प्रगट हुआ।

सोपेनहावर ने सूफीमत पर भारत का पूर्णत प्रभाव माना है।

बहुत लोगो का ऐसा भी कहना है कि सूफीमत वास्तव में हिन्दुओ के वेदान्त दर्शन का इस्लामी संस्करण है।

कुछ लोगों का ऐसा भी कहना है कि सूफीमत वास्तव में आर्य जाति के धार्मिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ जब कि कुछ लोगो ने इसके आविर्भाव को सेमेटिक (शामी) धर्म की विजय के विरुद्ध आर्यों की प्रतिक्रिया माना है।

प्रोफेसर रामपूजन तिवारी ने उपर्युक्त समस्त मतों की चर्चा करते हुए आगे लिखा है कि **"जिस काल में सूफीमत के रूप ग्रहण करने की बात कही जाती है उस काल के पहले से ही भारतवर्ष के साथ अरबो का घनिष्ट सम्बन्ध हो चुका था। इन राजनीतिक और व्यापारिक सम्बन्धो के साथ वे यहाँ के लोगो के रहन-सहन धर्म साधना पद्धति आदि के सम्पर्क में भी आये। वे यहाँ के बौद्ध सन्यासियो तान्त्रिकों सिद्ध पीठो से अवगत हो चुके थे। सिंध के लोगो से उनका घनिष्ट सम्बन्ध होना बिलकुल स्वाभाविक है। सिन्ध में उस काल में बौद्ध धर्म का प्रचार था। इसका पता अरबो के विवरण से चलता है।"**

-दो प्रकार की संस्कृतियाँ अगर पास ही पास हो तो वे एक दूसरे को प्रभावित करती है। साधारण जनता का वाह्याचारो से परिचित होना स्वाभाविक है। मुस्लिम जनता ने निकटवर्ती क्षेत्रो मे बौद्धश्रवणों की दिनचर्या सन्यासी जीवन आदि को देखा था और बहुत अशो मे वह प्रभावित भी हुई थी। इन वाह्याचारों के साथ बौद्ध दर्शन का भी कुछ-कुछ परिचय धार्मिक प्रवृत्ति वाले मुसलमानो को था। सूफी साधको ने माला का व्यवहार इन बौद्ध भिक्षुओ से सीखा। कट्टर मुसलमान इन साधको को माला का व्यवहार करते देख अप्रसन्न होते थे। बाद मे कुछ परिवर्तनो के साथ इस्लाम मे भी माला का समावेश हो गया।

भारतीय चिन्ताधारा से अरब तथा अन्य देशो का परिचय साहित्य, ज्योतिष, गणित आदि द्वारा भी हुआ था।

अन्त में प्रो० तिवारी इस निष्कर्ष पर आते है कि "इसके आविर्भाव तथा विकार मे अन्य धर्म और मतो जैसे भारतीय वेदान्त, बौद्धधर्म, नास्टिक मत, नव अफलातूनी तथा यूनानी दर्शन का प्रभाव रहा है। लेकिन यह प्रभाव नकल के रूप में नहीं रहा है वल्कि उन बाहरी विचारधाराओं को सूफी साधकों एव तत्व-चिन्तको ने अपने ढग से अपनाया और सूफीमत का विकास इस्लाम धर्म को ध्यान मे रखते हुए ही हुआ।"

वस्तुत सूफीमत के आविर्भाव का केन्द्र-विन्दु कोई एक नही। न तो यह मत इस्लाम से निकला और न बौद्ध, हिन्दू अथवा ईसाई धर्मो से। इस धर्म के मूल में प्रारम्भ में तापसी जीवन व्यतीत करने वाले पवित्र साधुओ की उस सात्विक मनोवृत्ति का वास है जो पारलौकिक प्रेम को प्राप्त करने में उनकी सहायिका रही है। कालान्तर में विभिन्न धर्मो, जातियो और सस्कृतियो तथा परिस्थितियो के सम्पर्क मे आने से समयानुकूल उसमे परिवर्तन होते गय। जिसमें अनेक नवीन तत्वो का समावेश भी हुआ। इस प्रकार उत्तरोत्तर इसका विकास होता गया। यही कारण है कि सूफीमत में वे सभी तत्व हैं जिनके द्वारा मानवता का उच्चतर भाव भूमि पर अनुभव और विकास होता है। सूफीमत की मूल प्रेरक भावना को किसी एक धर्म, जाति या परम्परा की सम्पत्ति नहीं कहा जा सकता।

सूफीमत का विकास—इस्लामी धर्म तथा शासन सम्बन्धी सस्थाओ के अध्यक्ष मुहम्मद का निधन ८ जून ६३२ ई० को हुआ। उनकी प्रिय पत्नी आएशा के पिता अबूवकर उनके उत्तराधिकारी निर्वाचित हुए। किन्तु उनके समय मे स्थान-स्थान पर विद्रोह की ज्वाला फूटी। प्रथम वार एक अस्त-व्यस्तता नजर आई, तदुपरि उनके उत्तराधिकारी 'उमर' खलीफा हुए और फिर उनके वाद उस्मान अध्यक्ष चुने गये। उस्मान के समय मे ही अरब ने शीघ्रता से विलासिता की ओर कदम वढाये। इस्लाम की पवित्रता अव काल्पनिक वस्तु रह गई। वारह वर्षो के अल्प-जीवन में ही वह इस गति को प्राप्त हुआ। उस्मान ६४४ ई० मे खलीफा हुए थे। उस्मान के वाद ६५६ ई० मे अली जो कि ईश्वरीय दूत के दामाद थे इस वार इस्लामी धर्म तथा शासन सम्वन्धी सस्थाओ

के अध्यक्ष नियुक्त हुए। किन्तु इनके समय मे स्थिति और भी डावाँडोल हो गई। स्वार्थो की आँधी ने उनके सिंहासन को डगमगा दिया। मुआवियाबिन अबी सुफया के अधिनायकत्व में एक भारी विद्रोह हुआ और एक दर्द-भरी कहानी के साथ अन्तत मुआविया खलीफा हुए।

इस समय तक मुहम्मद के चारो साथी विश्व से विदा ले चुके थे। मुआविया ने, जो इस समय खलीफा के पद पर था, सर्वप्रथम अपने को बादशाह कहा। किन्तु जनता इससे बहुत ही असन्तुष्ट थी। धीरे-धीरे उसमे दो दल हो गये—सिया और खारिजा। ६८० ई० में अली के पुत्र हुसेन ने सामने आकर अपने को सच्चा खलीफा पद का अधिकारी कहा। इस समय मुआविया का पुत्र यजीद सिंहासन पर था। उससे हसन हुसेन का भीषण युद्ध हुआ। कर्बला की भूमि रक्त-रंजित हो गई। हसन-हुसेन तथा उसके सभी साथी मृत्यु को प्राप्त हुए। यजीद बड़ा नृशस था। उसने मक्का तथा मदीना पर भी अत्याचार किया। इसकी प्रतिक्रिया हुई। मुख्तार नाम के एक व्यक्ति के नेतृत्व मे लोगो ने उसे मार डाला। सीरिया के अरब भी उत्तरी और दक्षिणी अरबो में विभक्त हो गये।

इस्लाम की जन्मदात्री अरब की पुण्य भूमि का सातवी शताब्दी का यही इतिहास है। इस समय तक जनता इन विद्रोहो और क्रान्तियो से ऊब चुकी थी। उसे अब सन्देह होने लगा कि क्या मुहम्मद साहब की शिक्षा यही मार-काट सिखाती थी ? क्या कुरान ने मानवता का इसी पथ का प्रदर्शन किया था ? क्या इस्लाम के अधिष्ठाता का यही आदर्श स्वरूप था ? इस प्रकार के अनेक प्रश्न उस समय की शान्ति-प्रिय जनता के मस्तिष्क मे उठने लगे थे। मुहम्मद साहब की मृत्यु को अभी सौ वर्ष भी नही बीते थे कि इसी बीच पतन का यह ताण्डव नर्तन और नृशसता का यह रूप प्रकट हुआ। जनता को इनसे भारी विरक्ति हो गई और वह कुरान के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए लालायित हो उठी। परिणाम स्वरूप एक वर्ग बन गया जिसने कुरान का एक दूसरा ही अर्थ निकालना आरम्भ किया। सूफी-धर्म का मूल यही से इस्लामी सम्पर्क लिए आरम्भ होता है।

आठवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध शान्तिपूर्ण ढग मे बीता। खलीफाओ ने राज्य-व्यवस्था में उन्नति करवाई। जनता के उपर्युक्त वर्ग को कुछ सोचने-समझने का अवसर मिला और विद्या तथा कला की विशेष उन्नति हुई।

आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे पुन विप्लव आरम्भ हुए। मुस्लिम जनता का एक अल्पसख्यक वर्ग इससे घबरा गया। शान्ति की भूखी जनता विह्वल हो उठी। यह अशान्ति और उच्छृङ्खलताओ का युग था। सलमान पारसी के नेतृत्व में एक धार्मिक सुधार आन्दोलन हुआ। सलमान पारसी ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का उपासक था। ईश्वर और मनुष्य के बीच प्रेम का सम्बन्ध ही वह सर्वोत्तम मानता था। उसका वह प्रेम सासारिकता से दूर आध्यात्मिक प्रेम था। पर उसने विश्व की भी उपेक्षा नही की, प्रकृति में उसी परमात्मा का प्रतिबिम्ब देखा। सूफी धर्म का प्राण रहस्यवादी प्रेम यही से जीवन आरम्भ करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सातवी शताब्दी के अन्त में सूफी धर्म का आकारिक आविर्भाव होता है और नवी शताब्दी तक उसे विकास का स्वरूप मिल जाता है। फिर उत्तरोत्तर उसकी गति का अपना अस्तित्व बनता गया। इसी विकास-कथा को डा० कमलकुलश्रेष्ठ ने निम्न चार कालो में बाँटा है जिन्हे हम साभार उद्धृत करते हैं—

१—तापसी जीवन—(८-९वी शताब्दी ईसवी)।

२—सैद्धान्तिक विकास (१०-१३वीं शताब्दी ईसवी)।

३—सुसगठित सम्प्रदाय (१४-१८वीं शताब्दी ईसवी।

४—पतन (१९वीं शताब्दी ईसवी से आधुनिक समय तक)।

तापसी जीवन—ऊपर हमने बताया है कि "ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्त में जनता का एक वर्ग इस्लाम के प्रचलित स्वरूप से सशकित हो उठा था। सम्भवत उसका यह दृढ विश्वास हो चला होगा कि मोहम्मद साहब की शिक्षा में कुछ और अधिक गहराई है। कुरान मानवता को किसी दूसरे मार्ग पर जाने का आदेश देती है और इस्लाम के धवल प्रकाश नें किसी दूसरे

समुन्नत लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पंथ को आलोकित किया है। इस वर्ग के मनुष्यो को मोहम्मद साहब का जीवन तथा कुरान की पवित्र पुस्तक कुछ दूसरी शिक्षायें देती थी। यह वर्ग उस समय के पतनोन्मुख समाज से अलग एकान्त मे व्यष्टि का तापसी जीवन व्यतीत करता था। सूफी-धर्म की प्रारम्भिक उत्पत्ति इसी मे अन्तर्निहित है। मोहम्मद द्वारा प्रचारित इस्लाम धर्म के धवल प्रकाश में कई रंग की किरणें मिली हुई थीं। राजनीति के शीशे ने उनको अलग-अलग विखरा दिया। शिया, खारिजा, मुर्जिया और कादरी सम्प्रदायों ने सबसे पहिले जन्म लिया।" —डा० कमलकुलश्रेष्ठ। वाद मे ये सम्प्रदाय उपसम्प्रदायो में विभक्त हो गए।

ईसा की सातवी शताब्दी मे सूफी साधक परम्परागत धर्म की पावन्दी और इसके नियम-कानूनो को मानकर ही चलते थे। उस समय तक सूफीमत नकारात्मक विशेष था। उसके सिद्धान्तो का उस समय तक समुचित विकास नही हो पाया था। इस समय तक वे न साधना के मानसिक पक्ष की ही ओर अग्रसर हो पाये थे और न पूरा-पूरा फकीरो जैसा जीवन विताने तक ही सीमित है। पैगम्बर के कुछ विशेष वचनो और उपदेशो को वे अत्यधिक महत्व देते थे। धीरे-धीरे तत्व-चिन्तन की ओर भी अग्रसर होने लगे। किन्तु यह तत्व-चिन्तन की प्रवृत्ति भीतर ही भीतर काम कर रही थी। प्रकाश में लगभग सौ वर्षो के वाद आई।

ईसा की आठवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो में सूफी साधना का मानसिक पतन प्रवल होता गया और सूफी साधको ने परम सत्ता की सर्वव्यापकता तथा प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परम सत्ता के दर्शन करने के सिद्धान्त को अधिक से अधिक अपनाया। वगदाद उस काल मे एक जवरदस्त सास्कृतिक केन्द्र था। अब्बासी खलीफो के दरवार मे विद्वानो और अन्य सुधी जनो को पूरा सम्मान था। वाहर के विद्वान वहाँ आते थे और इसाइयो, वौद्धो तथा मुसलमानो के वीच शास्त्रार्थ हुआ करता था इसका प्रभाव सूफी साधको पर पडा। ईसा की आठवी शताब्दी के पिछले दस पद्रह वर्षो से लेकर नवी शताब्दी के लगभग साठ वर्षो तक, ७५ वर्षो का काल सूफीमत के विकास की एक नई दिशा की

आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध शान्तिपूर्ण ढंग से बीता। खलीफाओं ने राज्य-व्यवस्था में उन्नति करवाई। जनता के उपर्युक्त वर्ग को कुछ सोचने-समझने का अवसर मिला और विद्या तथा कला की विशेष उन्नति हुई।

आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुनः विप्लव आरम्भ हुए। मुस्लिम जनता का एक अल्पसंख्यक वर्ग इससे घबरा गया। शान्ति की भूखी जनता विह्वल हो उठी। यह अशान्ति और उच्छृङ्खलताओं का युग था। सलमान पारसी के नेतृत्व में एक धार्मिक सुधार आन्दोलन हुआ। सलमान पारसी ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का उपासक था। ईश्वर और मनुष्य के बीच प्रेम का सम्बन्ध ही वह सर्वोत्तम मानता था। उसका वह प्रेम सांसारिकता से दूर आध्यात्मिक प्रेम था। पर उसने विश्व की भी उपेक्षा नहीं की, प्रकृति में उसी परमात्मा का प्रतिबिम्ब देखा। सूफी धर्म का प्राण रहस्यवादी प्रेम यहीं से जीवन आरम्भ करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सातवीं शताब्दी के अन्त में सूफी धर्म का आकारिक आविर्भाव होता है और नवीं शताब्दी तक उसे विकास का स्वरूप मिल जाता है। फिर उत्तरोत्तर उसकी गति का अपना अस्तित्व बनता गया। इसी विकास-कथा को डा० कमलकुलश्रेष्ठ ने निम्न चार कालों में बाँटा है जिन्हें हम साभार उद्धृत करते हैं—

१—तापसी जीवन—(८-९वीं शताब्दी ईसवी)।
२—सैद्धान्तिक विकास (१०-१३वीं शताब्दी ईसवी)।
३—सुसगठित सम्प्रदाय (१४-१८वीं शताब्दी ईसवी।
४—पतन (१९वीं शताब्दी ईसवी से आधुनिक समय तक)।

तापसी जीवन—ऊपर हमने बताया है कि "ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्त में जनता का एक वर्ग इस्लाम के प्रचलित स्वरूप से सशंकित हो उठा था। सम्भवतः उसका यह दृढ विश्वास हो चला होगा कि मोहम्मद साहब की शिक्षा में कुछ और अधिक गहराई है। कुरान मानवता को किसी दूसरे मार्ग पर जाने का आदेश देती है और इस्लाम के धवल प्रकाश ने किसी दूसरे

समुन्नत लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पंथ को आलोकित किया है। इस वर्ग के मनुष्यों को मोहम्मद साहब का जीवन तथा कुरान की पवित्र पुस्तक कुछ दूसरी शिक्षायें देती थी। यह वर्ग उस समय के पतनोन्मुख समाज से अलग एकान्त मे दृष्टि का तापसी जीवन व्यतीत करता था। सूफी-धर्म की प्रारम्भिक उत्पत्ति इसी मे अन्तर्निहित है। मोहम्मद द्वारा प्रचारित इस्लाम धर्म के धवल प्रकाश में कई रंग की किरणें मिली हुई थीं। राजनीति के शीशे ने उनको अलग-अलग बिखरा दिया। शिया, खारिजा, मुर्जिया और कादरी सम्प्रदायो ने सबसे पहिले जन्म लिया।" —डा० कमलकुलश्रेष्ठ। बाद मे ये सम्प्रदाय उपसम्प्रदायो में विभक्त हो गए।

ईसा की सातवी शताब्दी मे सूफी साधक परम्परागत धर्म की पाबन्दी और इसके नियम-कानूनो को मानकर ही चलते थे। उस समय तक सूफीमत नकारात्मक विशेष था। उसके सिद्धान्तो का उस समय तक समुचित विकास नही हो पाया था। इस समय तक वे न साधना के मानसिक पक्ष की ही ओर अग्रसर हो पाये थे और न पूरा-पूरा फकीरो जैसा जीवन विताने तक ही सीमित है। पैगम्बर के कुछ विशेष वचनो और उपदेशो को वे अत्यधिक महत्व देते थे। धीरे-धीरे तत्व-चिन्तन की ओर भी अग्रसर होने लगे। किन्तु यह तत्व-चिन्तन की प्रवृत्ति भीतर ही भीतर काम कर रही थी। प्रकाश में लगभग सौ वर्षो के बाद आई।

ईसा की आठवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे सूफी साधना का मानसिक पतन प्रबल होता गया और सूफी साधको ने परम सत्ता की सर्वव्यापकता तथा प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे परम सत्ता के दर्शन करने के सिद्धान्त को अधिक से अधिक अपनाया। बग़दाद उस काल मे एक जबरदस्त सांस्कृतिक केन्द्र था। अब्बासी खलीफो के दरबार में विद्वानो और अन्य गुणी जनो को पूरा सम्मान था। बाहर के विद्वान वहाँ आते थे और ईसाइयो, बौद्धो तथा मुसलमानो के बीच शास्त्रार्थ हुआ करता था इसका प्रभाव सूफी साधकों पर पड़ा। ईसा की आठवी शताब्दी के पिछले दस पंद्रह वर्षो से लेकर नवी शताब्दी के लगभग साठ वर्षो तक, ७५ वर्षो का काल सूफीमत के विकास की एक नई दिशा की

सूचना देता है। उसके पहले के साधक फकीरों सा सादा जीवन बिताते थे और इस प्रकार के जीवन को वे ईश्वरीय विधान के अनुरूप समझते थे। फकीरी जीवन बिताने के साथ-साथ उन साधकों ने परम सत्ता का प्रियतम के रूप में देखा। इसके लिए उनके हृदय में प्रेम की व्याकुलता थी। उसका प्रेम पाना ही उनके लिए अभीष्ट था। प्रेम की यह विह्वलता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इस काल के साधक प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परम सत्ता के दर्शन पाने लगे तथा अहं को खो कर बेखुदी की हालत में परम प्रियतम का साक्षात्कार करने लगे।

सारांश यह है कि इस समय का सूफी-धर्म अत्यधिक व्यवहारिक था और अपने आदर्श के निकट था। पार्थिव संघर्षों से दूर प्रकृति की एकांतिक गोद में उसका विकास हो रहा था। सूफी धेय के सिद्धान्त, निर्माण की राह में थे।

सैद्धान्तिक विकास—उपर्युक्त बातों की चर्चा करते हुए प्रो० रामपूजन तिवारी लिखते हैं कि "**सूफियों के प्रेम और बेखुदी के सिद्धान्त इस्लाम के धर्मानुयायियों को खटकने वाले थे। सूफी इस्लाम के बाह्य आचारों को उतना महत्व नहीं देते थे और उनकी व्याख्या अपने ढंग से करते थे। केवल बाह्य आचार का यन्त्रवत पालन करना सूफियों की दृष्टि में बेकार था। वे अन्तर की शुद्धि तथा हृदय से धर्म के नियमों को समझना और उनका पालन करना ही असली धर्म का पालन करना मानते थे। इसका फल यह हुआ कि बहुत से सूफी साधकों को प्राण गवाँ देने पड़े और कितनों को निर्वासित होना पड़ा।**" राबियाँ और उसकी सहेलियों को शरीयत विरुद्ध भावनाओं के प्रकाशन के लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। बरजा के हाथ पैर काट गये। किन्तु इन सन्त महिलाओं ने रसूल की (मुहम्मद) की उपेक्षा की और सारे जीवन को परमेश्वर के प्रेम में प्लावित कर दिया। मीरा जिस तरह अपने को कृष्ण की दुलहिन समझती थी उसी तरह राबियाँ और उसकी सखियाँ अपने को अल्लाह की दुलहिन समझती थीं। उनके उद्गारों में जहाँ प्रेम का पुनीत दर्शन है, जहाँ भावना का दिव्य विलास है, वहाँ वेदना का भी प्राचुर्य है। मंसूर शतम प्रेमी जीव था। इसी से शरीयत के उपासक उसके प्राणों के ग्राहक हो गये।

पर इससे वह घबराया नही। हँसते-हँसते प्राण गवा दिया। **'अनहलक'** कह कर उसने भारतीय ब्रह्मवाद के **'तत्वयसि'** की बात दुहराई। सूफियो के अनेक सिद्धान्त कसूर (हल्लाज) से ही आरम्भ होते हैं। उसी ने **'हुलूल', 'लाहूत', 'नासूल', 'नूर मुहम्मदी', 'अम्र, और अनलहक'** की व्याख्या की।

सनातन पथी इस्लाम के साथ सूफीमत के विरोध को दूर करने तथा इन दोनो मे सामन्जस्य बैठाने का सर्वाधिक श्रेय गजाली को है। सनातन पथियों के बीच सूफीमत के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव ग़ज़ाली के ही कारण आया। अब तक बहुत से लोग सूफियो में काफी प्रसिद्धि पा चुके थे और गुरु परम्परा का प्रणयन हो चुका था। यह बात पूर्ण रूप से मान ली गई थी कि बिना मुर्शीद (गुरू) के आध्यात्मिक जीवन के रहस्य नही मालूम हो सकते।

इस काल में सूफी सिद्धातो का विकास हुआ। अनेक सैद्धान्तिक पुस्तको का प्रणयन हुआ। सूफियो में जिस प्रेम का प्रचार तेजी से हो रहा था उसकी तीन कोटियाँ निर्धारित की गईं—निकृष्ट, मध्यम और उत्तम। परमसत्ता के स्वरूप के विषय में दो विचारधारायें प्रचलित हुईं १—परमसत्ता प्रकाश स्वरूप है और २—परमसत्ता विचार स्वरूप है। इन भावनाओ के विकास में इब्न सीना, इब्न अरबी और इब्न जीली का प्रमुख हाथ था। इब्न सीना के अनुसार **"परमसत्ता का स्वरूप शाश्वत सौन्दर्य भरा है। आत्म-अभिव्यक्ति उसकी विशेषता एवं प्रकृति है। वह अपना स्वरूप सृष्टि मे प्रतिबिम्बित कर देखती है। आत्म-अभिव्यक्ति ही उसका प्रेम है जो सारे संसार में व्याप्त है। प्रेम सौंदर्य का आस्वादन है और सौंदर्यपूर्ण होने के कारण प्रेम भी पूर्ण है। इस प्रकार प्रेम संसार की जीवन शक्ति है। प्रेम के द्वारा ही मानवात्मा परमात्मा से एकत्व की अनुभूति करती है।"**—इसी तरह इब्न अरबी और इब्न जीली ने भी अपने सैद्धातिक विचार व्यक्त किए। इब्न जीली हिन्दू धर्म से पूर्ण परिचित था।

सूफी धर्म के विकास में इस काल के अनेक कवियो का योग भी महत्वपूर्ण रहा है। ईश्वर तथा उसके प्रेम, जीवन और जगत की विवेचना इन कवियो के काव्यो में हमें मिलती है, साथ ही सैद्धान्तिक चर्चा भी।

अस्तु उपर्युक्त वातो के साथ डा० कमलकुलश्रेष्ठ के शब्दो में हम कहेंगे कि "इस काल मे सूफी-धर्म एक सुनियमित सम्प्रदाय वन गया। सूफी प्रवृत्तियों एव धर्म नियमों का शास्त्रीय विवेचन किया गया। इससे धर्म की रूपरेखा अति स्पष्ट हो गई। पार्थिव सघर्षों से भागकर तापसी जीवन का अवलम्बन लेने वाले थोडे से सन्त इस समय बहुसख्यक हो गये थे और उनका प्रभाव नागरिकों पर बढ़ता जा रहा था। इस समय के सूफी सिद्धान्त निर्माताओं को राज्याश्रय भी प्राप्त था। शास्त्रीय विवेचन के लिए एक पारिभाषिक शब्दावली का भी निर्माण किया गया।"

अव सूफीधर्म इस्लाम की एक नवीन व्याख्या देने लगा था जिसका आधार दर्शन था। गुरुओ के नामो पर विभिन्न सम्प्रदाय वन-वनकर अपना प्रचार मार्ग निश्चित कर रहे थे।

सुसगठित सम्प्रदाय—यह काल सप्रदायो का काल था। अनेक प्रतिष्ठित सन्तो ने स्वकीय मतानुसार आध्यात्मिक शिक्षा के प्रचारार्थ इनकी स्थापना की। ए० एम० ए० शुष्टरी ने लिखा है कि "इनकी सख्या १७५ से भी अधिक थी किन्तु सभी गण्य नहीं हैं। उनमे से कादरी, तेफुरी, जुनेदी, नक्शवंदी, शाधिली, शत्तारी, मौलवी और चिश्ती अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।"

"इन सम्प्रदायों में स्त्री-पुरुष समान रूप से प्रवेश पाते थे। अनेक स्थलों पर मठ वने हुए थे जिनमे मुरीदों (शिष्यों) को शेख (गुरू) के समक्ष कर्तव्यशील एव आज्ञापालक रहने की शपथ लेकर कुछ वर्ष अध्ययन करना पड़ता था। कुछ सम्प्रदायों में अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ समझा जाता था परन्तु अधिकाशत इस विचार को मान्यता प्राप्त न हुई। सम्प्रदायों मे विभिन्नता होते हुए भी मूल सिद्धान्तो की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं था। केवल कालानुसार व्याख्या के अन्तर से अन्तर आ गया है। इनमें अपने कुछ अभ्यास होते थे जिन्हें वे कठोरता से पालन करते थे। एकान्तवास, मौन, स्वाध्याय, जप एव ध्यान को वडा महत्व दिया जाता था। जुनेद ने अपने सूफीमत को आत्म-समर्पण, उदारता, धैर्य, मौन, विरक्ति, ऊनी वस्त्र, यात्रा एव निर्धनता रूप उन श्रेष्ठ गुणो पर आश्रित किया था जिनका आदर्श इस्साक, अब्राहम, अयूब, जकरिया, मूसा,

ईसा, यही और मुहम्मद साहब मे विद्यमान था। सालिक (नव शिक्षित) को इनमें एक को अपनाना पड़ता था, जिसके द्वारा वह लक्ष्य सिद्धि की ओर बढता था। प्राय सभी सम्प्रदाय इन्हीं या ऐसे ही गुणो का आचरण परमावश्यक समझते थे।"—डा० विमलकुमार जैन।

इस सम्प्रदाय काल में कोई सैद्धान्तिक उन्नति नही हुई। कुछ ग्रथ लिखे अवश्य गए पर उनका कोई महत्व विशेष नही। इस काल मे प्रचार कार्य के साथ-साथ दिखावे की प्रवृत्ति बढी और करामातो का प्रदर्शन भी। प्रत्येक सन्त करामाती बनता था और उसके शिष्य उसकी करामातो का प्रचार करते थे। अन्ध-विश्वासी और भोली-भाली जनता सहज ही इन करामातो के चक्कर में आ जाती थी और पीरो को ब्रह्म के सदृश ही पूजने लगती थी। यही सूफी-धर्म के पतन का कारण हुआ।

पतन काल—यह काल अपने नाम से ही अपने कार्यो का विवरण द रहा है। करामाती सूफी सत जब अपनी पवित्रता खो बैठे, सिद्धान्तो से गिर गए, केवल दिखावा और प्रदर्शन ही उनका एकमात्र सहारा रह गया, तो ऐसे समय मे इस धर्म का पतन हो ही जाना चाहिए। सम्प्रदायो की सख्या इतनी बढ चली कि उनका निज का अस्तित्व ही खतरे में पड गया। प्रत्येक सूफी अपना-अपना सम्प्रदाय चलाने के चक्कर में पडने लगा। लेकिन भीतर से खोखला होने के नाते उसे अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिल सकी। शिष्य गुरुओ की गरिमा और असलियत से परिचित हो गए। ये आडम्बरपूर्ण करामाती-करिश्मे अधिक दिन तक अपने अस्तित्व की रक्षा न कर सके। विश्व की राजनैतिक परिस्थितियो में भी विविध परिवर्तन हुए। धर्म से लोगो की आस्था हटने लगी। वैज्ञानिक प्रकाश में धार्मिक विचार चकाचौंध से अपना रास्ता भूल गए। जनता मे भी जागृति आई। नवयुग की लहर सबके मानस से टकरा-टकरा कर सब को जगाने लगी। ऐसी दशा मे सूफीमत के ये खोखले धर्माध्यक्ष कहाँ तक उसकी रक्षा कर पाते। उनके आडम्बरो का पर्दाफाश हो गया और जनता का विश्वास उनसे उठ चला। सूफी-धर्म विश्व के धार्मिक गगन के एक कोने मे मन्द प्रकाश से लघु नक्षत्र के रूप में टिमटिमा रहा है जिसका होना या न होना

इस विश्व के लिए कोई महत्व नही रखता। आज भी कुछ सूफी मिल जाते हैं किन्तु उनको समाज में कोई स्थान नही।

भारत मे प्रवेश और साहित्य पर प्रभाव—यह निश्चित रूप मे नही वताया जा सकता कि सूफी धर्म भारतवर्ष में कब और किसके द्वारा आया। वैसे इस्लाम तो उत्तरी भारत में सातवी-आठवी शताब्दी में ही आ गया था परन्तु उसी समय सूफी सम्प्रदाय भी भारत मे आ गया हो, यह आवश्यक नही और न उसके आने का कोई प्रवल प्रमाण ही मिलता है। कुछ लोग अनुमान लगाते हैं कि आठवी शताब्दी में सूफियो का प्रवेश भारत में हो गया था। पर उनके कथन में कहाँ तक तथ्य है कुछ ठीक रूप से नही कहा जा सकता। सामान्यतया अधिकाश विद्वान इस पक्ष मे हैं कि सूफी ग्यारहवी-वारहवी शताब्दी में भारत में आये और तभी से अपना प्रचार धीरे-धीरे बढाने लगे। सर्वप्रथम पजाव और सिन्ध ही इनके शरणास्थल रहे जहाँ काफी दिनो तक अपना प्रसार करते रहे। वही पर ये वेदान्त, गोरखनाथी हठयोग, हीनयानी वौद्ध (सिद्ध) मत आदि के सम्पर्क में भी आये और परस्पर विचार-विनिमय हुआ। इस समय भारत में भक्ति-आन्दोलन चल रहा था। सम्पूर्ण देश एक विचित्र भावना से आप्लावित था। धीरे-धीरे समय बीतता गया, राजनैतिक वातावरण शात होता गया और हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर मेल-जोल की भावना वढती गई जिसकी पृष्ठभूमि पर यह सूफीमत भारत में विकसित होता गया। इस मत को भारत में फैलाने में निम्न चार प्रमुख सम्प्रदायो का नाम लिया जाता है

१—चिश्ती सम्प्रदाय—वारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे।
२—सुहरावर्दी सम्प्रदाय—तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे।
३—कादरी सम्प्रदाय—पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे।
४—नक्शवन्दी सम्प्रदाय—सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे।

ये सम्प्रदाय भारत में तुर्किस्तान, ईरान और अफगानिस्तान से विविध सतो द्वारा भारत में प्रचारित हुए। ये सम्प्रदाय राज्याश्रय प्राप्त करके भारत मे नहीं आये, इनका कोई सगठन भी नही था। इन सम्प्रदायो के सन्त अपनी

प्रेरणाओ के फलस्वरूप भारत में आये। इन सन्तो की साधना से जनता प्रभावित होती थी और राजाओं पर भी उनका प्रभाव पडता था। आचरण की पवित्रता और सात्विकता ही इनका बल था तथा इनके मत प्रचार का साधन था। ये सरल तथा सहिष्णु व्यक्ति थे। हिन्दू धर्म के निष्ठामान धार्मिक सन्तोका सत्सग करते थे और उनके गुणो को ग्रहण करने की भावना इनमें रहती थी। ये कट्टरपथी नही थे। उदारता और हृदय की विशालता इनमें कूट-कूट कर भरी थी। अनुभव सचय के लिये ये विविध स्थानो का भ्रमण करते थे और विद्वानो से भेंट करते थे। वात सदा मीठी ही करते थे। दूसरो की भवनाओ को ठेस पहुँचाने वाली स्पष्टवादी कवीर प्रवृत्ति इनमें नही थी। सूफी धर्म का प्रसार भारत में पूर्ण तया शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तो पर चल कर हुआ। यह इस्लाम का वह रूप नही था जो तलवार की धार पर चलकर या रक्त की सरिता में वह कर भारत भूमि पर आया हो। प्रेम, आत्मीयता, सरलता और सच्चरित्रता के सहारे यह विचार धारा भारत में फैली और इससे इस्लाम के प्रसार में योग मिला। यह स्थायी योग था जिसने जनता के दिलों में घर किया। किसी भय या आन्तक के कारण इसका प्रसार नही हुआ। —(श्री यज्ञदत्त शर्मा)।

जहाँ तक भारतीय साहित्य पर इस धर्म के प्रभाव का प्रश्न है वह स्पष्ट है। कवीर आदि सन्तो द्वारा जो कार्य पूरा नही हुआ वह इन सूफी साधकों ने कर दिखाया। हिन्दी काव्य और भक्ति में एक प्रेमाश्रयी शाखा ही चल निकली जिसमें सर्वाधिक योग इन मुसलमान सूफी कवियो का ही था। इसमे सन्देह नही कि इन सूफी कवियो ने अपने काव्य में अपना मुख्य उद्देश्य सूफी मत का प्रचार ही रखा है किन्तु फिर भी उनके द्वारा भाषा का उपकार हुआ। तत्कालीन वातावरण को देखते हुए हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य भावना में योग मिला। दो सस्कृतियो का एक दूसरे से अत्यधिक निकट का सम्वन्ध हुआ, परस्पर आदान-प्रदान हुआ और प्रेम की महत्ता का सर्व साधारण में व्यापक प्रसार हुआ। इन सूफि कवियों ने प्रेम के जिस एकान्तिक रूप का चित्रण किया है वह भारतीय साहित्य में विल्कुल नई चीज है। भारतीय काव्य साधना में प्रेम-

की ऐसी उत्कट तन्मयना दुर्लभ थी। विरह का वर्णन करने में ये कवि कमाल करते हैं। ये कथा-कथा के लिये नही कहते, इनका लक्ष्य (अपने धर्म के आधार पर) भगवत्प्राप्ति रहता है। इसीलिए, भगवान के विरह में जीवात्मा की तड-पन का ये वडी सजीवता के साथ वर्णन करते हैं। जायसी का पद्मावत इस परम्परा का सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्य के प्रबन्ध काव्यो में रामचरित मानस के वाद सभी दृष्टियों से इसी का स्थान है। हिन्दी का वह एक प्रभावान रत्न है जिसकी कान्ति अनन्तकाल तक वनी रहेगी और उसके प्रकाश में मानव अपने हृदय का प्रतिविम्व देखता रहेगा।

प्रश्न २—जायसी का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुए उनके कवि के उद्भव और विकास मे उसका योग बताइए।

भारत के महापुरुप और महाकवि स्वभावत वडे सकोची तथा विनयशील रहे हैं। उनके सकोच और विनयशीलता ने प्राय उन्हे अपने सम्बन्ध मे, अह-मन्यता प्रदर्शन के भय से, कुछ भी न लिखने के लिए ही प्रेरित किया। चन्द, कवीर, सूर तथा तुलमी आदि अनेक महाकवियों का जीवन वृत्त अतीत के गर्भ में सोया पडा है। दूसरी वात यह भी है कि भारतीय प्रकृति इतिहास लिखने के अनुकूल नही रही है। वे सदैव इस लोक से परे की सोचते रहे हैं। हाँ, मुस्लिन इतिहासकारो ने अपने समय के इतिहास अवश्य प्रस्तुत किए हैं जिनमें अपने आश्रयदाताओं का कीर्तिगान उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि निष्पक्ष ऐतिहासिक तथ्यो का अभाव कलाकारो के जीवनवृत्त का साक्षात्कार कराने मे जिज्ञासुओ के लिये सवसे वडा विघ्न सिद्ध हुआ है। ऐमी दशा में वाह्य साक्ष्य का आधार तथा जनश्रुतियो और किंवदतियो का आश्रय लेना पडता है।

सौभाग्यवश जायमी का अत-साक्ष्य भी इस दिशा मे हमारा सहायक है क्योंकि फारसी ममनवियो के अनुकरण पर उन्होने अपनी कृतियो में अपने विपय में कुछ विवरण दिये हैं जिन्हे प्रमाण रूप मे हमें ग्रहण करना चाहिये। वाह्य साधनो में डाक्टर जयदेव ने अपने प्रसिद्ध शोध ग्रथ 'सूफी महाकवि जायसी' में निम्न पाँच सकेत किए हे —

१—तत्कालीन ग्रथो में जायसी विषयक सकेत ।
२—सूफियों की परम्परा मे जायसी का वर्णन ।
३—जायस नगर के इतिहास मे उनका विवरण ।
४—अमेठी राज्य के इतिहास मे उनका विवरण ।
५—पीछे के व्यक्तियो की खोज का उनके विषय में निर्णय ।

अन साक्ष्य मे जायसी के तीनो ग्रथ 'पद्मावत' 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आते हैं। अब हम इस अन साक्ष्य-बहिसाक्ष्य तथा जनश्रुतियो और किवदन्तियो आदि सभी प्राप्त साधनो के वैज्ञानिक आधार पर कविवर जायसी का जीवन वृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

जन्म तिथि तथा स्थान—जायसी विरचित 'आखिरी कलाम' मे एक अर्द्धाली इस प्रकार है —

भा भोर नव सदी ।
तीस बरिस ऊपर कवि बदी ॥

इन पक्तियो का ठीक तात्पर्य तो नही खुलता, फिर भी यदि पाठ 'नव सदी' ही माना जाय तो जायसी का जन्म काल सन् ९०० हि० (१४९२ ई० के लगभग) ठहरता है। दूसरी पक्ति 'तीस बरिस ऊपर कवि बदी' का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म के ३० वर्ष उपरात जायसी अच्छी कविता करने लगे। 'आखिरी कलाम' मे ही आगे जायसी ने एक बडे भूकप तथा सूर्य ग्रहण का अतिरजित शब्दो मे वर्णन किया है। स्थल दर्शनीय है —

आवत उद्यत चार विधि ठाना। भा भूकप जगत अकुलाना ॥
धरती दीन्ह चक्र विधि भाई। फिरै अकास रहट की नाई ॥
गिरि पहाड़ मेदिनि तन हाला। जस चाला चलनी भर चाला ॥
मिरित लोक ज्यो रचा हिडोला। सरग-पताल पवन खट डोला ॥
गिरि पहाड पर्वत हिलि गए। सात समुन्द्र बीच मिलि गये ॥

× × ×

सूरज सेवक ताकर अहै। आठों पहर फिरत जो रहै॥
सो अस बपुरै गहनै लीन्हा। औ धरि बांध चंडालै दीन्हा॥

× × ×

किन्तु तत्कालीन तथा पीछे के ऐतिहासिक ग्रंथो में इस भूकप का कोई वर्णन नही मिलता। डा० ईश्वरीप्रसाद ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ A Short History of Muslim Rule in India के पृष्ठ २३२ पर सन् ९११ हिजरी (१५०५ ई०) में आगरे में आने वाले एक भयकर भूकम्प की चर्चा की है—

"Next year (911 A H = 1505 A D) a violent earth quake occurred at Agra which shook the earth to its foundations and levelled many beautiful buildings and houses to the ground

इस आधार पर हम यह कह सकते है कि ९-१० वर्षीय बालक जायसी ने उसे प्रत्यक्ष देखा होगा और अपने इस अनुभव को जन्म के सुने साधारण भूकम्प से (सम्भव है कोई आया ही रहा हो) सम्वन्वित कर दिया होगा।

'पद्मावत' कवि का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रथ है, उसमें कवि ने एक स्थान पर लिखा है—

"जायस नगर धरम अस्थानू। तहा आइ कवि कीन्ह बखानू।"

इस अर्द्धाली के 'तहाँ आइ' शब्दो ने विद्वानो को अधिक भ्रम मे डाल रखा है। इनके आवार पर डा० ग्रियर्सन तथा पण्डित सुधाकर का अनुमान है कि 'मलिक मुहम्मद' किसी और स्थान के रहने वाले थे, जायस में आकर उन्होने काव्य का सृजन किया। परन्तु यह अनुमान अन्य अधिकारी विद्वानो द्वारा पुष्टि नही प्राप्त करता। इसके मान्य न होने के दो कारण हैं—एक तो यह कि जायस नगर वाले इसे स्वीकार नही कर सकते। उनके कथनानुसार 'मलिक मुहम्मद' जायस के ही रहने वाले थे। उनके घर का स्थान अभी तक वहाँ के कचाने मुहल्ले में वताया जाता है। इसमें सन्देह नही कि जिस मकान को लोग मलिक मुहम्मद का मकान वताते हैं वह अत्यन्त ही प्राचीन तथा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। उस घर की प्राचीनता को देख यह सहज ही अनुमान

हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है कि वह जायसी का ही रहा होगा। दूसरी बात यह है कि जायसी ने 'पद्मावत' मे अपने जिन चार घनिष्ट मित्रो का वर्णन किया है वे चारो जायसी के ही थे। 'यूसुफ मलिक', 'सालार कादिम' सलोने मियाँ और बडे शेख—यही चारो व्यक्ति उनके घनिष्टतम मित्र थे। सलोने मियाँ के सम्बन्ध मे तो जायस में अभी तक यह जनश्रुति चली आती-है कि वे बड़े बलवान थे। एक बार हाथी से लड गए थे। इन चारो दोस्तो में से दो के खानदान अभी तक विद्यमान हैं। 'जायसी' का वश नही चला, पर उनके भाई के खानदान मे एक साहब मौजूद हैं जिनके पास वश वृक्ष भी है। यद्यपि वह वश वृक्ष पूर्णत ठीक नही है तथापि उससे हमारे अनुमान को बल तो मिलता ही है।

'जायस नगर धरम अस्थानू' में **'धरम अस्थानू'** पर जोर देते हुए डा० विमलकुमार जैन का कहना है कि किसी भी व्यक्ति का धर्म स्थान वही हो सकता है जो उसके लिए सर्वाधिक प्रिय और पवित्र हो। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' मे यह प्रमाणित है किसी भी मनुष्य के लिए उसकी जन्म भूमि से प्रिय तथा पवित्र स्थान और कोई नही हो सकता। डा० जैन 'धरम-अस्थानू' का अर्थ-विशेष लेते हैं जिसे सामान्य तीर्थ स्थानो की श्रेणी मे नही खीचा जा सकता। अस्तु निश्चय ही जायस, मलिक मुहम्मद का स्थान रहा होगा अन्यथा उसे वे 'धरम-अस्थानू' न लिखते।

पता नही किस आधार पर डा० रामरतन भटनागर यह अनुमान करते हैं कि "वे (अर्थात् जायसी) जायस मे पहले-पहल दस दिन के लिये पाहुने के रूप मे आये थे। यही उन्हे वैराग्य हो गया और वे यही रहने लगे। इस नगर का आदि नाम उन्होने उद्यान (उद्यान + नगर या उदयनगर) बताया है। इस नगर की कुछ धार्मिक महत्ता भी उस समय रही होगी। इसी से जायसी ने उसे 'धर्म-स्थान' कहा है।" इस प्रसग को और भी स्पष्ट करने के लिए मैं पाठको का ध्यान जायसी के ग्रथ 'आखिरी कलाम' की निम्न पक्ति की ओर आकर्षित करना चाहूँगा :—

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नांव आदि उदयानू ॥

इन पक्तियो मे **'मोर अस्थानू'** शब्द कवि की, स्थान के प्रति, दृढता व्यक्त कर रहे हैं। वह एक प्रकार से स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि जायस ही मेरा स्थान है। 'नगर क नाँव आदि उदयानू' का अर्थ रायबरेली प्रान्त के गजेटियर पृष्ठ १८१ से स्पष्ट हो जाता है कि जायस का नाम **'उदयनगर'** था। मुसलमानो ने इसका नाम जायस रखा जो फारसी 'जैश' पडाव मे निकला है। कवि ने अपनी पूर्व पक्ति की घोषणा को दृढतर बनाने के लिये ही द्वितीय पक्ति मे नगर के प्राचीन नाम की ओर भी सकेत कर दिया है।

इन सभी तर्कों के अतिरिक्त कवि के जायस के होने का सबसे बडा और सीधा-सादा प्रमाण यह है कि उसके नाम 'मलिक मुहम्मद' के साथ 'जायसी' जुडा हुआ है। जायसी वही हो सकता है जो जायस का रहने वाला हो। बगाल के रहने वाले व्यक्ति को हम पजाबी या मद्रासी नही कह सकते, और यदि कहेगे भी तो साहित्य तथा समाज का समर्थन नही प्राप्त हो सकता।

अन्त मे एक वाक्य में मै यह कहना चाहूँगा कि जायसी का जन्मकाल ९०० हि० तथा स्थान जायस है।

बाल्यकाल तथा रूप—जायसी के पूर्वज सम्भवत अरब थे। सैयद कल्ब मुस्तफा के ग्रथ 'मलिक मुहम्मद जायसी' पृष्ठ २० के अनुसार इनके पिता का नाम मुमरेज था। इनका ननिहाल मानिकपुर मे था। शेख अहलदाद इनके नाना थे।

ऐसी किंवदन्ती है कि जायसी के नाना पिता अत्यन्त ही गरीब थे, परन्तु अपने धर्म तथा पीरो और फकीरो मे उनका गहरा विश्वास था। बाल्यावस्था मे ही एक बार बालक जायसी पर शीतला का असाधारण प्रकोप हुआ। बचने की कोई आशा न रही। बालक की यह दशा देख माँ बडी विह्वल हुई। उसने प्रसिद्ध सूफी फकीर शाहमदार की मनौती की। माता की प्रार्थना सफल हुई। बच्चा बच गया, किन्तु उसकी एक आँख जाती रही।

"एक नयन कवि मुहम्मद गुनी।" (पद्मावत) विधाता को इतने से ही सतोष नही हुआ, एक कान की श्रवण शक्ति भी नष्ट हो गई —

'मुहम्मद बाइँ दिशि तजा इक सरवन इक आँखि।' सम्भवत ये दोनो वाम अग के ही थे।

सैय्यद मुस्ताफ़ा के अनुसार वे लूले और कुवडे भी थे किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता और न उनके चित्रो से ही ऐसा प्रकट होता है।

इसमे सन्देह नही कि जायसी का व्यक्तित्व शारीरिक रूप में उतना महान् व सुन्दर नही था जितना कि चारित्रिक, आभ्याँतरिक और कवि रूप मे। जो भी हो जायसी की कुरूपता जगत-प्रसिद्ध है। उनकी कुरूपता के सम्बन्ध में ही एक किंवदन्ती और है कि वे एक बार शेरशाह के दरवार मे गये शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हँस पडा। इस पर जायसी ने अत्यन्त ही शान्त भाव मे वादशाह से पूछा 'मोहि का हँसेसि कि कोहरहिं'। अर्थात् तू मुझ पर हँस रहा है या उस कुम्हार (गढने वाले ईश्वर) पर ? कहा जाता है कि विद्वान जायसी के इन गम्भीर शब्दो को सुनकर वादशाह वहुत लज्जित हुआ। और उसने उनसे क्षमा माँगी।

वालक जायसी के पिता का स्वर्गवास उसकी अल्पाति-अल्प आयु ही मे हो गया था। कुछ कालोपराँत स्नेहमयी माता का भी निधन हो गया। इस प्रकार वालक जायसी अपनी वाल्यावस्था मे ही अनाथ हो गया। अव पालन पोपरण तथा शिक्षा का अनुमान पाठक स्वय कर सकते हैं।

आध्यात्म की ओर—अनाथ वालक जायसी कुछ दिनो तक तो अपने नाना शेख अलहदाद के पास मानिकपुर रहा किन्तु शीघ्र ही निर्मम विधाता ने उसका वह सहारा भी छीन लिया। वालक एकदम निराश्रय हो गया। ऐसी अवस्था मे जीवन और जगत के प्रति उसके मन में गहरी विरक्ति भर आई। इसी वीच उसका सम्पर्क कुछ साधुओ और फकीरो से हुआ। उन्होने अपने सदुपदेशो और प्रेमपूर्ण व्यवहारो द्वारा कुशाग्रबुद्धि वालक जायसी के नैराश्य-गगन का अधकार दूर करना आरम्भ किया। जायसी का आकर्षण उधर वढता गया। वाल्यकाल की दीन-हीनावस्था से उत्पन्न विरक्ति और इन साधु-फकीरो के सम्पर्क ने जायसी के किशोर मन को आध्यात्मिक दिशा प्रदान की। धीरे-धीरे यह

आध्यात्मिक पिपासा बढती गई। अन्त में एक दिन जिज्ञासु जायसी को उसकी इस प्यास ने गुरु के चरणो में ला उपस्थित किया।

जायसी की आध्यात्मिक रुझान के सम्वन्ध मे एक कहानी और प्रचलित है कि जायसी की वाल्यकालीन परिस्थितियो ने उन्हे ईश्वर भक्त वना दिया था। अपनी अनाथावस्था में वे कुछ दिनो तक साधुओ और फकीरो के साथ इधर-उधर भटकते और घूमते रहे। जव वयस्क हुए तो वे अपनी जन्मभूमि जायस को पुन लौट आये और वहाँ एक गृहस्थ का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, किन्तु इससे उनकी ईश्वर भक्ति में किसी प्रकार की कमी न आई अपितु उसका रूप उज्ज्वलतर ही होता गया। तात्पर्य यह कि उनका जीवन एक ईश्वर भक्त गृहस्थ का जीवन वना। जायसी का यह नियम था कि जव वे खेती में होते तो अपना भोजन वही मँगा लिया करते थे, पर उनके साथ विशेषता यह थी कि वे अपना भोजन कभी अकेले नही करते थे। जो भी आस-पास दिखाई पड जाता उसे वुला लेते और फिर उसके साथ-साथ भोजन करते। इसी क्रम मे शायद किसी दिन एक कोढी के साथ उन्होने भोजन किया था। ऐसा वताया जाता है कि उसी दिन से उनकी भक्ति दृढतर हो गई और उस परम सत्ता के रग मे ऐसे डूवे कि फिर उससे उवर न सके। 'अखरावट' के निम्न दोहे से सम्भवत इसी घटना की ओर सकेत है —

वुदहि समुद समान, यह अचरज कासो कहौं।
जो हेरा सो हेरान, मुहम्मद आपुहि आपु महँ॥

साधु फकीरो के साथ भ्रमण करने के उपरान्त पुन जायस में लौट गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के घटना-अनुमान को हमें कवि की इन पक्तियो से भी वल मिलता है —

जायस नगर मोर अस्थानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह वखानू॥

'तहाँ आई' में सम्भवत उक्त भ्रमण से ही वापस लौट आने की ओर सकेत है। ऐसा अनुमान होता है कि शायद इसी घटना के आधार पर पूर्ण सूचना के

अभाव मे कुछ विद्वानो ने जायसी का जायस का न होकर अन्य स्थान का मान लिया। यहाँ हमे इस प्रसग पर अधिक जोर नही देना है, इसकी चर्चा तो पिछले पृष्ठो मे हो ही चुकी है। इस उल्लेख से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि भगवद् भक्त जायसी का जीवन क्रम ही कुछ ऐसा हुआ कि उनकी आध्यात्मिक वृत्ति दृढतर होती गई।

सन्तान—मृत्यु के समय जायसी को सन्तानहीन बताया जाता है, किन्तु किसी भी समय उनके सन्तति थी या नही, इस सम्बन्ध में सभी विद्वानो में मत-भेद है। कुछ लोगो का कहना है कि उनके सात पुत्र थे। जायसी की मोद-प्रियता और उनके मौजी स्वभाव की प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी। एक दिन कवि जायसी ने 'पोस्ती नामा' शीर्षक पद्य की रचना की और उसे सुनाने के लिए गुरु जी के पास पहुँचे। इनके गुरुदेव वैद्यो के आदेश एवँ अनुरोध से पोस्त का पानी प्रयोग करते थे जिससे क्षुधा और निद्राधिक का निवारण हो सके। जायसी की मार्मिक व्यगोक्ति को सुनकर सहसा वे बोल उठे **"अरे निपूते, तुझे ज्ञात नहीं कि तेरा गुरु निपोस्ती है।"** कहा जाता है कि इधर गुरु के मुख से यह वाक्य निकला और उधर दूसरी ओर एक व्यक्ति ने आकर जायसी को यह सूचना दी कि उनके सातो पुत्र एक साथ खाना खा रहे थे कि सहसा उनके ऊपर छत गिर गई और वे सब उसके नीचे दब कर मर गए। गुरु का साधारण क्रोध जायसी के लिए अभिशाप बन गया। इस दुर्घटना से उनके हृदय को कितना बडा दुःख पहुँचा होगा यह कोई भुक्तभोगी ही बता सकता है। हाँ, इतना अवश्य पता चलता है कि इससे उनके गुरु का हृदय भी विचलित हो उठा और उनके दृगो मे शोकाश्रु छलक आये। इसके उपरान्त जायसी पूर्ण वैरागी हो गये और फकीर का जीवन अपना लिया। वास्तविकता क्या थी, इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण न उपलब्ध होने के कारण कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

जायसी और अमेठी—जायसी का अमेठी राज्य से गहरा सम्बन्ध बताया जाता है। उनके अमेठी पहुँचने के सम्बन्ध मे दो कथायें प्रचलित हैं। पहली कथा इस प्रकार है—

मुरीदी करते-करते जव वहुत दिन व्यतीत हो गए तो जायसी और उनके एक साथी हजरत मुहम्मद निजामुद्दीन वन्दगी की यह उत्कृष्ट अभिलापा हुई कि हम लोग भी अपनी गद्दी स्थापित कर अव शिष्य वनावें। इस अभिलापा को दोनो गुरु भाइयो ने अपने गुरु से व्यक्त किया। उनके गुरु शाह वोदले ने उनकी इस प्रार्थना पर विचार कर उन्हे यह आदेश दिया कि अमेठी चले जावो। वन्दगी मियाँ ने लखनऊ वाली अमेठी मे गद्दी स्थापित कर अपूर्व ख्याति प्राप्त की और जायसी खास अमेठी चले गये। अमेठी के समीप एक जगल में उन्होने अपना स्थान निश्चित किया। इस घटना का उल्लेख सैयद कल्व मुस्तफा ने अपनी पुस्तक मलिक मुहम्मद जायसी के पृष्ठ ३८ पर किया है।

दूसरी कथा—अपनी प्रतिभा और चिन्तन के वल पर जायसी एक वडे सिद्ध पुरुष विख्यात हुए। अनेक व्यक्ति उनके शिष्य वने। वे सव जायसी के अमर ग्रथ 'पद्मावत्' से पद्य गा-गा कर भिक्षा माँगा करते थे। एक दिन ऐसा ही एक चेला अमेठी में नागमती का वारहमासा गाता फिर रहा था। पद्मावत के निम्न दोहे को उसके मधुर कण्ठ से जव अमेठी-नरेश ने सुना तो वे उस पर मुग्ध हो गए —

कम्वल जो विगसा मानसर, विनु जल गयउ सुखाइ।
सखि वेलि पुनि पलुहैं, जो पिउ सींचै आइ॥

राजा ने पूछा, "शाह जी! यह किसका दोहा है?" शिष्य ने अपने विद्वान् गुरु जायसी का नाम वता दिया। फिर राजा जायसी के पास गए और आदरपूर्वक जायसी को अमेठी ले आये। तदुपरि जायसी मृत्यु पर्यन्त वही रहे। इस कथा का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने भी किया है।

जनश्रुति है कि अमेठी-नरेश के कोई सन्तान न थी। जायसी की दुआ से उनको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उस समय से जायसी का सम्मान और भी वढ गया।

जायसी की मृत्यु—उनकी मृत्यु के सम्वन्ध मे मुस्तफा साहव ने एक घटना का उल्लेख किया है। अमेठी नरेश जव जायसी की सेवा में उपस्थित होते थे

तो उनका एक वहेलिया (तुफगची) भी उनके साथ जाता था। जायसी उसका विशेप सत्कार करते थे। जव लोगो ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होने वताया कि 'यह मेरा कातिल है।' इस पर सव आश्चर्य चकित हो गए। वहे-लिये ने प्रार्थना की कि इस पाप कर्म को करने से पूर्व मुझे कत्ल करा दिया जाय। इस प्रकार मै एक गुरुतम पाप से वच जाऊँगा। राजा ने भी इसे उचित समझा, परन्तु जायसी ने अपने कातिल को आग्रह पूर्वक कत्ल होने से वचा दिया। राजा ने आज्ञा घोपित कर दी कि उस समय से उस वहेलिए को कोई वन्दूक, तलवार आदि न दी जावे।

परन्तु विधि का विधान कदापि टाले नही टलता है। एक अँधेरी रात को जव वहेलिया राजभवन से अपने गाँव जाने लगा तो दारोगा से कहा 'समय तग हो गया है और मेरी राह जगल मे होकर है। इसलिए रात भर के लिये एक वन्दूक दे दो। प्रात काल ही लौटा दूंगा।' दारोगा ने इसमे कोई आपत्ति न की और एक वन्दूक उस वहेलिये को दे दी। जव वहेलिया जगल मे होकर जाने लगा तो उसे शेर के गुर्राने का सा शव्द सुनाई दिया। शेर को पास जान कर वहेलिये ने शव्द की दिशा में गोली छोड दी शव्द वन्द हो गया। उसने सोचा शायद शेर मर गया और फिर वह विना रुके आगे चला गया। उसी समय राजा ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है "आप सो रहे हैं और आपके वहेलिये ने मलिक साहव को मार डाला।" राजा यह सुनकर चौक पडा और नगे पैरो जायसी के स्थान पर पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह क्या देखता है कि जायसी का निर्जीव शरीर धरती पर पडा है, मस्तक मे गोली का निशान है। इस दुर्घटना से राजभवन तथा नगर में शोक उमड पडा। जायसी की लाश गढ के समीप ही दफना दी गई। इस सम्वन्ध मे डा० जयदेव ने अपने शोध ग्रथ 'सूफी महा कवि जायसी' के पृष्ठ ३६ पर यह भी उल्लेख किया है कि "सूफियो के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी वोली में उसी परम प्रियतम का स्मरण करता है। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर वे किसी भी पक्षी या अन्य प्राणी की वोली का अनुकरण करते हैं और वही उनके लिये प्रियतम का प्यारा नाम वन जाता

है। इस प्रकार रात्रि की निस्तब्धता मे उनका जप (स्मरण, जिक्र) का अभ्यास चलता रहता है। कुछ सूफी 'मोर-मोर' अथवा 'पिउ-पिउ' का जप करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी 'जिक्र असदी' (शेर की ध्वनि के अनुकरण) का अभ्यास करते थे। इसीलिये बहेलिये को शेर की आवाज सुनाई दी और उसने गोली छोड़ दी।"

सैय्यद कल्ब मुस्तफा ने जायसी की मृत्यु १०४९ हिजरी लिखा है। परन्तु इस तिथि को मान लेने मे कुछ आपत्तियाँ है। पहली बात तो यह कि १०४९ हि० मृत्यु स० होने से जायसी की आयु १४९ वर्ष की ठहरती है जो असम्भव न होते हुए असाधारण घटना तो अवश्य ही है। ऐसा लगता है उनके किसी शिष्य या प्रशंसक ने दीर्घायु होने की यह बात लिख दी होगी जिसे पढ़ गुलाम सरवर लाहोरी तथा शेख अब्दुल कादिर को विश्वास हो गया होगा और उसके आधार पर मुस्तफा साहब भी जायसी का मृत्यु-काल १०४९ हिजरी मान बैठे होगे।

दूसरी बात यह है कि जायसी के १०४९ हिजरी तक जीवित रहने का अर्थ है कि वे शाहजहा के प्रारम्भिक शासन मे भी वर्तमान थे। परन्तु शेर-शाह के पुत्र सलीमशाह सूर के समय के प्रसिद्ध कवि और दार्शनिक व्यक्तियो मे भी उनका नाम नही है, यद्यपि उन्होने शेरशाह के राज्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सलीमशाह सूर के सिंहास-नारूढ होने से पूर्व ही जायसी इस संसार से विदा हो चुके थे।

तीसरी बात यह कि यदि वे १०४९ हिजरी तक वर्तमान थे और ९४७ हिजरी मे ही पद्मावत की रचना कर चुके थे तो शेष १०० वर्ष के लम्बे अवकाश मे 'अखरावट' के अतिरिक्त उन्होने अन्य किसी ग्रथ का प्रणयन क्यो नही किया। उन जैसे क्रियाशील-सूफी के लिये यह असम्भव प्रतीत होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि १०४९ हिजरी उनका मृत्युकाल नही हो सकता।

दूसरा आधार हमारे पास नसीरुद्दीन हुसेन जायसी का है। उन्होने मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्यु-काल ४, रजब, ९४९ हिजरी कहा है। इस काल की

सत्यता के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता । आचार्य शुल्क कुछ अश में इसी ओर झुके जान पडते हैं ।

प्रवल ऐतिहासिक तथ्यो तथा अन्य पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे विवशतावश ६४६ हिजरी को (सन् १५४२ ई० के लगभग) ही जायसी का मृत्यु-काल मानना अधिक समीचीन जान पडता है। मलिक साहव का ६४८ हिजरी मे अमेठी राज्य की ओर से आमान्त्रित होना प्रसिद्ध है। वे अमेठी आये और साल भर वहाँ रहने के उपरात ६४६ हिजरी में किसी दूर्घटना के शिकार हो गए।

गुरु-परम्परा—मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में से थे। इस परम्परा की दो शाखायें थी। अपने 'पद्मावत' और 'अखरावट' दोनो ग्रथो मे जायसी ने गुरु परम्परा का उल्लेख वडे विस्तार के साथ किया है। इस आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन शेख मोहिदी को इनका दीक्षा गुरु मानते हैं। पद्मावत में दो पीरो का उल्लेख किया है —

सैयद अशरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा॥

इसी प्रकार अखरावट मे भी दोनो का उल्लेख है .—

कही सरीअत चिस्ती पीरू। उघरी असरफ औ जँहगीरू।
या पांयऊ गुरु मोहिदी दीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा॥

'आखिरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ जहाँगीर का ही उल्लेख है, ।पीर शव्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद अशरफ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का वन्दा कहा है। इससे आचार्य शुक्ल यह अनुमान लगाते हैं कि उनके दीक्षा गुरु तो थे—सैयद अशरफ—परन्तु पीछे से उन्होने मुहीउद्दीन की भी सेवा करके उनसे ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त कर ली थी। डा० जयदेव ने जायसी की गुरु परम्परा का सिलसिला निम्न प्रकार से वताया है—

शेख निजामुद्दीन औलिया (मृत्यु ७२५ हिजरी १३२४ ई०

शेख सिराजुद्दीन

शेख अलोउलहक

- शेख कुतुब आलम (पडोई के)
  - शेख हेसामुद्दीन (मानिक पुर के)
  - शेख राजे हामिदशाह
  - शेख हानिपाल
  - शेख मुहम्मद
  - शेख अलहदाद
  - शेख बुरहान (कालपी के)
  - शेख मुहीउद्दीन
  - मलिक मुहम्मद जायसी
- सैयद अशरफ जहाँगीर
  - शाह आब्दुर्रजाक *
  - शाह सैयद अहमद *
  - शाह अब्दुरजाक *
  - शाह सैयद हाजी
  - शाह जलाल (प्रथम) *
    - शाह सैयद कमाल
    - शाह मुबारक बादले
      - मलिक मुहम्मद जायसी

नोट—(पुष्पांकित नाम शुक्ल जी ने नहीं दिये हैं)

डाक्टर साहब का कहना है कि "जायसी ने अपनी रचनाओ को मसनवी सांचे में ढाला है। अत उनमे गुरुस्तुति भी है। 'आखिरी कलाम' में एक गुरु की वन्दना है, शेष दो काव्यो (पद्मावत और अखरावट) मे दो गुरु परम्पराओ का वर्णन है। ···· ······एक पुस्तक मे केवल एक परम्परा का वर्णन करना तथा अन्य दो पुस्तको मे दो गुरु परम्पराओ का वर्णन करना प्रमाणित करता है कि आरम्भ में एक गुरु से दीक्षा प्राप्त की, तत्पश्चात् दूसरे गुरु से भी लाभ उठाया।

मलिक साहब जायस के रहने वाले थे। वहाँ पर सैयद अशफर जहाँगीर की ख्याति थी। उनकी दरगाह जायस मे अब तक विद्यमान है। इधर-उधर भटकते हुए सूफी सन्तो के सत्सग से लाभ उठाते हुए तथा अपनी शक्तियो के विकसित होने पर जब मलिक साहब जायस लौटे, तो प्राय शेख मुबारक की सेवा में जिज्ञासु की भाति उपस्थित होते रहे। क्षेत्र तैयार था, सूफी मत की ओर रुझान भी थी। प्रियतम के दीदार की तीव्र उत्कण्ठा जागरित हो चुकी थी। शेख साहब ने जिज्ञासु की परीक्षा की। उसको अधिकारी समझकर दीक्षा दे दी। जायसी कृत-कृत्य हो गये। जायसी ने अशरफी घराने के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रकट की है —

जहाँगीर वे चिस्ती निहकलंक जस चाँद।
वै मखदूम जगत के, हौं ओहि घर कै बाद॥

—पद्मावत स्तुतिखण्ड पृ० ७।

अत इस विवेचन से यह तो निश्चय ही है कि जायसी का गुरुद्वारा जायस था और उनके दीक्षा गुरु 'मखदूम' साहब की गद्दी के उत्तराधिकारी शेख मुबारक थे (शुक्ल जी ने सैयद अशरफ को उनका दीक्षा गुरु माना है परन्तु उनकी मृत्यु जायसी के जन्म से बहुत पूर्व सन् ८०८ हिजरी में हो चुकी थी। अत वे दीक्षा-गुरु नही हो सकते, वरन् उनके उत्तराधिकारी शाह मुबारक्र बोदले जो मुहीउद्दीन के समकालीन थे, जायसी के गुरु थे) जिन्होने जायसी को अपना खलीफा नियत करके सूफीमत के प्रचार की आज्ञा प्रदान की थी।

शेख निजामुद्दीन औलिया (मृत्यु ७२५ हिजरी १३२४ ई०

शेख सिराजुद्दीन

शेख अलोउलहक

शाखा १:

- शेख कुतुब आलम (पडोई के)
- शेख हेसामुद्दीन (मानिक पुर के)
- शेख राजे हामिदशाह
- शेख हानिपाल
- शेख मुहम्मद
- शेख अलहदाद
- शेख वुरहान (कालपी के)
- शेख मुहीउद्दीन
- मलिक मुहम्मद जायसी

शाखा २:

- सैयद अशरफ जहाँगीर
- शाह आब्दुरंजाक *
- शाह सैयद अहमद *
- शाह अब्दुरजाक *
- शाह शैयद हाजी
- शाह जलाल (प्रथम) *
  - शाह सैयद कमाल
  - शाह मुवारक वादले
    - मलिक मुहम्मद जायसी

नोट—(पुष्पाकित नाम शुक्ल जी ने नही दिये हैं)

डाक्टर साहब का कहना है कि "जायसी ने अपनी रचनाओ को मसनवी साँचे में ढाला है। अत उनमे गुरुस्तुति भी है। 'आखिरी कलाम' मे एक गुरु की वन्दना है, शेष दो काव्यो (पद्मावत और अखरावट) मे दो गुरु परम्पराओ का वर्णन है। ... .एक पुस्तक में केवल एक परम्परा का वर्णन करना तथा अन्य दो पुस्तको में दो गुरु परम्पराओ का वर्णन करना प्रमाणित करता है कि आरम्भ मे एक गुरु से दीक्षा प्राप्त की, तत्पश्चात् दूसरे गुरु से भी लाभ उठाया।

मलिक साहब जायस के रहने वाले थे। वहाँ पर सैयद अशफर जहाँगीर की ख्याति थी। उनकी दरगाह जायस में अब तक विद्यमान है। इधर-उधर भटकते हुए सूफी सन्तो के सत्सग से लाभ उठाते हुए तथा अपनी शक्तियो के विकसित होने पर जब मलिक साहब जायस लौटे, तो प्राय शेख मुबारक की सेवा में जिज्ञासु की भाति उपस्थित होते रहे। क्षेत्र तैयार था, सूफी मत की ओर रुझान भी थी। प्रियतम के दीदार की तीव्र उत्कण्ठा जागरित हो चुकी थी। शेख साहब ने जिज्ञासु की परीक्षा की। उसको अधिकारी समझकर दीक्षा दे दी। जायसी कृत-कृत्य हो गये। जायसी ने अशरफी घराने के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रकट की है —

जहाँगीर वे चिस्ती निहकलंक जस चाँद।
वै मखदूम जगत के, हौं ओहि घर कै बांद॥

—पद्मावत स्तुतिखण्ड पृ० ७।

अत इस विवेचन से यह तो निश्चय ही है कि जायसी का गुरुद्वारा जायस था और उनके दीक्षा गुरु 'मखदूम' साहब की गद्दी के उत्तराधिकारी शेख मुबारक थे (शुक्ल जी ने सैयद अशरफ को उनका दीक्षा गुरू माना है परन्तु उनकी मृत्यु जायसी के जन्म से बहुत पूर्व सन् ८०८ हिजरी मे हो चुकी थी। अत वे दीक्षा-गुरु नही हो सकते, वरन् उनके उत्तराधिकारी शाह मुबारक बोदले जो मुहीउद्दीन के समकालीन थे, जायसी के गुरू थे) जिन्होंने जायसी को अपना खलीफा नियत करके सूफीमत के प्रचार की आज्ञा प्रदान की थी।

उन्हें अहंकार छू नहीं गया था। विनम्रता उनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। कबीरदास की भाँति एक नया पथ निकालने की उन्हे कभी नही सूझी, और न उनकी तरह 'ज्यो की त्यो धरि दीन्ही चदरिया' कहने का साहस ही वे कर सके। क्योंकि वे यह जानते थे कि सब कुछ हो जाने पर भी मैं एक मनुष्य हूँ। इसलिये मुझमे अपूर्णता भी बनी रहेगी। कबीर की भाँति उन्होने किसी की निन्दा नही की और न कटु हुए। उनमें प्रत्येक प्रकार का महत्व स्वीकार करने की अपूर्व क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सब के उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला उन्हे हृदय प्राप्त था। समाज के प्रति अपने विशेष कर्तव्यो के पालन के साथ साथ वे सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुयाई थे। वे बहुविज्ञ होते हुए भी अपने ज्ञान को पडितो द्वारा दिया गया प्रसाद मानते थे।

हौं पडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तवल देइ डगा॥

कबीर के विरोधी प्रकृति के होते हुए भी उनको एक महान साधक के रूप में उन्होने स्वीकार किया है—

ना नारद तब रोई पुकारा। एक जोलाहे सौं मै हारा॥
पेम ततु नित ताना तनई। जप तप साधि सैंकरा भरई॥

जायसी ने अपनी कृतियो में ज्योतिष, ऋतु, त्योहार आदि का भी अच्छा परिचय दिया है। इतिहास, भूगोल तथा राजनीति आदि के सफल और अधिकारपूर्ण प्रयोग उन्होने किए हैं। व्यवहार ज्ञान तो उनका बहुत ही उच्चकोटि का था। हिन्दू परिवार की प्रत्येक गति विधि का सम्यक अध्ययन उन्होने किया था, ऐसा उनके पद्मावत से प्रकट होता है। एक का दूसरे के प्रति व्यवहार कब कैसा होता है, यह वे भली भाँति जानते थे। बानगी के रूप में दो-एक स्थल लीजिए—

(१) हिन्दू परिवार में सास-ननद के मध्य नवागता वधू की स्थिति।

सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेंही। दारुन ससुर न निसरैं देंही॥

× × ×

सासु ननद के भौंह सिकोरे। रहब सँकोचि दुऔ कर जोरे॥

(२) सपत्नियो मे प्रेम का न होना जगत प्रसिद्ध है। वे एक ही आसन पर वैठकर परस्पर मीठी-मीठी वातें करती हैं किन्तु उनके हृदय विरोधपूर्ण रहते हैं। इस सत्य को जायसी ने कितनी सरल भाषा में प्रकट किया है—

दुओ सवति मिलि पाट बईठी। हिय विरोध, मुख वातें मीठी॥

इसी प्रकार अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है। अत मे हम निष्कर्ष रूप में डाक्टर जयदेव के शब्दों मे कहेंगे कि "जायसी अध्ययनशील व्यक्ति तो न थे किन्तु वहुश्रुत थे। उनकी धारणा और मर्मवेक्षरगा-शक्ति विलक्षण थी। इनकी सहायता से वे अपने अनुभव को, जो उन्होंने सत्संग में, पर्यटन में, व्यवहारादि में प्राप्त किया था, अपने काव्यों मे इस युक्ति से उपयोगी वनाकर सज्जित किया है कि उनके अक्षय ज्ञानागार को देख कर चकित होना पड़ता है। निस्सन्देह उनका साहित्यिक तथा धार्मिक ज्ञान साधारण, इतिहास तथा भूगोल का विशेष और व्यवहार पटुता तथा अनुभव शक्ति उच्चकोटि की थी।"

जायसी का कवि और सामान्य दोनों रूप हमारे लिए आदर्श हैं। उनका व्यक्तित्व महान तथा अत्यन्त ही गम्भीर और शात था। वे वड़े ही विनम्र और कृपालु स्वभाव के थे। ईश्वर ने उन्हे शारीरिक-सौंदर्य नही प्रदान किया था किन्तु उनका हृदय सौदर्य के चरम उत्कर्ष पर था। उतना सुन्दर, कोमल तथा भावुक और प्रेम की पीर से भरा हृदय शायद ही किसी को मिला हो। 'पद्मावत' उनके इस हृदय का सच्चा परिचय देने वाला अमर ग्रथ है। उसमें उन्होने लोक पक्ष और भगवदपक्ष दोनों की गूढता तथा गम्भीरता का निरूपण किया है। उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'अखरावट' है जिसमें वर्णमाला के एक-एक अक्षर पर सिद्धात सम्वन्धी कुछ वातों का विवेचन है। 'आखिरी कलाम' में मृत्यु के वाद जीव की दशा तथा कयामत के अंतिम न्याय का वर्णन है।

'पद्मावत' ऐसे उच्चकोटि के ग्रंथ के महाप्रणेता के रूप में जायसी अमर रहेंगे। उनका भावुक सुकोमल और प्रेम की पीर से भरा हृदय प्रेम पथ के पथिको का सदैव मार्ग दर्शन करेगा और उनके लौकिक एव आध्यात्मिक जीवन

को गद्दी पर बैठा था। कुछ विद्वानो का विचार है कि उसका सिक्का इससे पूर्व ही चल गया था। ६४७ हिजरी ८ मई १५४५ से प्रारम्भ होता है। इससे पता चलता है कि ग्रथ का रचना काल ६४७ हिजरी से पूर्व का नही है।

इस तर्क के प्रत्युत्तर में ६२७ हिजरी मानने वालो का यह कथन है कि कवि ने कुछ थोडे से पद्य तो सन् १५२० ई० के आस-पास अर्थात् ६२७ हिजरी में ही बनाये, परन्तु ग्रथ को शेरशाह के समय में पूरा किया। इसलिये कवि ने भूतकालिक क्रिया 'कहा' और 'अहा' का प्रयोग किया है।

सन नव से सत्ताइस अहा।
कथा अरभ वैन कवि कहा॥

डा० कमलकुल श्रेष्ठ, इस मत, के अर्थात् ६२७ हि० मानने वालो के समर्थन में अपना एक तर्क और जोडते हैं, वह यह कि—"मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना अन्तिम ग्रथ 'आखिरी कलाम' १५२६ ई० अर्थात् ६३६ हि० में लिखा था। वह अन्तर्साक्ष्य से प्रमाणित एव निर्विवाद है—

सन नव से छत्तीस जव भये।
तव एहि कथा के आखर कहे॥

जव कि कवि का 'आखिरी कलाम' अर्थात् कवि की अन्तिम रचना ६३६ हिजरी की है तो पद्मावत निश्चयरूप से उससे पूर्व की होगी।

डा० विमल कुमार जैन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा श्री यज्ञदत्त शर्मा आदि ६२७ हिजरी के पक्ष में हैं, किन्तु डा० रामकुमार वर्मा व श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित तथा डा० जयदेव आदि ६४७ हिजरी का समर्थन करते हैं। डाक्टर जयदेव अपनी वात के प्रमाण मे जो तर्क उपस्थित करते हैं उनका साराश इस प्रकार है—

१—**'आखिरी कलाम'** कवि की अन्तिम रचना नही है। इस लिये उसके आधार पर 'पद्मावत' को उससे पहले अर्थात् ६३६ हिजरी से पूर्व का मान लेना मुझे स्वीकार नही, 'आखिरी कलाम' कवि की पहली रचना है।

२—'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में सिंहल द्वीप का वर्णन है जिसमें कवि सामयिक परिस्थितियों का निर्देश कर सकता है, जैसा कि निम्न पक्तियो से ध्वनित होता है—

फरे आम अति सघन सुहाये। औ जस फरे अधिक सिर नाये॥

× × ×

पैग पैग पर कुवां बावरी। साजी बैठक और पांवरी॥

× × ×

राव रंक जावत सब जाती। सब कै चाह लेहि दिन राती॥
पथी परदेसी जत आवहिं। रख कै चाह दूत पहुँचावहिं॥

× × ×

यह वर्णन शेरशाह के काल पर लागू होता है। डाक्टर चन्द्रवली पाण्डेय ने भी लिखा है "उन्होंने पद्मावत मे जिन रजवाड़ों का वर्णन किया है उनकी सगति प्रायः शेरशाह के समय मे ही ठीक-ठीक बैठती है।" डा० कमलकुल श्रेष्ठ का, इस सम्बन्ध का, यह कथन उन्हे मान्य नही कि "कथा के आरम्भिक वचन कवि ने ९२७ हिजरी मे कहे थे। बाद में सारा ग्रंथ लिख डाला गया। शेरशाह के समय मे कवि ने उसकी भूमिका (स्तुति खण्ड) लिखी। उसमे भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करते हुए प्रारम्भिक काल दिया और सामयिक राजा के रूप मे शेरशाह की वदना की।" इस पर आक्षेप करते हुए वे कहते हैं—"कहने की आवश्यकता नहीं कि डाक्टर महोदय स्तुति खण्ड को ग्रथ की समाप्ति के उपरान्त की रचना मानते हैं और कथा की प्रथम पंक्ति "सिंहल दीप कथा अब गावों" के "अब" शब्द से दृष्टि चुरा लेते हैं।"

३—'अखरावट' की रचना ९२५ हिजरी में नही हुई यदि इसकी रचना ९२५ हिजरी में मान ली जाय तो निम्न पक्तियाँ व्यर्थ हो जाती हैं—

"भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी।"

दूसरी बात यह भी कि 'आखिरी कलाम' ९३६ हिजरी मे रच लेने के उपरान्त जीवन के शेष १२-१३ वर्षो मे कवि का मौन रहना असम्भव नही तो असंगत अवश्य है। अस्तु।

४—'**पद्मावत**' शेरशाह के समय में ही रचा गया। यह मानना कि स्तुति खण्ड (सम्पूर्ण अथवा उसका केवल शेरशाह सम्बन्धित स्पष्ट अंश) शेरशाह के जमाने में लिखा गया, बिल्कुल ही भ्रामक और असंगत है।

५—बंगला अनुवाद प्राचीनतम नहीं कहा जा सकता और न उसकी शुद्धता ही सर्वथा विश्वनीय है। आलो उजालो की इस पंक्ति "शेख मुहम्मद जाति जावन रचित ग्रंथ संख्या सप्तविंशनवसत" के अनुसार निश्चय ही ग्रंथ ६२७ हिजरी में पूरा हो गया था। पर इसे प्रमाण कोटि में नहीं रखा जा सकता।

इसी प्रकार अन्य विद्वान भी अपने-अपने मत के समर्थन में अपना-अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत कृति के लेखक का विनम्र निवेदन यह है कि 'पद्मावत' जायसी की समस्त कृतियों में सभी दृष्टियों से प्रौढ़तम रचना है। कवि का जन्म ६०० हिजरी उसके अन्तर्साक्ष्य से पूर्णतया प्रमाणित है।

"भा अवतार मोर नव सदी"

यदि इस ग्रंथ का रचनाकाल ६२७ हिजरी मान लिया जाय तो उस समय कवि की अवस्था केवल २७ वर्ष ठहरती है। २७ वर्ष की अल्पायु में इतने बड़े 'महाकाव्य' का प्रणयन यदि मैं असम्भव न मानूं तो असंगत तथा अति कठिन अवश्य कहना पड़ेगा। दूसरी बात यह कि यदि कवि २७ वर्ष की अल्पायु में ही पद्मावत ऐसा महाकाव्य लिख सकता था तो वह अपने जीवन के शेष २०-२२ वर्षों में किसी अन्य तथा अपेक्षाकृत प्रौढ़तर महाकाव्य की रचना क्यों नहीं कर सका? और छोटी-छोटी कृतियों के निर्माण में उन बहुमूल्य तथा अनुभवी वर्षों को व्यय कर डाला। सहृदय तथा भावुक कविजन जायसी के स्थान पर स्वयं को बिठाकर सोचें कि वे 'पद्मावत' ऐसे महाकाव्य के निर्माण के बाद जीवन के शेष २०-२२ वर्षों में केवल एक '**अखरावट**' अथवा उसी प्रकार की अन्य छोटी-छोटी रचनाओं के सृजन में ही क्या वे संतोष प्राप्त कर लेते? शायद नहीं—

जायसी की मृत्यु ६४९ हिजरी सब प्रकार से प्रमाणित हो चुकी है। जो लोग 'आखिरी कलाम' को कवि की अन्तिम कृति मानते हैं तथा उसका रचना-

काल ९३६ हिजरी बताते हैं उनसे अब मेरा एक प्रश्न है और वह यह कि— 'आखिरी कलाम' की रचना ९३६ मे कर लेने के उपरान्त जायसी ने क्या कवि कर्म से मुक्ति ले ली थी ? यदि नही, तो जीवन के शेष १२-१३ वर्षो मे उन्होने अन्य कौन सी रचना की ?

उत्तर में कहा जा सकता है कि यह कोई आवश्यक नही कि कवि जीवन के अन्तिम दिनो तक लिखता ही रहा हो। सम्भव है वह जीवन की अन्य परिस्थितियो तथा कठोर आवश्यकताओ मे उलझा रहा हो और काव्य-सृजन का अवकाश न पा सका हो।

तर्क अपने में ठीक है और मै इसे असम्भव भी नही मानता, पर इतना अवश्य कहूँगा कि १२-१३ वर्षो के लम्बे अन्तराय मे कवि का एकदम मौन रहना असगत सा जान पड़ता है। कवि चाहे जितनी विषम परिस्थितियो से क्यो न घिरा हो, उसकी वीणा के तार मौन नही रह सकते। सुख की मादक घडियो मे यदि वे झकृत होने के लिये विवश हैं तो दुख और वेदना के सघनतम क्षणो में हाहाकार करने को मजबूर भी। कवि की हृद्तन्त्री सुख और दु ख दोनो के आघातो से झकृत होती है, केवल एक के आघातो से ही नही।

यदि यह कहा जाय कि 'आखिरी कलाम' कवि की अन्तिम रचना नही है, उसके वाद भी कवि ने रचनायें की होगी, पर वे अपने मूल रूप में प्राप्त नही, तो हमें यह भी कहना पड़ेगा कि निश्चय ही वे रचनायें अपेक्षाकृत पद्मावत आदि से श्रेष्ठतर रही होगी और उन्हे लोकप्रियता भी खूब मिली होगी। किन्तु कही से भी और किसी भी रूप में इस दिशा' में कोई संकेत नही मिलता। सम्भव है भविष्य की खोजो में वे प्राप्त हो और उनका रूप वस्तुत पद्मावत आदि से सभी दृष्टियो मे श्रेष्ठतर भी हो, परन्तु जब तक वे प्राप्त नही होती तब तक 'पद्मावत' ही कवि की श्रेष्ठतम रचना कही जायगी और वह २७ वर्ष की अल्पायु (९२७ हिजरी) में नही लिखी जा सकती।

अस्तु ! अब मै निर्विवाद और अविकार पूर्ण शब्दो में यह कहूँगा कि पद्मावत' निश्चय ही ९४७ हिजरी में पूर्ण हुआ। यह और बात है कि कवि उसे

पिछले कई वर्षों से लिखता चला आया हो। आरम्भ की वह तिथि ६२७ हिजरी हो सकती है अथवा ६२७ हिजरी से ६४७ हिजरी के बीच की अन्य कोई भी तिथि। पद्मावत में प्राप्त शाहेवक्त की बन्दना तथा अन्य प्रशसात्मक अश पुकार पुकार कर उसे शेरशाह के समय की कृति बताते हैं, फिर भी उसका रचनाकाल ६२७ हिजरी मानना एक दुराग्रह के अतिरिक्त और कुछ नही कहा जायगा।

पद्मावत का साहित्यिक मूल्यांकन—'पद्मावत' का साहित्यिक मूल्यांकन करने के लिए सर्वप्रथम हमें यह देखना होगा कि वह किस कोटि का ग्रथ है। सामान्यतया आचार्यों ने काव्य में दो भेद किए हैं—

१. **मुक्तक**—जिसमें प्रत्येक छन्द स्वत सम्पूर्ण और स्वतन्त्र हैं। पद्मावत इसमें नही आता।

२ **प्रबन्ध काव्य**—जिसमें कथावस्तु का रहना नितान्त आवश्यक है और प्रत्येक छन्द पूर्वापर की अपेक्षा रखता है। प्रबन्ध काव्य में कथा वस्तु को अपने उद्देश्य की ओर अबाधरूप से प्रवाहित होना चाहिये। उसमें न तो किसी अनावश्यक प्रसग अथवा कथा को लाना चाहिए और न आवश्यक को छोडना ही चाहिए। उसका कोई अग ऐसा न होना चाहिए जो मुख्य उद्देश्य की पूर्ति न करता हो। साथ ही सगठन की दृष्टि से प्रत्येक प्रसग को उचित विस्तार एव सकोच प्रदान करना चाहिये। इत्तवृत्तात्मकता एव रसात्मक स्थलो में उचित सामजस्य होना चाहिये। रसात्मक स्थलो में मनुष्य के हृदय की वृत्तियाँ लीन होती हैं और इतिवृत्तात्मकता से उसकी जिज्ञासा वृत्ति की तृप्ति होती है। प्रबन्ध काव्य में भावो की सुन्दरता के अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना पडता है कि भाव परिस्थिति के अनुकूल हैं या नही?

इस दृष्टिकोण से यदि हम पद्मावत को देखें तो इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उसमें अनावश्यक प्रसगो का समावेश अवश्य है किन्तु अनावश्यक बातो का समावेश नही हुआ है। कथानक में सम्बन्ध-विच्छेद भी पाया जाता है पर जो प्रसग बीच में लाये गये हैं उनका मुख्य कथा से सामञ्जस्य स्थापित कर दिया है। जैसे समुद्र मे पाँच रत्नो की प्राप्ति और उनका अलाउद्दीन को दिया जाना तथा देवपाल की शत्रुता और दूती का भेजा जाना और राजा का

उससे मृत्यु को प्राप्त होना। इसमें घटनाचक्रो के भीतर जीवन दशाओं और पारस्परिक सम्वन्धो की वह अनेकरूपता तो नही है जो तुलसीदास के रामचरित मानस में है तथापि यह मानना पड़ता है कि रसात्मकता के सचार के लिए प्रवन्धकाव्य का जैसा घटनाचक्र होना चाहिए पद्मावत का वैसा ही है। —(डा० सुधीन्द्र)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो में हम कहेंगे कि "प्रबन्धकाव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले—उसमें नाना भावों को रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इस दृष्टि से देखा जाय तो पद्मावत में कहीं तो जायसी को घटना का संकोच करना पड़ा है और कहीं विस्तार। पद्मावत में भाव परिस्थिति के अनुरूप हैं।"

इस प्रकार अव यह स्पप्ट हो गया कि पद्मावत में प्रवन्ध काव्य के लिए अपेक्षित प्राय. सभी गुणो का समावेश है। प्रेमाख्यायन काव्यो में उसकी समानता का अन्य कोई ग्रन्थ नही। वह अवधी भापा का एक श्रेष्ठतर और रहस्यात्मक ग्रन्थ है जिसकी रचना मनसवियो के ढग पर हुई है। उसमें सात अर्धालियो के वाद एक दोहे का क्रम रखा गया है। प्रारम्भ में ईश्वर, मुहम्मद साहव, खलीफाओ, शाहेवक्त तथा गुरु की क्रमानुसार स्तुति की है। तदुपरि कथारम्भ हुआ है।

पद्मावत हिन्दू और मुस्लिम विचारो का सम्मिलन प्रस्तुत करता है। वह दो संस्कृतियो का केन्द्र-विन्दु है जहाँ वे परस्पर मिलती हैं। तत्कालीन वातावरण और अभिन्न विपमतम परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यदि पद्मावत का मूल्यांकन किया जाय तो हमें उसकी महानता एवं सफलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। जायसी मुसलमान थे, हिन्दू घरानो की कहानी ले उन्होंने जिस सफल काव्य का निर्माण किया और उसके द्वारा पावन प्रेम का जो अमर सन्देश दिया वह सर्वथा सराहनीय है। इससे पारस्परिक मतभेद को दूर करने

जहाँ रत्नसेन-पद्मावती मिलन में सयोग और नागमती के विरह वर्णन में वियोग शृङ्गार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वहाँ गोरा बादल के उत्साह में वीर रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अन्तिम भाग में मारे जाने पर करुण रस की बडी सरस अभिव्यक्ति है। इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से ही नही 'पद्मावत' प्रेम काव्य का एक चिर स्मरणीय रत्न रहेगा।

हिन्दी का प्रथम सफल महाकाव्य, और प्रेम-काव्य-जगत का अनूठा एव जगमगाता रत्न 'पद्मावत' जायसी की काव्य-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है हिन्दी के प्रबन्ध काव्यो में तुलसीकृत रामचरित मानस के बाद उसकी सम-कक्षता में और कोई भी काव्य नही ठहरता। साहित्यिक और रहस्यवादी एव दार्शनिक सौंदर्य से परिपुष्ट जायसी की यह रचना उनकी कीर्ति को युग-युग तक अमर रखेगी, इसमें सन्देह नही।

आखिरी-कलाम

कवि की नवीनतम प्राप्त कृति है। इसमें ६० दोहे और ४२० चौपाइयाँ (अर्द्धालियाँ) हैं।

रचनाकाल स्वरूप—अन्त साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य दोनो के प्राप्त प्रमाणो से परीक्षित इसका रचना-काल ९३६ हिजरी है। इसमें सन्देह की गुजायश नही।

यह एक मसनवी काव्य है। इसे हम भारतीय खण्ड काव्य की परिभाषा के अन्तर्गत ले सकते हैं।

नाम—इस ग्रथ के नाम के सम्बन्ध में हिन्दी जगत में वडी भ्रान्तियाँ हैं। 'आखिरी-कलाम' में 'आखिरी' शब्द को देखकर कुछ विद्वान इसे कवि की अन्तिम रचना बताते हैं।

कलाम का शाब्दिक अर्थ वक्तृता, साहित्यिक कृति एव आपत्ति है। इसके साथ विशेषण जोड देने से यथा कलाम पाक, कलामुल्ला, कलाम-मजीद आदि का विशिष्ट अर्थ कुरआन होता है जिसको आखिरी कलाम भी कहते है। इसका कारण यह है कि उसमें अन्तिम रसूल के उपदेशामृत सग्रहीत हैं।

प्रस्तुत जायसी कृत काव्य आखिरी-कलाम में सृष्टि के अन्तिम दृश्य का वर्णन है। कवि ने इसमें मुहम्मद साहब के दैन्य तथा अपने अनुयायियो के उद्धार के लिए उनकी तीव्र लालसा एवं व्याकुलता के वर्णन के साथ-साथ उनके सर्वोपरि महत्व-स्थापन का प्रयत्न किया है।

सम्भव है इन्हीं बातों के कारण काव्य का नाम आखिरी कलाम पड़ा हो।

कुछ लोग इसका नाम आखिरीनामा भी बताते हैं (और यह उनके नाम से प्रसिद्ध अन्य ग्रंथो के नाम से मेल भी खाता है। यथा—पोस्ती नामा, खुर्वा नामा, मोराई नामा, मुकहरा नामा, मुहरा नामा, कहार नामा, आदि); परन्तु वस्तुतः काव्य का जायसी ने क्या नाम रखा था प्रबल और पुष्ट प्रमाणो के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। वास्तविक नाम जो कुछ भी रहा हो, हिन्दी जगत उसे 'आखिरी कलाम' नाम से ही जानता है।

केवल नाम के आधार पर इस काव्य को जायसी का अन्तिम काव्य नही कहा जा सकता। वर्ण्य-विषय के आधार पर ग्रंथ का नाम 'आखिरी कलाम' ठीक है। कथा वस्तु—

डा० जयदेव ने अपने शोध ग्रंथ "सूफी महाकवि जायसी" में 'आखिरी कलाम' की कथा वस्तु निम्न प्रकार से दी है—

कवि ने सर्व प्रथम ईश-स्तुति करके अपने जन्मकाल के भूकम्प का वर्णन किया है। तत्पश्चात् रसूल-स्तुति करके बावर शाह की प्रशंसा की है। इसके बाद गुरु वन्दना,[१] जायस वर्णन[२] माया वर्णन करके काव्य का रचनाकाल दिया है। (१ से १३)

प्रलयकाल का वर्णन करते हुए पृथ्वी का द्रव्य उगलना, तथा बिलाई के

१—इस काव्य में केवल एक 'गुरु' की वंदना की गई है।

२—जायस-नगर मोर अस्थानू। नगर क नाम आदि उदयानू॥

जायस का प्राचीनतम नाम 'उदयनगर' था। मुसलमानो ने इसका नाम जायस रखा जो फारसी 'जैश' पड़ाव से निकला है।

 रायबरेली प्रांत का गजेटियर पृष्ठ १८१

जहाँ रत्नसेन-पद्मावती मिलन में सयोग और नागमती के विरह वर्णन में वियोग शृङ्गार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वहाँ गोरा वादल के उत्साह में वीर रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अन्तिम भाग में मारे जाने पर करुण रस की वडी सरस अभिव्यक्ति है। इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से ही नही 'पद्मावत' प्रेम काव्य का एक चिर स्मरणीय रत्न रहेगा।

हिन्दी का प्रथम सफल महाकाव्य, और प्रेम-काव्य-जगत का अनूठा एव जगमगाता रत्न 'पद्मावत' जायसी की काव्य-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। हिन्दी के प्रवन्ध काव्यो मे तुलसीकृत रामचरित मानम के वाद उसकी सम-कक्षता में और कोई भी काव्य नही ठहरता। साहित्यिक और रहस्यवादी एव दार्शनिक सौंदर्य से परिपुष्ट जायसी की यह रचना उनकी कीर्ति को युग-युग तक अमर रखेगी, इसमें सन्देह नही।

आखिरी-कलाम

कवि की नवीनतम प्राप्त कृति है। इसमें ६० दोहे और ४२० चौपाइयाँ (अर्द्धालियां) हैं।

रचनाकाल स्वरूप—अन्त साक्ष्य और वहिसाक्ष्य दोनो के प्राप्त प्रमाणो से परीक्षित इसका रचना-काल ६३६ हिजरी है। इसमें सन्देह की गुजायश नही।

यह एक मसनवी काव्य है। इसे हम भारतीय खण्ड काव्य की परिभाषा के अन्तर्गत ले सकते हैं।

नाम—इस ग्रथ के नाम के सम्वन्ध में हिन्दी जगत में वडी भ्रान्तियां हैं। 'आखिरी-कलाम' में 'आखिरी' शब्द को देखकर कुछ विद्वान इसे कवि की अन्तिम रचना वताते हैं।

कलाम का शाव्दिक अर्थ वक्तृता, साहित्यिक कृति एव आपत्ति है। इसके साथ विशेषण जोड देने से यथा कलाम पाक, कलामुल्ला, कलाम-मजीद आदि का विशिष्ट अर्थ कुरआन होता है जिसको आखिरी कलाम भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि उसमें अन्तिम रसूल के उपदेशामृत सग्रहीत हैं।

प्रस्तुत जायसी कृत काव्य आखिरी-कलाम में सृष्टि के अन्तिम दृश्य का वर्णन है। कवि ने इसमें मुहम्मद साहब के दैन्य तथा अपने अनुयायियो के उद्धार के लिए उनकी तीव्र लालसा एवं व्याकुलता के वर्णन के साथ-साथ उनके सर्वोपरि महत्व-स्थापन का प्रयत्न किया है।

सम्भव है इन्हीं बातो के कारण काव्य का नाम आखिरी कलाम पड़ा हो।

कुछ लोग इसका नाम आखिरीनामा भी बताते हैं (और यह उनके नाम से प्रसिद्ध अन्य ग्रंथों के नाम से मेल भी खाता है। यथा—पोस्ती नामा, खुर्वा नामा, मोराई नामा, मुकहरा नामा, मुहरा नामा, कहार नामा, आदि); परन्तु वस्तुत. काव्य का जायसी ने क्या नाम रखा था प्रबल और पुष्ट प्रमाणो के अभाव में कुछ नही कहा जा सकता। वास्तविक [नाम जो कुछ भी रहा हो, हिन्दी जगत उसे 'आखिरी कलाम' नाम से ही जानता है।

केवल नाम के आधार पर इस काव्य को जायसी का अन्तिम काव्य नही कहा जा सकता। वर्ण्य-विषय के आधार पर ग्रथ का नाम 'आखिरी कलाम' ठीक है। कथा वस्तु—

डा० जयदेव ने अपने शोध ग्रंथ "सूफी महाकवि जायसी" में 'आखिरी कलाम' की कथा वस्तु निम्न प्रकार से दी है—

कवि ने सर्व प्रथम ईश-स्तुति करके अपने जन्मकाल के भूकम्प का वर्णन किया है। तत्पश्चात् रसूल-स्तुति करके बाबर शाह की प्रशंसा की है। इसके बाद गुरु वन्दना,[1] जायस वर्णन[2] माया वर्णन करके काव्य का रचनाकाल दिया है। (१ से १३)

प्रलयकाल का वर्णन करते हुए पृथ्वी का द्रव्य उगलना, तथा बिलाई के

१—इस काव्य में केवल एक 'गुरु' की वंदना की गई है।

२—जायस-नगर मोर अस्थानू। नगर के नाम आदि उदयानू॥

जायस का प्राचीनतम नाम 'उदयनगर' था। मुसलमानो ने इसका नाम जायस रखा जो फारसी 'जैश' पडाव से निकला है।

रायबरेली प्रांत का गजेटियर पृष्ठ १८१

सूंघने से मृत्यु का वर्णन किया है, तत्पश्चात् मिकाइल फरिश्ते द्वारा चालीस दिन तक अग्नि-उपल वर्षण से समस्त सृष्टि के विनाश का वर्णन किया है। जिबराइल फरिश्ता आकर यह दृश्य देखता है और ईश्वर से निवेदन करता है कि ससार में कोई जीवित नही रहा है। (१८ तक)

मिकाइल आज्ञा पाकर चालीस दिन तक जल बरसा कर समस्त ससार को जलमग्न कर देता है। तत्पश्चात् इसराफील 'सूर' बजाते हैं जिससे पृथ्वी समतल हो जाती है। (१६ तक)

ईश्वर की आज्ञा पाकर जिबराइल अपने साथी फरिश्तो को एक-एक कर मार डालता है और स्वय ईश्वर द्वारा मारा जाता है। (२१ तक)

अब ईश्वर चालीस वर्ष तक अकेला रहा और विचार किया कि सबको पुनः जीविन करके पुले-सरात पर चलाना चाहिए और कौसर—स्नान कराना चाहिये। (२२ तक)

यह विचार आते ही पहिले चारो फरिश्ते जीवित किए गए। जिबराइल पृथ्वी पर आये और मुहम्मद साहब को पुकारा। उत्तर में लाखो स्वर सुनाई पडे। फिर जिबराइल ने उनकी खोज की। वे अपनी उम्मत समेत उठ खडे हुए। वे सब नगे थे और उनके नेत्र तालू में थे। (२५ तक)

मुहम्मद साहब की उम्मत का पुले-सरात को पार करना वर्णन किया है। धर्मी लोग तो शीघ्र पार कर गये, अन्य लोग अपने कर्मो के अनुसार धीरे-धीरे पार कर गए किन्तु पापी पीब के समुद्र में पुल से नीचे गिर गए। (२८ तक)

तत्पश्चात् आज्ञा पाकर सूर्य छ मास तक तपता रहा। पापियो को धूप और प्यास सहनी पडी। किन्तु धर्मियो के सिर पर छाँह थी। रसूल छाया में नही बैठे, क्योकि उनको अपने अनुयायियो की बडी चिन्ता थी। अन्य सवा लाख पैगम्बर भी उपस्थित थे। वे छाँह में बैठे थे। (३० तक)

जब मुहम्मद साहब की उम्मत बुलाई गई, तो उन्होने आदम, इब्राहीम, नूह आदि के पास अलग-अलग जाकर प्रार्थना की कि मेरी कुछ परमात्मा से सिफारिश कर दो। किन्तु सबने अपने-अपने दु खो का पचडा गाकर कोरा टरका दिया। (३६ तक)

तब रसूल ने अपनी उम्मीद का सारा कष्ट अपने ऊपर लेकर परमात्मा से विनती की। खुदा ने कुपित होकर फातिमा की खोज कराई। जब सबने आँखें बन्द कर ली, तब बीबी फातिमा हसन-हुसेन को लेकर खुदा के पास पहुँची और न्याय की याचना की—कि यदि मेरा न्याय न किया तो शाप दे दूँगी। फातिमा के क्रोध को देखकर ईश्वर ने रसूल को धौंस दी कि यदि वे अपनी पुत्री को शान्त न कर देंगे, तो उनके समस्त अनुयायी नरक में डाल दिये जायेंगे। रसूल ने फातिमा को समझाया, सारी स्थिति उसके समक्ष रखी। फातिमा को अपने पिता पर दया आ गई। उन्होंने क्रोध छोड़ दिया। ईश्वर भी मुहम्मद साहब पर प्रसन्न हो गए और मजीद (हसन-हुसेन) को नरक में डाल दिया। (४२ तक)

तत्पश्चात् रसूल के अनुयायी बुलाये गये। उनका न्याय किया गया। मुहम्मद साहब ने सब को क्षमा कर दिया, कौसर-स्नान हुआ। उम्मत सहित रसूल का निमन्त्रण हुआ। भोजन की विशेषता का वर्णन कर कवि ने शराब और पानी का वर्णन किया है। रसूल की प्रार्थना पर ईश्वर ने सबको दर्शन दिया। (५१ तक)

दर्शन पाकर सब दो दिन तक बेहोश रहे। तीसरे दिन जिबराइल ने आकर जगाया, वस्त्र पहनाये और स्वर्ग को ले गए। यहाँ पर सबको बहुत सी हूरें और अप्सरायें प्राप्त हुईं। (५५ तक)

अन्त में स्वर्ग और वहाँ के रहन-सहन का वर्णन कर जायसी ने अपने काव्य को समाप्त कर दिया है—

नित पिरीत नित नव-नव नेहू। नित उठि चौगुन होइ सनेहू॥
नितइ नित्त ओ बारि बिया हैं। बीसों बीस अधिक ओहि चाहैं॥
तहाँ न मीचु, न नींद दुख, रह न देइ महँ रोग।
सदा अनन्द मुहम्मद; सब दुख मानैं भोग॥

प्रबन्ध काव्य के रूप में—कथावस्तु को जान लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'आखिरी कलाम' एक प्रबन्ध-काव्य है। इस काव्य को मुख्यत दो भागों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम भाग में काव्य का वह ग्रश ग्राता है जो धार्मिक ग्रन्थो पर ग्राधारित है, तथा कयामत का होना, प्राणियो का उठना, पुले-सरात को पार करना, पमात्मा के सम्मुख उपस्थित होना। रसूल के ग्रनुयायियो को ईश्वर द्वारा क्षमा प्रदान करना तथा ग्रन्त मे शाश्वत-स्वर्ग-विहार ग्रादि है।

द्वितीय भाग में काव्य का वह ग्रश ग्राता है जिसका ग्राधार कवि-कल्पना है। इसमें ४० दिन ग्रग्नि-उपल वर्षण, ४० दिन जल वर्षण, ४० वर्ष तक ईश्वर का एकातवास ग्रौर विचार, प्राणियो का नगे वदन होना, तालू में ग्रांखें होना, रसूल का ग्रन्य पैगम्वरो के पास जाकर दैन्य-प्रदर्शन, फातिमा की खोज, फातिमा का क्रोध, खुदा का रसूल पर धौंस गालिब करना, रसूल का फातिमा को समझाना, ग्रतिरजित रूप से दावत का वर्णन, ईश्वर दर्शन, दो दिन तक सब का वेहोश पडे रहना ग्रादि।

काव्य का उक्त कथित प्रथम ग्रश तो ग्रपनी जगह पर ठीक है परन्तु द्वितीयाश जो कवि-कल्पना प्रसूत है काव्य को ग्रावश्यकता से ग्रधिक कमजोर वना देता है। ग्रनेक स्थल तो ऐसे हैं जहाँ प्रणेता द्वारा कवि कर्म की भी रक्षा नही हो पाई है। सभी वातें वेसिर-पैर की मालूम होती हैं जिनका काव्य के साथ कोई मेल नही वैठना। ये कल्पना-प्रसूत वर्णन वडे विचित्र ग्रौर उप-हासास्पद हैं। इन स्थलो से काव्य की प्रवन्धात्मकता को वडा धक्का पहुँचा है। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि में ग्रभी तक वह क्षमता न ग्रा सकी थी जो एक सफल प्रवन्धकार मे होनी चाहिए।

ग्रथ मे यत्र-तत्र इस्लामी विचारो का भी समावेश है जिससे कवि की धर्म सम्वन्धी मोटी-मोटी वातो की जानकारी ज्ञात होती है। काव्य में विरह की ग्रभिव्यक्ति, गुरु महिमा का श्रद्धा ग्रौर विश्वासपूर्ण वर्णन, उसके सूफीमत की ग्रोर झुकाव का सकेत है। नाथ पथियो ग्रौर योगियो का भी प्रभाव ग्राशिक रूप में परिलक्षित होता है। इस दिशा मे ग्रभी उसे ग्रच्छी गति नही प्राप्त हो सकी थी।

सवसे प्रमुख ग्रौर उल्लेखनीय वात जो इस ग्रथ में है वह हिन्दू ग्रौर मुस्लिम सस्कृति में मेल कराने का कवि का प्रयास है। कवि की यह प्रवृत्ति उस युग

की देन है। देखिये कवि 'अजराइल को 'यम' की सज्ञा देकर किस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम भावनाओ में ऐक्य का सम्पादन कर रहा है—

पुनि पूछब यम ! सब जिउ लीन्हा। एकौ रहा वाचि जौ दीन्हा ॥

अल्लाह का सहारक रूप रौद्र (शकर) की सज्ञा से अभिहित होता हुआ देखिए—

जो जम आन जिउ लेत है। शकर तिनहू कर जीव लेउ।
सो अब तरें मुहम्मद, देखु तहूँ जिउ देव ॥

नीचे की पक्तियो मे कवि ने 'इवलीस' को शैतान और चचलवृत्ति नारद को झगडालू के रूप में चित्रित कर दोनो को एकरूपता प्रदान करने की कोशिश की है—

धूत एक मारत घन गुना। कपर रूप नारद करि चुना ॥

हिन्दुओ की आरती प्रथा को भी कवि ने किस सुन्दरता के साथ अपनाया है, नीचे देखिये—

आरति करि सब आगे ऐहैं। नन्द सरोदन सब मिलि गैहैं ॥

कवि के रचना-क्रम के रूप मे—कुछ विद्वान इसके नाम के आधार पर इसे कवि की आखिरी रचना मानने का दुराग्रह करते हैं जिसका सकेत पिछले पृष्ठो में मै कर चुका हूँ। कुछ लोगो का यह कथन है कि यह कवि की अन्तिम कृति नही हो सकती क्योंकि इसमे अन्तिम कृति के अपेक्षित सम्भावित गुण नही पाये जाते। ऐसी दशा मे इसकी वस्तुस्थिति की जाँच करना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

किसी भी कवि की अन्तिम रचना भले ही उसकी समस्त कृतियो में श्रेष्ठतम न हो परन्तु प्रौढतर अवश्य होती हैं। इस दृष्टि से 'आखिरी कलाम' की साहित्यिकता पर-जब हम विचार करते हैं तो हमे वहुत निराशा होती है। इनमें अनेक काव्यगत त्रुटियाँ हैं जिनमे से कुछ का सकेत मैं नीचे कर रहा हूँ—

१—अनेक शब्दो का विकृत रूप प्रयोग किया गया है।

२—कहीं-कहीं शब्दो के वास्तविक अर्थ को छोड मनमाने अर्थ के लिए उनका प्रयोग किया गया है।

३—क्रियाओ के रूप प्राय अशुद्ध है।

४—मुहाविरा सूचक शब्दो का प्रयोग भी अनुचित और असगत रूप में किया गया है।

५—छन्दो में पर्याप्त शैथिल्य है। मात्राओ के न्यूनाधिक होने के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

६—शब्द योजना प्राय अशक्त और अनुपयुक्त है।

७—निम्नकोटि के अलकारो का प्रयोग किया गया है। उदाहरण भद्दे, अरुचिकर तथा वेमेल हैं।

८—अरबी फारसी के शब्दो का बाहुल्य है।

ये सभी त्रुटियाँ काव्य के कलापक्ष के अन्तर्गत आती हैं, अब भावपक्ष की भी कुछ त्रुटियाँ देखिए—

१—सम्पूर्ण काव्य में किसी भी स्थल पर कोई भी रस पूर्णता प्राप्त नहीं कर सका जो कवि की काव्य-साधना के प्रथम चरण का द्योतक है।

२—कवि अपनी कथावस्तु को उचित ढग से प्रस्तुत करने मे भी असफल है। कही भी पाठक की उत्सुकता को वह जागृत नहीं कर पाता।

३—काव्य में नीरस और अनावश्यक स्थल बहुत हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक पृष्ठ पर ऐसे दो-दो, तीन-तीन पद पाये जाते हैं। यह कवित्व का भारी दोप है। इससे पता चलता है कि इस समय तक कवि की काव्य-कला अत्यन्त ही अविकसित अवस्था में थी।

४—काव्य मे अपेक्षित सौष्ठव एव सौदर्य का इसमें सर्वथा अभाव है।

ऐसी दशा में निश्चय ही कवि की प्रारम्भिक कृति है। किसी भी प्रकार अन्तिम कृति नही कही जा सकती।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कहना है कि 'आखिरी कलाम' की शैली पद्मावत की शैली से अधिक प्रौढ है। इस कथन की वास्तविकता की जाँच करने के लिए दोनो काव्यो की कतिपय पक्तियो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना अधिक समीचीन होगा।—

सर्व प्रथम हम दोनो ग्रथो की प्रथम पक्ति को ही लेते हैं—

पहिले नाँव दैव कर लीन्हा। जेइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा ॥
—आखिरी-कलाम

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह, कीन्ह संसारू ॥
—पद्मावत

इन पक्तियो में भाव समान होते हुए भी पद्मावत का सौंदर्य निश्चय ही अधिक है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

मरम पांव कै तेहि पै दीठा। होइ अपाय भुइँ चलै बइठा ॥
—आखिरी-कलाम

दीन्हेसि चरन अनूप चलाहीं। सो जानइ जेइ दीन्हेसि नाहीं ॥
—पद्मावत

दूसरी पक्ति मे सौंदर्य छलका पड रहा है जब कि पहली पक्ति (अर्थात् 'आखिरी कलाम' वाली) शिथिलता से भरी हुई है।

इसी प्रकार अनेक स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिससे पता चलता है कि इस ग्रंथ के रचना काल तक कवि की अभिव्यंजना-शक्ति मे अभी पूर्ण प्रौढता नही आ पाई थी।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की इस रचना में उसकी कला के उज्ज्वलतर रूप प्रस्तुत करने वाले तथा उसे अमर बनाने वाले वे तत्व नही उपलब्ध हैं जिनके आधार पर हम इसे उसकी अन्तिम कृति कह सकें। अस्तु मेरी राय मे 'आखिरी कलाम' कवि की प्रारम्भिक कृतियो मे से है। हाँ, यह आवश्यक नही कि वह कवि की प्रथम कृति हो।

अखरावट

जायसी के प्रसिद्ध तीन-काव्य ग्रथो मे यह तीसरा काव्य-ग्रंथ है। इसमे कुल ४७६ पक्तियाँ हैं जिसके अन्तर्गत ५४ दोहे, ५४ सोरठे और ३७१ चौपाइयाँ (अर्द्धालियाँ) हैं। यह जायसी का सिद्धान्त-ग्रथ कहा जाता है।

रचनाकाल—सम्पूर्ण ग्रथ में कही भी रचनाकल का स्पष्ट सकेत
है। मसनवी-काव्य न होने के कारण इसमे शाहेवक्त की चर्चा भी नहं
ऐसी दशा में इसके रचना-काल का निश्चय करने मे अन्य वातो का ही स
लेना पडता है।

काफी छान-वीन के उपरान्त काव्य के अन्तरग की दो वातो से हमे
इस प्रयत्न में थोडी सहायता मिलती है। प्रथम बात कवि द्वारा गुरु पर
का उल्लेख है। जायसी ने अपने प्रारम्भिक काव्य-ग्रथ 'आखिरी कला
केवल एक गुरु-परम्परा की चर्चा की है। शेष दो ग्रन्थो 'पद्मावत' और
रावट' में दो-दो परम्पराओ का उल्लेख है इससे यह पता चलता है कि ज
का सम्बन्ध प्रारम्भ में केवल एक गुरु परम्परा से था, किन्तु कुछ कालोप
दूसरी गुरु परम्परा से भी हो गया। 'अखरावट' मे दो गुरु परम्पराअ
उल्लेख इस वात का सकेत है कि वह 'आखिरी कलाम' से वाद की रचन

अव 'पद्मावत' और 'अखरावट' मे से किसे पहले की रचना मानी
और किसे वाद की, यह प्रश्न उठता है। इस दिशा में 'अखरावट' की एक
वडा महत्वपूर्ण कार्य करती है। यह पक्ति ४५-सवें दोहे की पहली च
में है—

"कहा मुहम्मद प्रेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भये धियानी।"

निश्चय ही ज्ञानी लोगो को प्रेम में ध्यानावस्थित कराने वाली वह
कहानी 'पद्मावत' ही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है 'अखरावट', 'पद्मावत
वाद की रचना है।

सैयद कल्वे मुस्तफा अपनी पुस्तक 'मलिक मुहम्मद जायसी' के १६
पृष्ठ पर लिखते हैं—

**"अलफाज का इन्तखाव जुवान की रवानिगी, वन्दिश की चुश्ती पता
है कि यह नज्म शायर जायसी के दौर आखिर का नतीजा है। इसके
करायन हैं कि अखरावट पद्मावत के वाद तसनीफ हुई है।"** डाक्टर ज
भी सैय्यद मुस्तफा के स्वर में स्वर मिलाते हुए अपनी पुस्तक "सूफी महा
जायसी" के पृष्ठ १३५ पर लिखते हैं कि **"हम भी मुस्तफा साहव के निर्ण**

पूर्णतया सहमत हैं। इस काव्य में छन्दगत दोष न्यूनतम हैं। दोहे चौपाइयों में माधुर्य भी अधिक है और भाषा भी अधिक सुस्थिर तथ व्यवस्थित है। कवि ने एक नवीन छन्द सोरठे का भी सफल प्रयोग किया है।"

जनश्रुति के अनुसार 'अखरावट' की रचना अमेठी के राजा के कहने पर हुई थी। यहाँ पाठकों को याद रखना चाहिये कि अमेठी के राजा का जायसी से परिचय 'पद्मावत' के ही माध्यम से हुआ था। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'अखरावट' पद्मावत के वाद की ही रचना है।

जनश्रुति, शैली की प्रौढता और विशदता, तथा कवि की आध्यात्मिकता की गहराई 'अखरावट' को 'पद्मावत' के बाद की रचना मानने को विवश करती है। पिछले पृष्ठो मे मैं यह प्रमाणित कर चुका हूँ कि 'पद्मावत' ९४७ हिजरी मे पूर्ण हुआ था। ऐसी दशा में यह निश्चित होता है कि 'अखरावट' की रचना ९४८-४९ हिजरी के बीच ही हुई। जायसी की मृत्यु ९४९ हिजरी सर्व सिद्ध है।

शैली—'अखरावट' न प्रवन्ध काव्य है न मुक्तक, वरन् यह तो एक सिद्धान्त-काव्य के रूप में है। उस समय मे प्रचलित सिद्धान्त-काव्य की अशास्त्रीय पद्धति के अन्तर्गत 'ककरहा-पद्धति' मे इसकी रचना हुई है जिसका विपयानुकूल विभाजन नही हो सकता। हाँ, वर्णमाला के अक्षर-क्रम मे इसका विभाजन किया जा सकता है परन्तु उसका मूल्य नगरायवत है।

इस ग्रंथ का आरम्भ दोहे से किया गया है और उसमे मुहम्मद साहव के नूर के सर्वप्रथम निर्माण किये जाने की घोषणा की गई है। एक दोहे के पश्चात् एक सोरठा है और फिर सात अर्द्धालियाँ हैं। इसी प्रकार दोहे, सोरठे और अर्द्धालियो का चक्र घूमा करता है।

वर्ण्य-विषय और उसका साहित्यिक मूल्यॉकन—'अखरावट' कवि के सिद्धान्तो और दार्शनिक विचारो का ग्रंथ है। इसमें कवि ने सृष्टि के मूल प्रयोजन और प्रकारो आदि का वर्णन किया है। कवि ने योग, उपनिपद, अद्वैत-वाद, भक्ति और इस्लामी एकेश्वरवाद आदि से महत्वपूर्ण सामग्री ग्रहण कर अपने ग्रंथ के वर्ण्य-विपय का निर्माण किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार आरम्भ

में आदि ब्रह्म था। उसने अपने मनोरजन और आनन्द के लिए आनन्द की सृष्टि की। सृजन के क्रम में सर्वप्रथम चार फरिश्तो का निर्माण हुआ और इन चारो ने वायु, जल, अग्नि और मिट्टी इन चार तत्वो को मिलाकर पाँच भूतो से युक्त दस द्वार वाला एक पुतला रचा जो आदम कहलाया। फिर **"होआ"** की रचना की गई और इन दोनो को स्वर्ग में विहार करने भेज दिया गया। वहाँ नारद के बहकाने से इन दोनो ने वर्जित फल 'गेहूँ' खा लिया। परिणाम-स्वरूप इन्हे अल्लाह का कोप भाजन बनकर एक लम्बे काल तक वियोग का कष्ट उठाना पडा। अन्त में भगवान की ही कृपा से उनका पुनर्मिलन हुआ और फिर उन दोनो से समस्त मानव-सृष्टि की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुरक दोनो उन्ही की सतान हैं। शरीर मे ही कवि ने स्वर्ग-नरक, सूर्य-चन्द्र, ऋतु तथा पुले सरात आदि सबकी कल्पना की है। साथ ही पाच ठग भी बताये हैं और उनसे अधिकाधिक सचेष्ट रहने को कहा है।

इसी प्रकार अन्य अनेक बातो का वर्णन करते हुआ अन्त में कवि ने चेला-गुरू सम्वाद के रूप में सिद्धान्त विवेचन किया है, और बताया है कि मनुष्य को उस परम शक्ति के प्राप्त करने के साधनो में लग जाना चाहिए। प्रेम गाथाओ का वर्णन करना चाहिए क्योंकि अन्य सभी चीजें मिट जायँगी। इस ससार में केवल एक प्रेम कहानी ही अमर रहेगी।

'अखरावट' की विशेषता उसके आध्यात्मिक विचारो में ही है। ब्रह्मवाद, हठयोग, चक्रभेद और आनन्दवाद तथा सूफी इस्लामी सिद्धान्तो का समन्वयात्मक एकीकरण इस ग्रन्थ की विशिष्टता है। ग्रन्थ में वर्णित आध्यात्मिक विचारो को सक्षेप में डाक्टर रामरतन भटनागर ने इस प्रकार दिया है—

१—आदि में एक चित्सत्ता ही की स्थिति थी, उसे चाहे आदि गोसाईं कहो, या नूर कहो, या अल्लाह, या सुन्न (शून्य)। कालांतर में इसी अस्तित्व से द्वियायुत जग का निर्माण हुआ। आकाश-पाताल, पाप-पुण्य, सुख-दुख।

२—नारद या शैतान के भुलावे में आकर जीव की अभेद स्थिति जाती रही। आदम स्वर्ग से निकाला गया। जीव अल्लाह के जमाल और जलाल से वञ्चित हुआ।

३—जीव मे इसी वियोग की तड़पन है वह एक वार फिर इसी अल्लाह के जमाल और जलाल को प्राप्त करना चाहता है। यह उसी समय सम्भव है जव पहली अभेद स्थिति को वह प्राप्त हो सके जव जीव, ब्रह्म हो जावे।

४—इसके लिए प्रधान साधन है मन का परिष्कार।

५—परन्तु केवल मन के परिष्कार से ही कुछ नहीं होता। साधक को कुछ विशिष्ट साधनाओं की भी आवश्यकता पडती है। जायसी का सूफी पथ पर विशेष आग्रह है, यद्यपि वह प्रत्येक पंथ को उपादेय मानते हैं।

६—जायसी का सूफी पथ उनकी अपनी खोज है वह न शास्त्रीय सूफी पथ है, न केवल भावनात्मक रहस्यवादिता। उनके अग हैं—

(क) नमाज, तरीकत, मारफत, हकीकत और शरीअत ये इस्लामी विधि विधान हैं परन्तु जायसी ने इनकी नई व्याख्या की है, यद्यपि इनके सम्वन्ध में विस्तार पूर्वक उन्होने नही लिखा।

(ख) उसमें योग की भाँति कायानिष्ठ ब्रह्म की भावना है। इस पिंड (शरीर) मे ही अल्लाह समाया है। 'त्रिकुटि' 'चक्रभेद' इत्यादि यौगिक साधनाओं द्वारा उसे प्राप्त करना सम्भव है।

(ग) नैतिक आचरण और हृदय-मन की शुद्धता।

(घ) 'प्रेम की पीर' की साधना।

७—यह निश्चय है कि जायसी ने अन्तिम अग पर अधिक वल दिया है। सूफी तो एक मात्र प्रेम को जानता है। 'पद्मावत' में इस अग को ही काव्य का विषय वनाया गया है। 'पद्मावत' की कहानी 'प्रेम की पीर' की ही कहानी तो है। इसी से जायसी अखरावट मे प्रेम की साधना को विस्तार पूर्वक नही समझाते। यह समझाने की वात भी नही है। इसे तो हृदय ही समझ सकता है। फिर इन साधना के आनन्द का आभास गुरु-मुख होने से मिलता है। जायसी स्पष्ट कहते हैं—

"भा फल मीठ जो गुरु हुंत पावै।"

परन्तु गुरु भी साधक को कितनी दूर वढा सकता है। इस सँकरे पथ पर तो अकेला ही चलना होगा। कवि कहता है—

कठिन खेल औ मारग सँकरा। वहुतन्ह खाइ फिरे सिर टकरा ॥
मरनं-खेल देखा सो हँसा। होइ पतग दीपक मँह घँसा ॥
तन पतग भिरिंग के नाईं। सिद्ध होइ सो युग-युग ताईं ॥
विनु जिउ दिये न पावै कोई। जा मर जिया अमर भा सोई ॥

इस कठिन प्रेम पथ के साधक का यह एक चित्र कितना सजग है—

प्रेम ततु तस लाग रहु, करहु ध्यान चित बाँधि।
पारघ जैस अहरे कहँ, लाग रहे सर साधि ॥

यह प्रेम की एक लक्ष्य साधना ही एक रूपक में रत्नसेन की पद्मावती प्राप्ति की कहानी बन गई है।

८—आध्यात्म दर्शन के रूप मे जायसी औपनैपदिक ब्रह्मवाद से भी आगे जाते हैं। वह कहते हैं—

जो किछु है सो है सब, ओहि विनु नाहिन कोइ।
जो मन चाहा सो किया, जो चाहे सो होइ ॥

वह जीव, ब्रह्म और प्रकृति को तत्वत एक मानते हैं। यद्यपि कही-कही जहाँ वे प्रकृति को उसकी छाया कहते हैं, वहाँ प्रतिविंबवाद की झलक आ जाती है। जो अन्तर है, वह माया के कारण नही है, शैतान की करनी है। शैतान के भुलावे में आकर जीव अपने जमाल और जलाल को भूल गया है। इसी से उसके, अल्लाह के और प्रकृति के वीच में परदा पड गया है। परन्तु जव सव अल्लाह ही अल्लाह है तो यह दु ख-सुख, पाप-पुण्य इत्यादि द्वैव स्थिति क्यो है ? जायसी ने इसका भी उत्तर दे दिया है। जैसे जीवात्मा शुद्ध आनन्द स्वरूप है पर शरीर के सयोग मे दु ख आदि से युक्त दिखाई पडता है, वैसे ही शुद्ध ब्रह्म ससार के व्यावहारिक क्षेत्र मे भला-वुरा आदि कई रूपो में दिखाई पडता है—

सुनु चेला ! जम सव ससारू। ओहि भाँति तुम कया विचारू ॥
जो जिउ कया तौ दु ख सौ भीजा। पाप के ओट पुन्नि सव छीजा ॥
जस सूरज उअ देख अकासू। सव जस पुन्नि उहै परगासू ॥
भल औ मद जहाँ लगि दोई। सव पर धूप रहै पुनि सोई ॥

मंदे पर वह दिस्टि जो परई। ताकर मैलि नैन सों ढरई ।।
अस वह निरमल धरति अकासा। जैसे मिली फूल महँ वासा ।।
सवै ठाँव औ सव परकारा। ना वह मिला न रहै निनारा ।।
ओहि जोति परछाहीं, नवौ खंड उजियार।
सूरज चाँद कै जोती, उदित अहै ससार।

इस प्रकार केवल अद्वैतवाद के आधार पर ही जायसी अपने आध्यात्म जगत का निर्माण करने में सफल हो जाते हैं। 'अखरावट' में एक स्थान पर माया' का उल्लेख अवश्य है, परन्तु शकराद्वैत के अर्थों में नही। जायसी जीव-ब्रह्म के बीच में माया की स्थिति नही मानते। —डा० भटनागर

सूफियो के एक प्रधान वर्ग का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है। यह अनेकत्व जो दिखलाई पड़ता है वह उसी का ही भिन्न रूपो में आभास है। यह नाम रूपात्मक दृश्य जगत उसी एक सत् की वाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का वोध इन्ही नामो और गुणो के द्वारा हो सकता है। इसी वात को ध्यान में रखकर जायसी ने कहा है—

दीन्ह रतन विधि चार, नैन, वैन, सरवन्न, मुख।
पुनि जव मैंटिहि मार, मुहमद तव पछिताव मै।

—अखरावट

इस परमात्मा के दो स्वरूप हैं—नित्यत्व और अनतत्व। दो गुण हैं—जनकत्व और जन्यत्व। शुद्ध सत्ता में तो न नाम हैं, न गुण। जव वह निर्विशेपत्व या निर्गुणत्व से क्रमश. अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे आती है तव उस पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं। इन्ही नाम रूपो और गुणो की समष्टि का नाम जगत है। सत्ता और गुण दोनो मूल में जाकर एक ही हैं। दृश्य जगत भ्रम नही है, उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या ऊपरी रूप में उसका अस्तित्व है। वेदान्त की भाषा में वह ब्रह्म का ही 'कनिष्ठ स्वरूप' है। हल्लाज के मत की अपेक्षा यह मत वेदान्त के अद्वैतवाद के अधिक निकट है। (जायसी ग्रथावली की भूमिका, पृष्ठ १४४-४५)।

जायसी मूल अद्वैत स्थिति तक पहुँचने के बीच में अहंकार को सबसे बड़ा विघ्न मानते हैं। इस सम्बन्ध का उनका उपदेश देखिये—

'हौं-हौं' कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई।
आपुहि गुरु सा आपुहि चेला। आपुहि सब औ, आपु अकेला॥
'सोऽहं-सोऽहं' बसि जो करई। जो बूझै, सौं धीरज धरई।
जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन जिउ, जीवन सब सोई॥
'हौं-हौं कहत धोख इतराही। जब भा सिद्ध कहाँ परछाँही।

कबीर ने भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की है—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं 'मैं' नाहिं।

जायसी की चित्त और अचित्त की एकता शांकर के वेदान्त से मिलती हुई भी पर्याप्त मतभेद रखती है शांकर-वेदान्त विवृतिवाद के अधिक निकट है—यह जगत ब्रह्म का विवर्त्त (कल्पित कार्य) है। मूल सत्य द्रव्य ब्रह्म ही है जिस पर अनेक असत्य अर्थात् सदा बदलते रहने वाले दृश्यों का अध्यारोप होता है। जो नाम रूपात्मक दृश्य हम देखते हैं वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न ब्रह्म का कार्य, या परिणाम ही है। वह है केवल अध्यास या भ्रांति ज्ञान। उसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। नित्य तत्व एक ब्रह्म ही है।" (जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ १४७)

जायसी 'माया' के स्थान पर प्रकृति में प्रतिबिम्बवाद की जो प्रतिष्ठा करते हैं वह और कुछ नही, अद्वैतवाद के महत्व का प्रतिपादन ही है—

आपुहि आपु जो देखै चहा। आपनि प्रभुता आपुसों कहा।
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन, आपुहि देखा॥
आपुहि बन, औ आपु पखेरू। आपुहि सौजा, आपु अहेरू।
आपुहि पुहुप फूलि बन फूलै। आपुहि भँवर बास-रस भूलै॥
आपुहि घट, घट महँ मुख चाहे। आपुहि आपन रूप सराहे।
दरपन बालक हाथ, मुख देखै दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिये॥

इन पक्तियो की आचार्य शुक्ल ने जो व्याख्या की है वह भी पठनीय है—"आपुहि दरपन, आपुहि देखा ।" इस वाक्य से दृष्य और दृष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है। इसी अर्थ को लेकर वेदान्त में यह कहा जाता है कि ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नही उपादान कारण भी है। 'आपुहि आप जो देखै चहा' का मतलव यह है कि अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार जव देखना चाहा। शक्ति या माया ब्रह्म ही की है, ब्रह्म से प्रथक् उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नही। 'आपुहि घट-घट मँह मुख चौहें'—प्रत्येक शरीर में जो कुछ सौदर्य दिखाई पडता है वह उसी का है। किस प्रकार एक ही अखण्ड सत्ता के अलग-अलग वहुत से प्रतिविम्व दिखाई पडते हैं यह वताने के लिए जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं—

"गहरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै।
सूरुज दिपै अकास, मुहमद सब मह देखिये ॥"

(जायसी ग्रथावली की भूमिका पृष्ठ १४८)

जायसी भारत मे जन्मे थे, भारत की मिट्टी से उनका पालन पोपण हुआ था, फिर यह कैसे सम्भव था कि वे भारतीय जीवन दर्शन से प्रभावित न होते। यही कारण है कि 'अखरावट' मे हम एक साथ वेदान्ती अद्वैतवाद और सूफी प्रेमवाद (इश्क) का समन्वय पाते हैं।

जायसी का यह ग्रथ उनकी काव्या-कला और दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विचारो का एक प्रौढतर स्तम्भ है। जिस सीधी-सादी और वोधगम्य भापा-शैली में धार्मिक एव अध्यात्मिक गूढ भावो को कवि ने व्यक्त किया है वह भारतीय साधना और साहित्य मे सब प्रकार से प्रशसनीय है—'अखरावट' अपनी श्रेष्ठता और गम्भीरता के लिए हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट और सम्मानपूर्ण स्थान रखता है।

प्रश्न ४—हिन्दी में प्रेम गाथा काव्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए उसमें जायसी का योग दान वताइये।

हिन्दी में प्रेम गाथा काव्य का इतिहास जानने से पूर्व हमें उन समस्त परिस्थितियो से अवगत होना अनिवार्य है जिनके वीच सूफी धर्म ने भारत मे

मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।" इन साधको ने हिन्दी में एक विशेष प्रकार के साहित्य को लुप्त होने से बचा लिया। आचार्य डा० हजारी-प्रसाद के शब्दो में "कबीरदास के निर्गुण भजन, सूरदास के लीलागान और तुलसीदास के रामचरितमानस अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गये और हिन्दू जनता का सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। परन्तु जन-साधारण का एक और विभाग, जिसमे धर्म का स्थान नहीं था, जो अपभ्र श साहित्य के पश्चिमी आकार से सीधे चला आ रहा था, जो गांवों की बैठको में कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था, उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक-प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।"

ऐसा बताया जाता है कि हजरत मुहम्मद की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त से जब खलीफाओ की धार्मिक भावना पर राज्य विस्तार तथा ईश्वर प्राप्ति की भावना ने अपना अधिकार जमा लिया तो इस्लाम धर्म में भी आडबर और साम्प्रदायिकता का समावेश होने लगा। इस्लाम से इसे दूर करने अथवा यो कहिए कि इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही सूफीमत का आविर्भाव हुआ था। भारत में यह सूफीधर्म प्रधानत चार सम्प्रदायो के रूप में प्रविष्ट हुआ और इन्ही चारो सम्प्रदायो की धार्मिक प्रवृत्ति के रूप में उसका यहाँ विकास हुआ। वे चारो सम्प्रदाय इस प्रकार हैं—

(१) चिश्ती सम्प्रदाय (२) सोहरावर्दी सम्प्रदाय (३) कादरी सम्प्रदाय और (४) नक्शबदी सम्प्रदाय।

ये सम्प्रदाय बारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक बने रहे। इनके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये न किसी नृपति के आश्रय में पल्लवित हुए और न किसी के द्वारा इनका सगठन ही किया गया। इन सम्प्रदायो के सूफी सत अपनी व्यक्तिगत महत्ता और साधना के आधार पर जनता तथा राज्य मे श्रद्धा व आदर प्राप्त करते थे। ये सत अपने धार्मिक जीवन मे अत्यत सरल और सहिष्णु थे। इनमें उदारता और विशालता थी। ये धार्मिक स्थानो का परिभ्रमण कर अपना अनुभव जन्य उपदेश जनता

को देते थे। उन्होने अपने ज्ञान रूपी प्रकाश के स्तम्भो से अपने उपदेशो का आलोक दूर-दूर तक जन-धरा पर बिखेरा। अपने आकर्षण और प्रेम के माध्यम से अन्य मतावलवियो को व्यक्तिगत सात्विक प्रभाव मे लाकर सूफी मतो के अनुयायियो मे परिवृद्धि की ये चारो सम्प्रदाय अपने मूल सिद्धान्तो मे समान थे। वाह्य रूप से उनमे वही भेद मालूम होता था जो किन्ही भी दो व्यक्तियो के व्यक्तित्वो व सिद्धान्तो में हो सकता है। उनके धार्मिक विचारो और व्यवहारो मे पर्याप्त उदारता थी। मुसलमानो के एकेश्वरवाद की अपेक्षा उन पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव अधिक गहरा पडा था। उनकी प्रवृत्ति बड़ी ही सात्विक थी और यही सात्विकता उनकी महत्ता का प्रमुख आकर्षण। ईश्वर को प्राप्त करने की उनकी प्रेम-मयी साधना ही सूफी-धर्म की प्राण शक्ति कही जायगी। हिन्दी प्रेम गाथा काव्यो के मूल में सूफियो की यही ईश्वरोन्मुख प्रेम-मयी वृत्ति काम करती है।

हिन्दी साहित्य मे सूफी साधना दो भाषाओ मे व्यक्त हुई। प्रथम, हिन्दी या खड़ी बोली में (व्रज, पजावी, दकनी और अन्य प्रान्तीय बोलियो से मिश्रित) और द्वितीय अवधी मे खडी बोली में सूफी साहित्य फुटकर पदो, दोहो और गजलो आदि के रूप में रचा गया। पश्चिमी और दक्षिणी भारत मे इस प्रकार की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हुई। पूर्वी हिन्दी प्रदेश में अवधी के माध्यम द्वारा यह प्रकाश में आई। दोनो भाषाओ मे "मसनवी" (कथात्मक) साहित्य की रचना हुई। परन्तु खडी बोली की मसनवियाँ "दकनी" (फारसी और व्रज-भाषा मिश्रित खडी बोली) में है और इन पर भारतीय कथा पद्धति और काव्य का उतना प्रभाव नही है जितनी पूर्वी साधको की अवधी कथाओ मे जान पडता है। जो कथायें इन साधको ने पद्य बद्ध की, वे मौलिक रूप से भारतीय थी और जन साधारण में लोक कथाओ के रूप मे चली आ रही थी। उन्होंने उनके प्रभाव को समझा और उन्हे अपने भावो के प्रचार का माध्यम बनाया। वस्तुत. अवधी का सूफी काव्य ही हिन्दी मे प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें प्रेम कथाये लिखी हुई हैं।

इनके इतिहास पर दृष्टिपात करने से इन प्रेम कथात्मक काव्यो का परिचय

हमें चारण काल से ही मिलने लगता है। मुल्ला दाउद के 'चन्दावत' को लोग इस परम्परा का प्रथम प्रसिद्ध काव्य बताते है, इस नाते उसका ऐतिहासिक महत्व विशेप है। इस काव्य में नूरक और चन्दा की प्रेम कथा का वर्णन है। इसका रचनाकाल १३१८ ई० है। यह समय अलाउद्दीन खिलजी के शासन का था। इसके पश्चात् कुतुबन से पूर्व हमें कोई ऐसा काव्य नही उपलब्ध होता। सम्भव है और भी प्रेम कथायें लिखी गई हो जो इस समय प्राप्त नही हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने पदुमावती (पद्मावती) नामक ग्रथ में कुछ प्रेम कथाओ का इस प्रकार सकेत किया है—

विक्रम धँसा प्रेम के वारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा वैरागी॥
राजकुँवर कचनपुर गयऊ। मिरगावति कँह जोगी भयऊ॥
साथ कुवर खडावत जोगू। मधुमालति कँह कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कँह सुरसर साधा। ऊषा लगि अनिरुध वर वाँधा॥

इससे प्रतीत होता है कि जायसी (सन १४९५ ई०) से पूर्व सपनावती, मुगधावती, मृगावती, तथा मधुमालती और प्रेमावती प्रेम काव्य लिखे जा चुके थे। इनमें से मृगावती और मधुमालती तो खडित रूप में उपलब्ध हैं परन्तु शेष का पता नही। जायसी द्वारा साकेतिक कथाओ मे विक्रमादित्य एव उषा अनिरुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति है। शेप लोक प्रचलित कथाओ का आश्रय लेकर लिखी हुई जान पडती हैं।

'मृगावती' की रचना शेख कुतुवन द्वारा हुई है जिसका रचनाकाल १५६० है। मृगावती में, मृगावती और चन्द्रगिरि के राजकुमार की प्रेम कथा का वर्णन पाया जाता है। कथा का वर्णन दोहा चौपाई तथा सोरठा और अरिल्ल छदो में हुआ है। इसमें शामी परपरा का प्रभाव पूर्ण रूपेण परिलक्षित होता है। साथ ही भारतीय परपरा का भी इस पर प्रभाव है। राजकुमार की मृत्यु के उपरात उसकी दोनो रानियाँ सती हो जाती है और तव कवि कह उठता है—

वाहर वह भीतर वह होई,
घर वाहर को रहे न जोई।

विधि कर चरित न जानै आनू,
जो सिरजा सो जाहि नियानू ॥

'मधुमालती' के रचयिता मझन हैं। अनुमानत इसका रचनाकाल १५७५
१५८५ के बीच मे कहा जा सकता है। इसकी कथा तथा वर्णन शैली अपने
वर्ती ग्रथो की अपेक्षा अधिक जटिल, प्राँजल व कोमल है। इसमे कनेसर के
तकुमार 'मनोहर' और महारस की राजकुमारी मधुमालती की प्रेमकथा के
थ ही साथ उपनायक ताराचन्द तथा उपनायिका प्रेमा की कथा का भी
र्णन हुआ है। जायसी ने मधुमालती का नायक कुडावत लिखा है, परन्तु
मान कृत चित्रावली मे इसके स्थान पर मनोहर का उल्लेख है—

मधुमालति होई रूप देखावा।
प्रेम मनोहर होई तहँ आवा ॥

इस काव्य मे प्रेम के सिद्धान्त तथा कथा का संगठन और विरह का वडा
नोहारी चित्रण हुआ है। यह काव्य वर्णन प्रधान है। कहा जाता है कि इसे
पने समय मे सर्वाधिक ख्याति मिली थी। कवि ने अपनी कोमल भावनाओ
ो मनहर कथा सूत्र मे वडी सावधानी से पिरोया है। इस काव्य के अत्यधिक
भावशाली होने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इसके कवि ने प्रेम भाव
ो प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर जाग्रत कराया है।

'मृगावती' और 'मधुमालती' के वाद जायसी के 'पदमावती' का ही नाम
ाता है क्योकि जायसी के पश्चात् हुए उसमान कवि ने भी 'मृगावती' 'मधु
ालती' और 'पद्मावती' का उल्लेख किया है।

मृगावती मुख रूप वसेरा।
राजकुंवर भयो प्रेम अहेरा ॥
सिहल पदुमावति मो रूपा।
प्रेम कियो है चितउर भूपा ॥
मधुमालति होइ रूप देखावा।
प्रेम मनोहर होई तहँ आवा ॥

—चित्रावली पृष्ठ १३

पद्मावती हिन्दी साहित्य का एक जगमगाना रत्न है। जिसकी ज्योति कभी क्षीण होने वाली नही। इसके प्रेमाख्यान का प्रभाव इतना पडा कि उसके वाद प्रेमाख्यानक काव्यो की एक परम्परा सी चल पडी और वह उन्नीसवी शताव्दी के मध्य तक चलती रही। पद्मावत के वाद लिखे गये प्रमुख प्रेम काव्यो की तालिका डा० विमलकुमार जैन ने अपने शोधग्रथ **'सूफीमत और हिन्दी साहित्य'** के पृष्ठ ११३ पर इस प्रकार दी है—

काव्य	कवि	काल	
१ चित्रावली	उसमान	सन् १०२२ हिजरी	सन् १६१३ ई०
२ ज्ञानदीप	शेख नवी	लगभग स० १६७६	सन् १६१९ ई०
३ हम जवाहर	कासिमशाह	लगभग स० १७८८	सन् १७३१ ई०
४ इन्द्रावती	नूर मुहम्मद	हिजरी सन् ११५७	सन् १७४४ ई०
५ अनुराग वाँसुरी	"	हिजरी सन् ११७८	सन् १७६४ ई०
६ प्रमरतन	फाजिलशाह		सन् १८४८ ई०

इसी क्रम में वे दो काव्यो का उल्लेख करते है उनके नाम हैं, ७ माधवानल ८ युसुफ जुलेखा। 'माधवानल' के रचयिता आलम है और उसका रचनाकाल हिजरी ९९१ (सन् १५८३ ई०) है। 'युसुफ जुलेखा' के रचने वाले शेख निशार हैं। इसका रचनाकाल हिजरी सन् १२०५ (१७९० ई०) है। परन्तु इन ग्रथो का प्रेम गाथा काव्य परम्परा मे कोई विशेष महत्व नही। डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने पुहुपावती नाम के एक और ग्रन्थ की चर्चा की वह निश्चय ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

'चित्रावली' का स्थान अपनी परम्परा मे वडे गौरव का है। इसका प्रणयन वहुत कुछ पदमावत के अनुकरण पर हुआ है। प्रमुख अन्तर यही है कि इसकी कथा पदमावत की भाँति ऐतिहासिक न होकर कल्पना प्रसूत है। इसमे कवि ने स्थान-स्थान पर वेदांत और अद्वैतवाद की झलक दिखाई है—

सव वही भीतर वह सव माँही, सबै आपु दूसर कोउ नाहीं।
दूसर जगत नाम जिन पावा, जैसे लहरी उदधि कहावा॥

कथा मे घटनाओं की शृङ्खला बहुत लम्बी और कौतूहलपूर्ण है। उसमें अनेक अलौकिक बातो का भी समावेश है। कथा को विस्तृत करने की कल्पना की गई है। इसमें नेपाल के राजकुमार सुजान, रूपनगर की राजकुमारी 'चित्रावली' और सागर की राजकुमारी कमलावती की प्रेम कथा है। दोनो राजकुमारियो से विवाह करने से पूर्व जितनी कठिनाइयाँ आती हैं उनका विस्तृत-विवेचन इस काव्य में किया गया है। कवि ने कल्पना के साथ आध्यात्म की बडी मनहर व्यजना की है। चित्रावली को लेकर काव्य मे अनेक स्थानो पर ईश्वर और जीव का रूपक बांधा गया है। वह जब जल मे छिप जाती है तो सखियाँ उसे ढूंढती रहती हैं। सखियो का यह ढूंढना आत्मा की जिज्ञासा वृत्ति का द्योतक है, और चित्रावली का जल मे छिपना ईश्वर के अमूर्त होने से साम्य रखता है। देखिये चित्रावली के जल मे छिप जाने पर कवि ने सखियो से कैसे अलौकिक और गूढ वचन कहलवाए हैं—

गुपुत तोहि पावहि का जानी, परगट मंह जो रहहि छ्यानी।
चतुरानन पढि चारौ बेदू, रहा खोज पै पाव न भेदू॥
सकर पुनि हारे कै सेवा, ताहि न मिलिज आर को देवा।
हम अधी जेहि आपु न सूझा, भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा॥
कौन सो ठांउ जहाँ तुम नाहीं, हम चपु जोति न देखहि काहीं।
पावै खोज तुम्हार सो, जेहि देखलावहु पथ।
कहा होइ जोगी भये, औ पुनि पढे गरथ॥

—चित्रावली पृष्ठ ४७-४८

वहुज्ञ उसमान ने अपनी लोकोक्तियो द्वारा काव्य मे एक विचित्र प्रभावोत्पादकता ला दी है। यथा स्थान कवि का भूगोलादि का ज्ञान भी परिव्यक्त हुआ है।

'ज्ञानदीप' मे राजा ज्ञानदीप और देवजानी की कथा वर्णित है। इसके कवि शेख नबी जौनपुर जिले में मऊ के निवासी थे। कहना न होगा इस काव्य में भी परम्परागत गुणो और यथेष्ट सरसता का समावेश है।

'हस-जवाहर' में राजा हस और रानी जवाहर की प्रेम कहानी है। इसके रचयिता कासिम शाह दरियावाद (बाराबकी) में उत्पन्न हुए थे। ये अपनी जाति में निम्नवर्ग से सम्बन्धित थे। **'हस-जवाहर'** की कथा इस तरह है कि वलखनगर के सुलतान बुरहान के घर एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ और चीनाधिपत्य आलमशाह के घर जवाहर नाम की एक सुन्दरी कन्या ने जन्म लिया। बडे होकर इन दोनो के हृदय में प्रेम का बीजारोपण हुआ। हस, जवाहर के लिए घर से योगी होकर निकला और अनेक कष्टो के पश्चात् उसे प्राप्त कर घर लौटा। यह काव्य भी अपनी परम्परा के अन्य काव्यो की भाँति आध्यात्मपरक ही है।

'इन्द्रावती' और **'अनुराग-बाँसुरी'** के रचयिता नूर मोहम्मद हैं। ये जौनपुर जिले में सबरहद नामक स्थान के रहने वाले थे। बाद में आजमगढ में अपने ससुर समसुद्दीन के यहाँ रहने लगे। इनका समय १७४० के आस पास का है क्योकि **'इन्द्रावती'** में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह की प्रशसा की गई है। 'इन्द्रावती' का रचनाकाल ११५७ हिजरी (सन् १७४४ ई० के लगभग) और 'अनुराग बाँसुरी' सन् ११७८ हिजरी (सन् १७६४ ई० के लगभग) है। डा० विमलकुमार जैन के शब्दो में **"अनुराग बाँसुरी तो तत्वज्ञान की मजूषिका ही है। ईश्वर जीव के मध्य मनोवृत्ति के सहारे प्रेम कथा का ऐसा सुन्दर चित्रण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।"** नूर मुहम्मद का उपनाम 'कामयाब' था।

नूर मुहम्मद के बाद फाजिलशाह ने 'प्रेम-रतन' लिखा जिसमें नूरशाह और माहेमुनीर की प्रेम कथा है, परन्तु इसका अपनी परम्परा में कोई महत्वपूर्ण स्थान नही। इसमें भी वही सब बातें साधारण स्तर पर दुहराई गई हैं। इसी प्रकार 'नलदमन' नाम का भी एक काव्य मिला है जो १६५६ ई० का है। इसके लेखक कोई सूरदास हैं पर यह भी महत्वहीन काव्य है।

पुहुपावती का रचनाकाल १६६९ ई० है। इसके रचयिता दुखहरनदास हैं। इसमें राजपुर के राजकुंवर और अनूप नगर के राजा अवरसेन की पुत्री पुहुपावती और काशी के चित्रसेन की कन्या रूपावती की प्रणय कथा है। यह ग्रन्थ भी उच्चकोटि का आध्यात्मपरक सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है।

इस परम्परा के समस्त ग्रन्थो का अवलोकन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि इस धारा के कवियो की दृष्टि सूफी मत के प्रचार पर सर्वाधिक सम्पूर्णत नही टिकी रही। हमारे कथन की पुष्टि इस बात से और भी होती है कि सभी ग्रन्थो मे पारस्परिक समानताएँ हैं जिनसे यह प्रतिध्वनित होता है कि सभी एक ही लक्ष्य के पथिक हैं। वह लक्ष्य और कोई नही सूफीमत का प्रचार ही था। ये कवि बडे ही उदार और सात्विक विचारो के थे (जैसा कि सूफीधर्म मे दीक्षित प्रत्येक व्यक्ति हुआ करता है) और इनका हृदय प्रेम की पीर से भरा हुआ था। इन ग्रन्थो मे पाई जाने वाली कुछ प्रमुख समानताएँ इस प्रकार हैं—

१. प्राय सभी काव्य मुसलमानो द्वारा लिखे गए हैं। इनके लेखक अत्यन्त ही उदार और सात्विक वृत्ति वाले थे।

२. सभी प्रेमाख्यानक काव्यों के नाम- नायिकाओं के ऊपर हैं। नायक और नायिका क्रमश ब्रह्म और जीव के प्रतीक रूप मे चित्रित किये गए हैं। परम सौन्दर्य और अखड प्रेम भावना रूपी नायिकाओ की प्राप्ति ही नायको की साधना का लक्ष्य है। इन्ही के लिए नायक भटकते फिरे हैं।

३ प्रत्येक काव्य का नायक दो पत्नी धारी है एक पत्नी सासारिक कार्य भार को वहन करती है और दूसरी परमात्मा की उज्ज्वल ज्योति रूप है। पदमावती मे पद्मावती और नागमती, मृगावती मे मृगावती और रुकमनी दो दो पत्नियो के रूप मे चित्रित हैं। मधुमालती के कवि ने स्थिति मे थोडा-सा मोड देकर भारतीय जनता के मर्म को और समीप से स्पर्श किया है।

४ सभी सूफी कवियो ने हिन्दू राजाओ को, भले ही वह कल्पित हो क्यो न हो अपने काव्य का विषय बनाया।

५. सूफी कवियो द्वारा वर्णित कथाएँ ही हिन्दू समाज की लोकप्रिय प्रेम कथाएँ नही हैं, वरन् काव्यो मे प्रयुक्त पृष्ठभूमि भी अपनी सम्पूर्ण रीति नीति में भारतीय हैं।

६. सभी कवियो ने नायिका (शक्ति) के माता पिता द्वारा नायिका के विवाह का विरोध प्रदर्शित किया है।

बिन्दु ही है। जायसी ने इतना बडा पद्मावत न लिखकर यदि केवल नागमती का विरह वर्णन ही लिखा होता तो भी वे काव्य-जगत में अमर पद के भागी होते। असुन्दर जायसी का मानस कितना सुन्दर था इसे पद्मावत की पक्तियाँ ही बता सकती हैं।

ग्रथ का पूर्वार्द्ध काल्पनिक और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। पूर्वार्द्ध में तोते के द्वारा पद्मावती के रूप की प्रशसा सुनकर रत्नसेन का सिंहलद्वीप तक जाना और शिवजी की कृपा से पद्मावती को प्राप्त करना वर्णित है। यह भाग लोक वार्ता पर आधारित है। उत्तरार्द्ध में राघव का अलाउद्दीन को लाना और रत्नसेन का देवपाल के हाथो द्वारा मारा जाना पूर्णत ऐतिहासिक तो नही किन्तु ऐतिहासिक सम्भावनाओ से युक्त है। इस ग्रथ पर नाथ पथ का भी पर्याप्त प्रभाव है क्योकि सिंहलद्वीप नाथ पथियो की सिद्ध पीठ है। हठयोग की क्रियाओ का प्रभाव रत्नसेन पर स्पष्ट दिखाया गया है। ग्रथ में स्थान-स्थान पर लौकिक प्रेम के सहारे आध्यात्मिक तत्वो की बडी सुन्दर व्यजना प्रस्तुत की गई है। काव्य ममनवी ढग से रचा गया है। आरम्भ में ईश्वर, गुरु, रसूल और शाहेवक्त की वदना है। सम्पूर्ण काव्य अवधी भापा में दोहे और चौपाइयो की पद्धति पर लिखा गया है। ग्रथ सर्गो मे न विभाजित'हो खडो में विभाजित है। कवि को कथा निर्वाह में काफी सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त ऋतु वर्णन, प्रकृति चित्रण, विचारो की उदारता व उदात्तता, मर्मस्पर्शनी भाव व्यजना, वर्णन की प्रचुरता, रसपरिपाक, सफल अलकार योजना और सास्कृतिक समन्वय की भावना तथा पवित्र प्रेम की व्यापक गूढ व्यजना आदि बातो का समावेश कर कवि ने ग्रथ को महाकाव्य की गरिमा से भर दिया है। वैसे ग्रथ में कुछ दोप भी हैं जिनके लिए कवि को यद्यपि क्षमा नही किया जा सकता तथापि प्रेम की व्यापकता और अन्यान्य विशेपताओ के सम्मुख वे दोप नगण्य हो जाते हैं। भापा भाव और शैली सभी दृष्टियो से ग्रथ अनुपमेय बन पडा है। तत्कालीन परिस्थितियो और सास्कृतिक माँग के अनुसार कवि की यह देन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। कवि ने इस ग्रथ का प्रणयन करके

प्रमास्यानक हिन्दी काव्य परम्परा को अत्यन्त गौरव प्रदान किया है। इस दृष्टि से उसका स्थान अन्यतम है।

प्रश्न ५—पद्मावत का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य मे उसका स्थान बताइये।

पद्मावत का सम्यक अध्ययन तथा निरूपण कर हिन्दी साहित्य में उसका स्थान निश्चित करने के लिए हम अपनी सुविधानुसार उसे निम्नलिखित बिन्दुओ मे देखेंगे—

१—रचनाकाल

२—कथानक

३—कहानी कला (तत्वो के आधार पर)

४—काव्य-सौंदर्य (भाव पक्ष और कला पक्ष के आधार पर)

५—महाकाव्यत्व

६—दार्शनिकता

७—रहस्यवाद

८—हिन्दी साहित्य मे स्थान (विशिष्टताएँ)।

रचनाकाल—इस ग्रथ की रचना ९४७ हि० मे हुई थी। वैसे इस सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद पाया जाता है, जिसकी चर्चा विस्तार मे हम जायसी की कृतियो वाले अध्याय मे कर चुके हैं। मेरी अपनी मति में इसका रचनाकाल सन् ९४७ हिजरी ही अधिक समीचीन जान पडता है। अपने इस कथन के प्रमाण एव समर्थन मे मैं पिछले पृष्ठो में पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ। पद्मावत जायसी की प्रौढतम कृति है, इसलिए इसका निर्माण काल हम जायसी की प्रौढ आयु मे ही मानना अधिक युक्तिसगत समझते है।

कथानक—डाक्टर कमलकुल श्रेष्ठ के शोध-प्रबन्ध हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के अनुसार पद्मावत या पद्मावती की कथा निम्न प्रकार से है—

सिंहलगढ के राजा गंधर्वसेन और रानी चपावती के एक सतान हुई। इसका नाम पद्मावती रखा गया। पद्मावती अत्यन्त सुन्दर थी। पांच वर्ष की

उसे ले गई, किन्तु यह सोचकर कि यह तोता राजा का प्यारा है और जिसे स्वामी चाहता हो उसे मारना नही चाहिए उसने उसे नही मारा और छिपा लिया । जव रत्नसेन शिकार खेलकर लौटे तो उन्होने हीरामन की खोज की । नागमती ने सभी वात सच-सच वता दी । राजा को इस पर वडा क्रोध आया । नागमती धाय के पास दौडी हुई गई । धाय ने तोता दे दिया । रानी ने वह तोता राजा को लाकर दे दिया ।

राजा ने तोते से सत्य वात पूछी । तोते ने सिहल की वडी प्रशसा करते हुए गन्धर्व सेन का परिचय दिया और कहा कि उसकी कन्या पद्मावती अत्यत सुन्दर है । राजा ने ज्योही यह सुना उसके मन मे प्रेम जाग गया । उसने उसका नखशिख पूछा ।

हीरामन ने कहा, राजा, उसका शृङ्गार क्या वर्णन करूँ ? वह उसी पर शोभा देता है । उसके वाल कस्तूरी रग के घुंघराले है । मांग लाल रग की है और ललाट द्वितीया के चाँद की तरह है । इसी प्रकार हीरामन ने उसका सारा नखशिख वताया ।

राजा इस नखशिख को सुनते ही मुरझा गया । वह बेहोश हो गया । उसके मुख से वस त्राहि त्राहि का शव्द भर निकलता था । राजा के कुटुम्बी परिजन सभी आ गए । परन्तु किसी की भी समझ में कुछ नही आता था । जव राजा को होश आया तो वह रोने लगा । सवने उसे समझाया । परन्तु उसकी समझ में कुछ भी नही आया । हीरामन ने भी समझाया, 'राजा मन में धैर्य वरो और विचार करो । प्रीति करना अत्यन्त कठिन है । वह सिहल का पथ अगम है । वहाँ जाना वडा कठिन है । वहाँ योगी सन्यासी ही जा पाते है । तुम भोगी व्यक्ति हो, तुम्हारा वहाँ जाना अत्यन्त कठिन है ।' राजा ने ज्योही यह वात सुनी, वह जाग सा पडा । उसने शीघ्र ही सिहल यात्रा का निश्चय कर लिया ।

राजा ने राज्य छोड दिया और वह योगी हो गया और चल दिया । रत्न-सेन सात समुद्र पार करके सिहलद्वीप पहुँच गया । हीरामन उसे एक जगह टिकाकर पद्मावती के पास गया । पद्मावती काम से तडप रही थी।

इसी व्यथा के बीच हीरामन पहुँच गया। पद्मावती को ऐसा लगा मानो उसमें प्राण आ गए हो। रानी उसे गले लगाकर रोई और उससे कुशल पूछी। हीरामन बोला, 'रानी तुम युग युगो तक जीती रहो। मै यहाँ से वन मे उड कर गया। वहाँ पर एक व्याध ने मुझे पकड लिया और एक ब्राह्मण के हाथो वेच दिया। ब्राह्मण मुझे जम्बू द्वीप ले गया। वहाँ चित्रसेन का पुत्र रत्नसेन चित्तौड मे राज्य कर रहा था। वह देश बडा ही वैभववान एव सुन्दर है। रत्नसेन मे बत्तीसो शुभ लक्षण हैं। उसने मुझे ले लिया। उसे देखकर मेरी इच्छा हुई कि वह तुम्हारे योग्य है, इस कारण तुम्हारा वर्णन मैने उससे किया। तुम्हारा वर्णन सुनते ही उसके अन्दर प्रेम की चिनगी पड गई। वह तुम्हारे लिए राज्य छोड कर भिखारी हो गया। वह सोलह हजार चेलो के साथ योगी बनकर आया है और महादेव की मढी में है।' यह सुनकर पद्मावती के मन मे अभिमान हुआ। योगी से प्रेम करने को वह अपमान समझती थी। हीरामन फिर बोला, 'रानी, तुम्हारे विरह मे उसने अपनी कचन जैसी काया जलाकर भस्म कर दी है।' यह सुनकर रानी के मन में दया उत्पन्न हुई और काम भी जागा। वह बोली, 'यदि वह योगी अब मर जायगा तो यह हत्या अब मुझे ही लगेगी। अब मै बसन्त पूजा के बहाने वहाँ जाकर उससे मिलूंगी।' यह सुनकर हीरामन प्रसन्न वदन वहाँ से उडकर रत्नसेन के पास गया और उसका सन्देश उसने उसे सुना दिया।

वसन्त की श्री पचमी को पद्मावती महादेव की पूजा के लिए सखियो के साथ वहाँ गई। पद्मावती ने महादेव की पूजा करते हुए कहा 'देवता, मेरी सारी सखियो का विवाह हो गया है परतु अभी तक मेरे लिए वर नही मिलता। मेरी इच्छा पूरी करो और मुझे एक वर मिला दो।' इसी समय एक सखी हँस कर बोली, 'रानी, यह तमाशा तो देखो। पूर्व द्वार पर बहुत से योगी आये हुए हैं। उनमे एक गुरु कहलाता है वह बत्तीस लक्षणयुक्त राजकुमार प्रतीत होता है।' यह सुनकर पद्मावती वहाँ गई। उसको देखते ही राजा बेहोश हो गया। पद्मावती ने उसके शरीर पर चन्दन लगाया। एक क्षण के लिए तो राजा अवश्य जागा परन्तु शीघ्र ही ठडक पाकर और गहरी नीद मे सो गया।

तब रानी पद्मावती ने उसके हृदय पर चन्दन से यह लिखा कि जोगी, तू भीख लेना नही सीखा है। जब घडी आई तब तू सो गया। यह लिखकर पद्मावती लौट गई। रात में उसने स्वप्न में देखा कि चन्द्रमा का उदय पूर्व से हुआ और सूर्य का पश्चिम से। फिर सूर्य चाँद के पास चला आया और चाँद और सूर्य दोनो का मिलन हो गया है और हनुमान ने लका लूट ली। सखियो से जागने पर उसने सपने का अर्थ पूछा। सखियो ने कहा तुम्हे वर प्राप्त होने वाला है।

पद्मावती के चले जाने पर रत्नसेन जागा। वह पद्मावती को गया हुआ देखकर रोने लगा और जल मरने का निश्चय करने लगा।

उसी समय वहाँ पर महादेव एव पार्वती पहुँच गए। उन्होने चिता देखकर रत्नसेन से आत्म-हत्या और योग नष्ट करने का कारण पूछा। राजा ने सक्षेप में अपनी व्यथा वतलायी। पार्वती के हृदय में उसे सुन कर दया आ गई। वह अप्सरा के समान सुन्दर रूप धारण कर बोली, 'राजकुमार मेरी वात सुनो। मुझ जैसी सुन्दर और कोई स्त्री नही है। इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेज दिया है। यदि पद्मावती गई तो जाने दो। तुम्हे अप्सरा मिल गई।' रत्नसेन ने कहा, 'मेरा प्रेम तो एक से है, दूसरी से मुझे कुछ भी मतलव नही है।' तव गौरी ने महेश से कहा, 'इसका प्रेम सचमुच वडा गहरा है। तुम इसकी रक्षा करो।' इतने में रत्नसेन को महादेव का वास्तविक रूप ज्ञात हो गया। वह रोने लगा। उसको ढाढस वँधाते हुए महादेव ने कहा, 'रोओ मत। जैसा तुम्हारा शरीर नौ पौरी का है उसी प्रकार यह गढ भी है। दसवें द्वार तक इसमें भी चढना पडेगा। जो दृष्टि को उलट कर लगाता है, वही उसे देख पाता है। वहाँ वही जा सकता है।'

इस सिद्धि गुटका को पाकर राजा एकाएक महल में घुस पडा। गन्धर्वसेन को खवर मिली। उसने अपने नौकर भेजे। नौकर से रत्नसेन ने कहा कि मैं राजा की कन्या पदमावती का भिखारी हूँ। यदि वह मुझे दे दी जाय तो मैं लौट जाऊँगा। नौकरो ने यह वात राजा गन्धर्वसेन से कही। गन्धर्वसेन को यह सुनकर वडा क्रोध हुआ।

रत्नसेन उत्तर की प्रतीक्षा मे दिन विताने लगा। उसने एक पत्र हीरामन के हाथ पद्मावती के पास भेजा। पद्मावती ने उत्तर के रूप मे अपने प्रेम की दृढता का सन्देश भेजा। पद्मावती का सन्देश सुनकर रत्नसेन प्रसन्न-सा हो उठा।

गन्धर्वसेन ने अपने मन्त्रियो की सलाह ली। सव ने रत्नसेन को वन्दी वनाने की सलाह दी। वह वन्दी वना लिया गया। इधर पद्मावती वडी दुखी थी। वह एक वार वेहोश हो गई। हीरामन सुआ वहाँ पर लाया गया। उसकी आवाज सुनकर उसे होश आया और पद्मावती ने एक सन्देश रत्नसेन के लिए भेजा।

रत्नसेन वन्दी वना कर गन्धर्वसेन के पास लाया गया। वहाँ पर गन्धर्व-सेन के पूछने पर उसने अपनी व्यथा सच-सच वतला दी। इसे सुनकर महादेव का आसन भी डोल उठा। महादेव और पार्वती भाट-भाटिन का रूप धर कर वहाँ आए। रत्नसेन आसन जमाए 'पद्मावती-पद्मावती' जप रहा था। इतने मे सुए ने आकर पद्मावती का सन्देश सुनाया। महादेव भी आगे वढे। उन्होंने राजा को समझाया और रत्नसेन का सच्चा परिचय दिया। हीरामन ने भी साक्षी दी। तव विवाह का निश्चय कर रत्नसेन का तिलक किया गया और विवाह हो गया।

उधर नागमती के दिन रत्नसेन के विरह मे वडे दुख मे वीत रहे थे। नाग-मती रोती फिर रही थी। एक दिन आधी रात के समय एक पक्षी को उस पर दया आ गई; उसने उसकी कथा सुनी। नागमती ने अपने विरह की कहानी उसे सुनाते हुए उससे रत्नसेन के पास तक उसका सन्देश ले जाने की प्रार्थना की। पक्षी ने उसे स्वीकार कर लिया।

पक्षी सन्देश को लेकर चला। सिंहल मे वडी आग उठी। सव जगह आग लगी हुई देखकर सारे पक्षी तीर के एक वृक्ष पर आकर वैठ गए। उसी पेड के नीचे रत्नसेन जो कि वहाँ शिकार खेलने आए थे वैठ गए। यह पक्षी भी उसी पेड पर जाकर वैठा। उन पक्षियो में आपस मे वातें होने लगी। इस पक्षी ने

अपना परिचय दिया और नागमती की कथा पक्षियो को सुनाई। राजा नीचे बैठा सब कुछ सुन रहा था। उसने पक्षी से फिर सारी बात पूछी और कहा, 'पक्षी, मेरी आँख सदा नागमती की राह पर ही लगी रहती है परन्तु कोई भी आकर उसका सन्देश नही सुनाता।' पक्षी ने नागमती की विरह कथा फिर कह सुनाई और वह उडकर चला गया। रत्नसेन उसे पुकारता रह गया परन्तु वह न लौटा। रत्नसेन को अब चित्तौड की याद आ गई। वह एक बरस तक चित्तौड को भूला हुआ था। वह उदास रहने लगा। गधर्वसेन उसे उदास देखकर उसके पास आया और बोला, "तुम मेरे प्राणो के समान हो, तुम्हे मैंने अपनी आँखो मे रहने को जगह दी है। यदि तुम उदास हो जाओगे तो यह महल किसका होकर रहेगा ?"

रत्नसेन ने हाथ जोडकर स्तुति करते हुए कहा, "मै काँच था, आप ही ने मुझे कचन बना दिया है परन्तु आज मेरा परेवा पत्र लेकर आया है। मेरा राज्य मेरा भाई ले रहा है। उधर दिल्ली सुल्तान भी हमला करने वाला हे। इस कारण मुझे विदा दी जाय।" गधर्वसेन ने रत्नसेन की बात मानली। सुमुहूर्त मे वहाँ से अगणित द्रव्य लेकर रत्नसेन पद्मावती के साथ चला।

समुद्र मे जबकि आधा रास्ता भी तय नही हो पाया था, एक बडी जोर की आँधी उठी। इसमे राजा के जहाज अपना रास्ता भूल गए। विभीषण का एक केवट राक्षस मछलियो का शिकार करते-करते वहाँ आ गया था। राजा ने आफत मे पडकर उससे अपना जहाज ठीक रास्ते पर लगा देने की प्रार्थना की। राक्षस ने कपट रूप से उसकी विनय स्वीकार की और उसे एक अत्यन्त गहरे और भवरो से भरे सागर मे ले गया। वहाँ राजा का जहाज डूब गया।

बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी वहाँ पर समुद्र की बेटी जिसका नाम लक्ष्मी था खेल रही थी। उसने पद्मावती को देखा और वह उसे होश मे लाई। होश मे आने पर पद्मावती ने पूछा कि वह कहाँ हे और रत्नसेन कहाँ है ? लक्ष्मी ने कहा, मै तुम्हारे प्रिय को नही जानती। मैंने तुम्हे तो किनारे पर ही पाया है।' पद्मावती यह सुनकर सती होने का यत्न करने लगी।

लक्ष्मी ने उसे समझाया और रत्नसेन को ढूंढने का आश्वासन दिया। उसने अपने पिता से यह सब बात कही। पिता ने पुत्री को आश्वासन दिया। आश्वासन पाकर लक्ष्मी समुद्र तट पर जाकर बैठ गई। वहाँ पर रत्नसेन आया। उसने अपने को पद्मावती बतलाया परन्तु रत्नसेन ने उसे पहचान लिया, वह पद्मावती न थी। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती के पास ले गई, बिछुड़े हुए प्रेमी मिल गए। वहाँ से वे जगन्नाथपुरी होते हुए अपने देश की ओर बढ़े।

जब राजा चित्तौड के निकट पहुँच गया तो नागमती को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु पद्मावती को देखकर उसमे सपत्नी की ईर्ष्या जाग उठी। उसने उसे दूसरे महल में उतारा। दिन भर राजा दान-पुण्य करता रहा। रात में वह नागमती से मिला नागमती का जीवन फिर हरा-भरा हो उठा।

नागमती को प्रसन्न देखकर पद्मावती के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह एक दिन नागमती से लड गई। दोनो मे हाथापाई होने लगी, जब रत्नसेन ने यह सुना तो वह वहा पहुँचा। उसने समझाया—तुम दोनो का प्रिय मैं हूँ। जिस प्रकार रात दिन दोनो बराबर होते हैं उसी प्रकार तुम मेरे लिए हो।' दोनो रानियाँ यह सुनकर सन्तुष्ट हो गई।

नागमती के नागसेन और पद्मावती के पद्मसेन नाम के पुत्र हुए। ज्योतिपियो ने बतलाया कि दोनों बडे भाग्यवान हैं।

रत्नसेन के दरबार में राघव चेतन नामक एक बडा पडित था। उसे यक्षिणी इप्ट थी। एक दिन अमावश थी। राजा ने पूछा, 'दूज कब है ?' राघव के मुंह से निकला—'आज'। पडितो ने कहा—'महाराज कल है।' इस पर विवाद उठ खडा हुआ। शाम को राघव ने यक्षिणी के बल से चाँद दिखला दिया। उस समय तो राजा ने बात मान ली। दूसरे दिन फिर द्वितीया का चांद दिखलाई पडा। राजा को राघवचेतन पर बड़ा क्रोध आया। उसने राघवचेतन को अपने राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी।

जब पद्मावती ने यह सुना तो उसे बडी चिन्ता हुई। ऐसा गुनी आदमी निकाला जा रहा था, यह उसे अच्छा नहीं लग रहा था। वह झरोखे पर आई।

उसी के नीचे से राघवचेतन जा रहा था। उसने पद्मावती की ओर देखा। पद्मावती ने अपना एक कगन उतार कर उसकी ओर फेंका और मुस्करा दिया। राघवचेतन इसे देखकर वेहोश हो गया। सखियाँ उसे होश मे लाई। वह उस कगन को लेकर चला गया।

वह दिल्ली गया। दुनिया रूपी दूध में दिल्ली मलाई की तरह थी। वहाँ वह अलाउद्दीन से मिला और उसने पद्मिनी के सौन्दर्य की चर्चा की। अलाउद्दीन ने कहा, 'ऐसी पद्मिनी स्त्रियाँ कहाँ मिलती हैं ?' उसने कहा, 'ये जम्बू द्वीप में नही मिलती। ये सिंहलद्वीप मे मिलती हैं।'

फिर उसने रत्नसेन की पद्मावती का नखशिख वर्णन किया। उसे सुनकर शाह चेतना खो वैठा। जब उसे होश हुआ तो उसने पद्मावती को शीघ्र भेज देने के लिए रत्नसेन के पास एक पत्र अपने दूत द्वारा भेजा और राघवचेतन को धन एव सम्मान दिया।

जब रत्नसेन ने वह पत्र पढा तो अतिक्रोधित हुआ। उसने दूत को यो ही लौटा दिया। दूत लौटकर अलाउद्दीन के पास गया। दोनो ओर युद्ध की तैयारियाँ पूरी तरह से होने लगी। अलाउद्दीन चित्तौड की ओर बढा।

अलाउद्दीन चित्तौड पहुँचा। बडा घमासान युद्ध हुआ। सौ-सौ मन के गोले रत्नसेन के गढ पर गिरते थे परन्तु वह डटा हुआ था। उसने अपने भोगविलास को भी नही छोडा ? एक दिन एक वैश्या को अलाउद्दीन के पक्ष के एक व्यक्ति ने तीर मार दिया। वह मर गई। इससे राजपूतो को बडा क्रोध आया। वे जी जान से लडने लगे। कई वर्षो तक यह युद्ध चलता रहा। अलाउद्दीन को खबर मिली कि दिल्ली पर लोग हमला करने वाले हैं। उसने यह भी सोचा कि अगर वह इस समय चित्तौड जीतेगा तो पद्मावती जलकर सती हो जायेगी। इस वार सधि करना उसे उचित दिखाई पडा। अलाउद्दीन ने अपना दूत रत्नसेन के पास भेजा। शर्त यह रखी कि रत्नसेन पद्मावती न दे और साथ ही साथ चन्देरी भी ले ले परन्तु समुद्र ने उसे जो पांच रत्न दिये थे, उन्हें दे दे। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन रत्नसेन के यहाँ अलाउद्दीन प्रीति भोज के लिए गया।

राजा ने वडे अच्छे व्यजन वनवाये थे। वादशाह ने भोजन किया और वह चित्तौड गढ देखने लगा। देखते-देखते वह रनिवास पहुँचा, वहाँ पर रत्नसेन की दासियाँ थी। अलाउद्दीन ने उनको स्वरूपवान देखकर समझा कि इन्ही मे कोई पद्मावती है। उसने राघवचेतन से पूछा। राघव ने उसे वताया कि वे तो दासियाँ है, पद्मावती नही।

भोज के पश्चात् गोरा वादल ने रत्नसेन को समझाया कि अलाउद्दीन का विश्वास करना उचित नही। परन्तु रत्नसेन ने वात न मानी। एक जगह बैठकर वह अलाउद्दीन के साथ शतरज खेलने लगा। वहाँ पर एक वडा दर्पण रखा था। दर्पण में एकाएक पद्मावती का प्रतिविंव दिखाई पडा। अलाउद्दीन उसे देखते ही वेहोश हो गया।

जव अलाउद्दीन होश में आया तो राजा उसे अपने गढ के दरवाजे तक पहुँचाने आया। दरवाजे पर आते ही अलाउद्दीन ने उसे वाँध लिया और दिल्ली ले गया।

कुम्भलनेर का राजा देवपाल रत्नसेन का शत्रु था। जव उसने यह सुना, तो पद्मावती को फुसलाने के लिये अपनी एक दूती भेजी। परन्तु पद्मावती का रत्नसेन से इतना दृढ प्रेम था कि उसने दूती को अपमानित कर निकाल दिया।

वादशाह अलाउद्दीन ने भी एक वेश्या को दूती वनाकर भेजा परन्तु वह भी पद्मावती को फुसलाने में असफल रही।

पद्मावती अपने चारो ओर यह जाल विछा हुआ देखकर गोरा वादल के पास गई और उनसे अपनी कथा सुनायी। गोरा और वादल दोनो को दया आ गई। उन्होने रत्नसेन को छुडा लाने का वचन दिया।

वादल का उसी दिन गौना आया था। माँ ने उसे जाने से रोका। परन्तु वह न माना। पत्नी ने भी रोका परन्तु उसने अनसुनी कर दी और चला गया।

सोलह सौ पालकियाँ सँवारी गई। उनमे हथियारो से लैस राजपूत सरदार वैठाये गये। उनमें एक पालकी पद्मावती की भी वनी। उसमें एक लोहार वैठाया गया। इन पालकियों के साथ गोरा वादल यह कहते हुए चले कि पद्मावती अलाउद्दीन के पास जा रही है।

वे दिल्ली पहुँचे और अलाउद्दीन से प्रार्थना के स्वर मे बोले कि पद्मावती कह रही है कि "मैं तो दिल्ली आ गई हूँ, परन्तु मेरे पास चित्तौड की कुन्जियाँ हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो उसे रत्नसेन को सौंप दूं।" अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार कर लिया। वह लोहार वाला विमान रत्नसेन के पास गया। उस लोहार ने रत्नसेन के बधन काट दिये और बादल उसे लेकर चित्तौड की ओर भागा। गोरा और अलाउद्दीन की सेना में वही पर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में गोरा की मृत्यु हो गई।

रत्नसेन चित्तौड आकर पद्मावती से मिला। पद्मावती ने बादल की भुजाओ की पूजा की। रात में पद्मावती ने देवपाल की बात रत्नसेन से कही।

देवपाल की चाल सुनकर रत्नसेन को बडा क्रोध आया। वह उससे लडने चल पडा। युद्ध में रत्नसेन को देवपाल ने मार डाला।

रत्नसेन की मृत्यु पर गढ बादल को सौंप दिया गया।

पद्मावती एव नागमती भी राजा के साथ सती हो गई। उनके सती होने के बाद अलाउद्दीन ने चित्तौड पर हमला किया। बादल लडा परन्तु हार गया। सारी स्त्रियाँ जौहर में जल गई और पुरुष सग्राम में खेत रहे। चित्तौड पर मुसलमानो का अधिकार हो गया। अलाउद्दीन पद्मावती को न पा सका।

कहानी-कला—कहानी-कला के विकास में निम्न बातो का अध्ययन आवश्यक होता है—

१ कथावस्तु
२ पात्र
३ चरित्र चित्रण
४ कथोपकथन
५ शैली
६ उद्देश्य

इस कसौटी पर पद्मावत की कहानी कला को कसने के पूर्व हमें यह जानना चाहिए कि मध्ययुग में, आधुनिक काल की भाँति, कहानी कला का

विकास इस उच्च स्तर पर नही हुआ था। इस युग मे पाई जाने वाली प्रेमाख्यानक कहानियो का प्रमुख उद्देश्य उपदेश देना ही होता था। ये उपदेश भी साधारणतया तीन प्रकार के होते थे।

१ प्रेम विषयक

२ सामान्य

३ इस्नाम अथवा यो कहिये—धर्म सम्बन्धी।

इन बातो को ध्यान मे रखते हुए अब हम पद्मावत की कहानी कला को उक्त कसौटी पर कसते हैं। कथा वस्तु—पद्मावत की कथावस्तु प्रमुख रूप से प्रेमविषयक ही है। धर्मगत बातें गौण होकर आई हैं। इसे हम यो भी कहेगे कि पद्मावत की कथा वसुन्धरा प्रेम की धुरी पर घूमती है। इस ग्रथ मे रत्नसेन और पद्मावती की कथा है। वस्तुत. इसमे प्रेम ही सारी कथा का मूल है। प्रेम के उदात्त और अखिल सृष्टि व्यापी एव लोकोत्तर स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये इसकी कथा वस्तु का निर्माण किया गया है। कथा के पूर्वार्द्ध में रत्नसेन पद्मावती, नागमती और सुआ—नायक नायिका, प्रति-नायिका और दूत के अतिरिक्त अन्य कोई नही है। उत्तरार्द्ध की सारी कथा प्रेम-परीक्षा के उपकरण के रूप में आती है। लक्ष्मी परीक्षा लेती है रत्नसेन सफल होता है, अलाउद्दीन परीक्षा लेता है पद्मावती को विजय मिलती है। आदि से अत तक कथानक प्रेम रग मे सराबोर है। प्रेम का स्वरूप लौकिक होते हुए भी पारलौकिक मे गति पाता है। देखिये ! अत में पद्मावती द्वारा कहे गए इन शब्दो से क्या ध्वनित होता है—

औ जो गाठ कत तुम जोरी।
आदि अन्त लहि जाय न छोरी॥
यह जग काहि जो अछहिन आथी।
हम तुम नाय दुहूँ जग साथी॥

'पद्मावत' की सवेदना ही यह है कि प्रेम जीवन का सार है। उसके सम्मुख स्वर्ग भी झूठा है। प्रेम सर्वोपरि है।

पद्मावत की कथावस्तु घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान ही कही जायगी। रत्नसेन और पद्मावती का चरित्र ही कथावस्तु का मेरुदण्ड है। इन दोनो के चरित्र के विकास के निमित्त ही घटनायें सहायक रूप मे उपस्थित होती हैं। उनका अस्तित्व स्वतंत्र नही कहा जा सकता। कथानक के घटना-प्रधान न होकर चरित्र प्रधान होने का एक प्रमाण और यह है कि यदि लेखक का ध्यान कथानक को घटना प्रधान करने पर रहा होता तो वह इतने खडो का निर्माण कर कथा को अनावश्यक विस्तार न देता, अपितु थोडे में ही इति पर पहुँच जाता। परन्तु उसके विस्तार को देखते हुए हमें ऐसा ही प्रतीत होता है कि लेखक का ध्यान घटनाओ पर केन्द्रित न रह पात्रो के चरित्रो पर केन्द्रित रहा है।

पद्मावत की कथावस्तु का पर्यवसान दु:ख में होता है इस नाते हम उसे सुखान्त न कह दुखान्त ही कहेगे। अलाउद्दीन तथा देवपाल के साथ पाठको को कोई सहानुभूति नही होती। मध्य युग के अन्य प्रेमाख्यानक काव्य-ग्रन्थो की भाँति इस ग्रन्थ की कथावस्तु में भी लेखक का ध्यान इस बात की ओर नही जाता कि कौनसी घटना को किस प्रकार प्रस्तुत करने से उसका कैसा प्रभाव होगा। वह अपनी बात कहने में घटनाओ को अपनी रुचि के अनुसार मोडता रहता है पाठको को चाहे वे स्वाभाविक जान पडें, चाहे अस्वाभाविक। उसे अपनी बात कहनी है और वह कहेगा। जायसी को पद्मावती और रत्नसेन के माध्यम से प्रेम का उज्ज्वलतम स्वरूप प्रस्तुत करना था। वे उसमें भूले हुए थे। इसलिए घटनाओ की ओर स्वतन्त्र दृष्टि डालने का उन्हे अवकाश न मिल सका, अथवा यो कहिये कि उन्होने इसकी कोई आवश्यकता नही समझी।

सम्पूर्ण कथावस्तु प्रेम से आरम्भ होती है, प्रेम-चर्चा मे उसका विकास होता है और प्रेम का प्रौढतर रूप प्रस्तुत करने में उसका पर्यवसान।

अपने युग के अन्य प्रेमाख्यानक काव्यो की भाँति जायसी ने भी अपनी कथावस्तु का निर्माण राज दरबारो से किया है। नायक रत्नसेन चित्तौड का राजा है और नायिका पद्मावती सिंहल की राजकुमारी।

उम युग की परम्परानुसार पद्मावत की कथावस्तु का भी प्रारम्भ और अन्त कथा में नही हुआ है। आरम्भ में एक स्तुति खण्ड है और अन्त में कवि अपनी वात कहने लगा है, जिसके लिये उसने इस ग्रन्थ का निर्माण किया है।

पद्मावत में भी पशु-पक्षी एव अमानुषिक शक्तियाँ यत्रतत्र भाग लेती हुई दिखाई पडती हैं। पद्मावती का हीरामन, नागमती का पक्षी, राक्षस, शिव-पार्वती और लक्ष्मी इसी रूप में वर्णित हैं। वस्तुत इस ग्रथ में सुआ ही सारे प्रेम-व्यापार के मूल में है। यदि सुआ न होता तो रत्नसेन के हृदय में प्रेम का प्रारम्भ ही न होता। इमी कारण जायसी ने अन्त में हीरामन के महत्व को घोपित किया है—

गुरु सुआ जेइ पथ दिखावा।
विना गुरु को निरगुन पावा ॥

सम्पूर्ण कथावस्तु प्रेम के ही इर्द-गिर्द घूमती है। जीवन की प्रमुख समस्या 'रोटी' को इसमें कही स्थान नही दिया। कवि की यह उपेक्षा उसके कथानक को निर्वल वनाती है। कथन मे व्यापकता नही आ पाती। ऐसा कवि ने क्यो किया कुछ समझ मे वात नही आती। सम्भव है यह उस युग में कोई वडी समस्या न रही हो।

'पद्मावत' की कथावस्तु को हम प्रमुख रूप से दो भागो में बाँट सकते हैं—१ पूर्वार्द्ध षट्ऋतु वर्णन खड तक और २. उत्तरार्द्ध नागमती वियोग खड से आगे तक। पूर्वार्द्ध में प्रेम की पीर एवं प्रेम-पथ की यात्रा का वर्णन है और उत्तरार्द्ध मे प्रेम-परीक्षा की जाती है। उत्तरार्द्ध में घटनाएँ अधिक हो गई है। इस नाते वह भागो-उपभागो मे बँट जाता है। चरित्रो के विकास में कथानक कही-कही डगमगाता-सा नजर आता है और कहीं-कहीं अत्यन्त दृट रूप मे भी। पद्मावती के विवाहोपरात रत्नसेन का चरित्र हल्का दिखाया गया है। पद्मावती का चरित्र वहाँ दृढतर है। कवि ने जौहर खड का निर्माण कर अपने काव्य को अमर वना दिया है। प्रेम का जो उदात्त स्वरूप हमे वहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस दृष्टिकोण से पद्मावती का कथानक अत्यन्त सफल

है। वैसे सम्पूर्ण कथावस्तु को हम गठी हुई और सर्वथा सशक्त नही मान सकते। उसमें अनेक कमजोरियाँ भी हैं। कवि का सन्तुलन सर्वत्र ठीक नही रह सका है। चरित्रो का विकास स्वाभाविक ढग से नही हुआ है। मानवीय शक्तियाँ अपने प्राकृतिक रूप में सर्वत्र नही आई हैं। एक वाक्य मे हम यह कहेंगे कि सारी कथावस्तु प्रेमरस से सरावोर है और कवि को अपनी वात कहने में पर्याप्त सफलता मिली है।

पात्र और चरित्र-चित्रण—पद्मावत के पात्रो को हम दो वर्गो में वाँट सकते हैं—१ अलौकिक और २ लौकिक।

अलौकिक पात्रो में शिव, पार्वती तथा लक्ष्मी आती हैं। शिव और पार्वती को कवि ने अलौकिकतामय दिखाया है तथा लक्ष्मी को अलौकिक चरित्र स्वीकार करते हुए भी लौकिक रूप मे चित्रित किया है। कवि के शव्दो में ही लक्ष्मी का लौकिक रूप देखिये—

लछमी चचल नारि परेवा।
जेहि सत होइ छरै कै सेवा॥
रतनसेन आवै जेहि घाटा।
अगमन होइ वैठी तेहि वाटा॥
औ पदमावति कै रूपा।
कीन्हेसि छाँह जरै जहँ धूपा॥
देखि सो कँवल भँवर होइ धावा।
साँस लीन्ह वह वास न पावा॥
निरखत आय लक्ष्मी दीठी।
रतनसेन तव दीन्हीं पीठी॥

तिस पर भी—

पुनि धनि फिर आगे होइ रोई।
पुरुष पीठि कस दीन्ह निछोई॥

रत्नसेन को विश्वास दिलाती है—

हौं रानी पदमावति रतनसेन तू पीउ।
आनि समुद महँ छाडेउ अब रोवौं देइ जीउ॥

इस प्रकार लक्ष्मी एक लौकिक स्त्री की भाँति हमारे सामने आती है।

पार्वती और शिव क्रमश रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेकर उसके सहायक के रूप मे चित्रित हैं। देखिये रतनसेन के सिंहल पहुँचने पर भवानी एक सुदर अप्सरा का रूप धारण कर कितनी चतुराई से उसके प्रेम की परीक्षा ले रही है—

सुनहु कुँवर मोसो यह बाता।
जस मोहि रंग न औरहि राता॥
औ विधि रूप दीन्ह है तोका।
उठा सो सबद जाइ सिव लोका॥
तब हौं तोपहँ इन्द्र पठाई।
गइ पदमिनि तैं अपछरि पाई॥

परन्तु रत्नसेन अपूर्व दृढता के साथ कहता है—

भलेहि रंग अछरी तोर राता।
मोहिं दूसर सो भाव न भाता॥

इस प्रकार रत्नसेन अपनी परीक्षा में सफल होता है।

यही रत्नसेन विपम परिस्थितियो के चक्र मे फँसकर जब किंकर्तव्यविमूढ हो जल मरने को तैयार होता है, उस समय शिव ने आकर सिद्धि गुटका दिया और सिंहलगढ मे घुमने का मार्ग बताया। गन्धर्वसेन जब उसे शूली देने को तैयार था उस समय भी शिव ने ही उसकी रक्षा की।

अलौकिक पात्रो के रूप में ही जायसी ने राम और कृष्ण के व्यक्तित्वो को भी अन्त कथाओ के माध्यम से स्वीकार किया है।

पद्मावत में आये लौकिक पात्रो के रूप मे चित्रित चरित्रो को भी हम दो वर्गो में बाँटेंगे—

१ काल्पनिक और २ प्राकृतिक।

काल्पनिक पात्रो में राक्षस आता है जिसने सिंहल से लौटते समय समुद्र में रत्नसेन को बडा कष्ट प्रदान किया था।

प्राकृतिक चरित्र भी दो कक्षाओ मे आते है—

१ पशु-पक्षी।

२ मानव।

पद्मावती का हीरामन तथा नागमती का पक्षी प्रथम श्रेणी में आते हैं। इनका प्रयोग दूत रूप में हुआ। ये दोनो मानव की भाँति ही कार्य करते हैं। हीरामन पद्मावती के पथ का सहायक है और पक्षी नागमती के पथ का। पक्षी होने के नाते इनका सभी विश्वास करते हैं। अपने कार्य मे दोनो पूर्ण सफल हुए हैं। इसके अतिरिक्त ग्रथ में इनका और कोई महत्व नही। इसी कारण पद्मावती-रत्नसेन के मिलन के पश्चात् हीरामन का क्या हुआ, हमें कुछ पता नही चलता।

मानव पात्रो में स्त्री और पुरुप दोनो आते हैं। पुरुषो में नायक प्रतिनायक तथा अन्य पात्र हैं और इसी भाँति स्त्री पात्रो मे भी नायिका प्रतिनायिका तथा अन्य पात्र हैं। रत्नसेन नायक तथा राजकुमारी पद्मावती नायिका है। अलाउद्दीन प्रतिनायक तथा नागमती प्रतिनायिका है। शेष स्त्री पुरुप अन्य पात्रो की श्रेणी मे चित्रित हैं।

नायक रत्नसेन के चरित्र में पर्याप्त दृढता है। गुणो के समक्ष उसकी कमजोरियाँ वहुत थोडी हैं। तथा रत्नसेन सव पर विश्वास नही करता अपने को आधिकाधिक वुद्धि वाला समझता है। झूठ वोलता है, राजनीतिक दाँव-पेंच में कच्चा है। इसके विपरीत उसमें वीरोचित उत्साह पाया जाता है वह अपने वाहु-वल पर भरोसा रखता है। प्रेम-पथ की कठिनाइयो से विचलित नही होता। प्रेम सम्वन्धी समस्त सकल्पो मे अत्यत ही दृढ है। उसमें धीरोदात्त नायक की समस्त विशेपतायें विद्यमान है।

प्रतिनायक के चरित्र चित्रण मे भी जायसी को काफी सफलता मिली है। अलाउद्दीन के प्रति पाठको के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न कर देने मे जायसी पूर्ण समर्थ हैं।

नायिका पद्मावती राजा गन्धर्वसेन की अविवाहिता कन्या है। उसके चरित्र में भी पर्याप्त दृढता और उज्ज्वलता है। देखिये रत्नसेन की सूली की आज्ञा सुनकर वह कितना दृढ सदेश उसके पास भेजती है।

काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा,
मरै तो मरौं, जिऔं एक साथा।

इसी प्रकार देवपाल की दूती से वह कहती है—

रंग ताकर हौं जारौं काचा,
आपन तज जो पराएहि रांचा।

× × ×

जोवन मोर रतन जहँ पीऊ,
वलि तेहि पिउ पर जोवन जीऊ।

पद्मावती के सौंदर्य की चर्चा करना तो व्यर्थ ही है। विश्व की, वह, सर्व श्रेष्ट अनिंद्य सुन्दरी है।

प्रतिनायिका नागमती के चरित्र को भी जायसी ने खूब निखारा है। वह भी पर्याप्त सौंदर्य तथा रत्नसेन के प्रति एकनिष्ठ पवित्र प्रेम रखती है। उसके प्रेम की ऊँचाई पद्मावती भी नही छू पाती। कितना आदर्श और कितना निर्मल प्रेम है।—देखिए पक्षी से कैसा सदेश भेजती है—

पदमावति सौं कहेउ विहंगम,
कंत लोभाय रही करि संगम।

× × ×

अबहु मया करु करु जिउ फेरा।
मोहि जियाउ कंत देइ मोरा॥
मोहि भोग सौं काज न वारी।
सौंह दीठि कै चाहन हारी॥

सवति न होसि तू वैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर तोर पाँय मोर माथ॥

परन्तु स्त्री होने के नाते नागमती और पद्मावती दोनो मे पर्याप्त दुर्बलतायें भी हैं। सफलता इसी मे है कि एक ही पति से दोनो प्रेम करती हैं, इस नाते उसकी मृत्यु के उपरान्त दोनो एक साथ सती हो जाती हैं।

पद्मावत के पात्रो को कवि ने साकेतिक माध्यम या प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है परन्तु उमे इस दिशा मे पर्याप्त सफलता नही मिल सकी है। सभी पात्रो के चरित्र की दुर्बलताएँ उसे प्रतीको के आसन से गिरा देती हैं। पद्मावती का नागमती से वादविवाद एव रत्नसेन के प्रति एकाधिपत्य की भावना का अनुभव आदि उसकी कमजोरियाँ हैं। वह सुन्दरी है, दृढ प्रेमिका है, प्रथम अविवाहित तथा राजकुमारी है—यह उसके चरित्र का सवल पक्ष है। इसी प्रकार नायक राजा रत्नसेन अनेक गुणो को धारण करता हुआ भी बहुपत्नीत्व स्वीकार करने के नाते अपने प्रतीकत्व की रक्षा नही कर पाता। अभिप्राय यह है कि रत्नसेन जीवात्मा तथा पद्मावती परमात्मा का प्रतिनिधित्व करने में पूर्ण सफल नही हैं।

सुआ को गुरू का प्रतीक जायसी ने माना है, पर उसके चरित्र मे गुरु के अनुकूल गम्भीरता तथा ज्ञान गरिमा का अभाव है। इस कारण यह प्रतीक भी अपने स्थान पर ठीक नही कहा जा सकता। नागमती दुनियाँ धन्धा होकर पद्मावती के बरावर हो जाता है। यहाँ भी कवि प्रतीकत्व की रक्षा करने में असफल है। इसी प्रकार अन्य पात्रो की भी स्थिति है।

कथोपकथन—इसमें सदेह नही कि 'पद्मावत' के कथोपकथन सवल-सरस तथा स्वाभाविक हैं। इस दिशा में जायसी को पर्याप्त सफलता मिली है। सबसे वडी विशेषता जायसी के कथोपकथन की यह है कि उनके माध्यम से ही चरित्रो का विकास हुआ है। नीचे हम कुछ ऐसे स्थलो का सकेत कर रहें हैं जो जायसी की कथोपकथन कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं और इनके द्वारा क्रमश नागमती, रत्नसेन और पद्मावती के चरित्रो का विकाश हुआ है।

१. नागमती-सुआ संवाद
२ नागमती-धाय संवाद
३. रत्नसेन प्रस्थान के समय नागमती-रत्नसेन संवाद
४. नागमती और उसकी सखी संवाद (नागमती के चरित्र का भव्य स्वरूप)
५. नागमती-पक्षी संवाद (जायसी के काव्य की काव्यात्मकता का चरमबिन्दु)
६. चित्तौड लौटने पर नागमती-रत्नसेन संवाद।
७. पद्मावती-नागमती संवाद (कथोपकथन का सर्वोत्कृष्ट रूप)
८. सती होने के समय नागमती के वचन।
९. रत्नसेन-सुआ संवाद
१०. रत्नसेन-पार्वती संवाद
११. रत्नसेन-नागमती संवाद
१२. रत्नसेन-अलाउद्दीन दूत संवाद
१३ पद्मावती-सुआ संवाद
१४ पद्मावती-राजा संवाद
१५ पद्मावती-लक्ष्मी संवाद
१६. पद्मावती-गोरा बादल संवाद
१७ पद्मावती-देवपाल दूती संवाद

इसी प्रकार अन्य अनेक ऐसे स्थल प्रस्तुत किये जा सकते है जिनसे कवि की कथोपकथन कला का सुन्दर प्रमाण मिलेगा। कथोपकथन का सौंदर्य ही जायसी की कहानी में जान डाल देता है अन्यथा पूरे काव्य में एक विचित्र सी नीरसता छाई होती। अस्तु जायसी का कथोपकथन उनकी कहानी कला के विकास में अपूर्व योग देने वाला कहा जायगा।

शैली—पद्मावत मसनवी शैली का एक अप्रतिम ग्रंथ है, इसमे दो मत नहीं। जायसी को अपनी बात कहने के लिए इससे सुन्दर ढग उस समय कोई प्राप्य भी नही था। वैसे यदि हम उनकी शैली का विवेचनात्मक अध्ययन करें तो प्रमुख रूप से उनके काव्य में हमें उनकी शैली के निम्न तीन रूप प्राप्त होते हैं—

१ कथोपकथन की शैली

२ वर्णनात्मक शैली

३ उपदेशात्मक शैली

अपनी शैली के इन विविध रूपो मे जायसी को अपनी वात कहने में काफी सहायता मिली है। शैली की दृष्टि से काव्य में उनका विशिष्ट महत्व है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास के लिए भी शैली का पथ जायसी द्वारा तैयार किया गया था। दोहे चौपाइयो में कहे उनके वाक्य बडे ही सरस और प्रभावोत्पादक वन पडे हैं। चदवरदाई का साहित्य अभी विद्वानो के वादविवाद में उलझा हुआ है। इस प्रकार उसे छोड देने पर जायसी ही हिन्दी के प्रथम महाकाव्यकार ठहरते हैं और उनकी शैली आदर्श शैली कही जाती है। रामचरितमानस ऐसा महाग्रथ भी पद्मावत की शैली पर ही लिखा गया। अस्तु हमें यह कहने में कोई सकोच नही कि शैली के क्षेत्र में जायसी का स्थान वडे गौरव का है

उद्देश्य—कहानी कला के विकास का अन्तिम-विन्दु उद्देश्य होता है। पद्मावत की कहानी कला का उद्देश्य उस युग के अन्य प्रेमाख्यानक काव्यो की भांति प्रेम का उपदेश उपस्थित करना है। लौकिक प्रेम के माध्यम से पारलौकिक प्रेम की ओर पाठको को उन्मुख करना यही जायसी की कहानी का प्रमुख ध्येय कहा जायगा। साथ ही कहानी के सरस और मनोरम आवरण मे सूफी सिद्धान्तो को कुशलता के साथ पिरो देना भी कवि नही भूला है।

इस दृष्टि से अन्त में अव हम यह कहेंगे कि 'पद्मावत' की कहानी कला अपने में कुछ कमजोरियो को समेटे हुए भी काफी सफल है।

काव्य-सौन्दर्य—पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उसके अन्तरग-वहिरग अर्थात् भाव-पक्ष और कलापक्ष दोनो पर एक विहगम दृष्टि डालनी होगी।

जहां तक पद्मावत के भावपक्ष का प्रश्न है जायसी ने अपनी काव्य-कुशलता का चरम विन्दु उसमें प्रविष्ठापित कर दिया है। भावपक्ष का जो भव्य-स्वरूप पद्मावत मे हमें मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी प्रकार कवि का

कलापक्ष भी अत्यन्त प्रौढ है। वस्तुत भावपक्ष और कलापक्ष एक दूसरे के पूरक हैं। भावपक्ष का सौन्दर्य कलापक्ष के माध्यम द्वारा ही उद्घाटित होता है। दोनो का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय है। एक को यदि काव्य की आत्मा कहेंगे तो दूसरे को काव्य का शरीर। दोनो के सामजस्य से ही काव्य की स्थिति है।

भावपक्ष के तीन उपाग हैं—रागात्मक तत्व, बुद्धितत्व और कल्पना तत्व। पद्मावत में इन तीनो तत्वो का वडी कुशलता से प्रतिपादन किया गया है। कुछ उदाहरण लीजिये—

पदमिनि गवन हंस गए दूरी। कुंजर लाज मेल सिर धूरी॥
वदन देखि घरि चन्द समाना। दसन देखि कै बीजु लजाना॥
खंजन छपे देखि कै नैना। कोकिल छपी सुनत मधु वैना॥
पहुचहि छपी कँवल पौनारी। जाघ छपा कदली होइ वारी॥

× × ×

अनचिन्ह पिउ कापौं मनमांहा। का मैं कहव गहव जो बाँहा॥
बारि वैस गहै प्रीति न जानी। तरुनि भई मैमंत भुलानी॥
जोवन गरव न किछु मैं चेता। नेह न जानौं साम कि सेता॥
अब सो कंत जो पूछिहि वाता। कत मुख होइहि पीत किराता॥
करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओहि देखहुँ ठांवहि ठाँऊ॥
जो जिउ मँह तो उहै पियारा। तन मन सो नहिं होई निनारा॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहि कोउ आना॥

× × ×

काह हँसौ तुम मोसो, किएउ और सो नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख वरसै मेह॥

× × ×

नागमती तू पहिल वियाही। कठिन विछोह दहै जनु दाही॥
बहुतै दिन पै आव जो पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ॥

× × ×

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरो ससारा ॥
गगन नखत जो जाहि न वने। ते सब बान ओहि के हने ॥
× × ×
सूरज बूडि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता ॥
भा बसत राती बनसपतीं। औ राते सब जोगी जती ॥
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पखि पखेरू ॥
राती सती अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया ॥

इसी प्रकार अनेक उत्कृष्ट और मनोमुग्धकारी स्थल प्रस्तुत किये जा सकते है जिन्हें पढकर सहृदय भावुक जन विभोर हो उठते हैं।

रस काव्य की आत्मा और भावपक्ष का प्राण है। पद्मावत में प्रधानत शृङ्गार रस का ही वर्णन है। इसके सयोग और वियोग दोनो पक्षो का कवि ने सागोपाग रूपण किया है। शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसो का चित्रण बहुत ही कम हुआ है। हास्य का प्राय अभाव-सा है। करुण का चित्रण दो प्रसगो में मिलता है—एक तो रत्नसेन के योगी होने पर और दुबारा देवपाल से युद्ध करते हुए जाने पर। रौद्र की झलक तब दिखाई देती है जब रत्नसेन अलाउद्दीन का पत्र प्राप्त करता है। वीर रस की व्यजना युद्धो मे हुई है, युद्ध वर्णन में भयानक और वीभत्स रसो के चित्र भी सामने आ गये हैं। कवि ने जहाँ अपने वर्णनो में चमत्कारवादिता दिखाई है और ससार की नश्वरता का प्रतिपादन किया है वहाँ क्रमश अदभुत और शात रस की सृष्टि हुई है। अभिप्राय यह कि रसो के वर्णन में कवि असफल नही रहा है। अपने ग्रथ के मूल रस शृङ्गार का रस राजकत्व् प्रदर्शित किया है।

कलापक्ष मे शब्द शक्ति, अलकार, गुण, छन्द और भाषा-शैली आदि का समावेश होता है। इस दृष्टि मे भी कवि को अपने कार्य-व्यापार मे पर्याप्त सफलता मिली है। उसका कला पक्ष पूर्ण सशक्त और सम्पन्न है। अभिधा, लक्षणा और व्यजना तीनो शब्द शक्तियो से कवि ने काम लिया है। उत्प्रेक्षा रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति और तदगुण, आदि अलकारो की पद्मावत मे प्रचुरता पाई जाती है। गुणो में प्रसाद और माधुर्य की प्रधानता है। छन्दो मे

कवि ने दोहा और चौपाई अपनाया है। भाषा ठेठ अवधी है। कहीं-कहीं व्रज और बँगला के भी कुछ शब्द तद्भव रूप मे मिलते हैं। पूरा पद्मावत मसनवी ढाँचे में ढला होने पर भी कवि की मौलिकता से सपृक्त है। फारसी और भारतीय दोनो शैलियो का इस ग्रथ में अद्भुत मेल पाया जाता है। इस प्रकार कवि ने हिन्दू और मुस्लिम दोनो संस्कृतियो का सम्मिलन कराया है।

पद्मावत का काव्य सौन्दर्य अनुपम है। क्या भाषा, क्या भाव और क्या शैली वा विचार—सभी दृष्टियो से यह ग्रथ उत्कृष्ट है। इसमें कवि की काव्य कला का भव्यतम रूप प्रस्फुटित हुआ है। काव्य-सौन्दर्य में इस महाकाव्य की समता रामचरितमानस के अतिरिक्त हिन्दी का अन्य कोई ग्रथ नही कर सकता। जायसी के कवि ने इसे अपने कुशल हाथो से स्वय ही सँवारा है। इसी नाते यह इतना बहुमूल्य ग्रथ बन सका।

महाकाव्यत्व—विद्वानो द्वारा निर्धारित महाकाव्य के समस्त लक्षण पद्मावत में पाये जाते हैं—

१. पद्मावत की कथा इतिहास प्रसिद्ध कथा है। कवि ने उसमे अपनी कल्पना का समावेश कर, उसे एक अद्भुत स्वरूप प्रदान किया है। इससे उसकी उत्कृष्टता ही बढती है।

२ ग्रथ में ५७ सर्ग हैं, जिनका नाम वर्णनीय कथा पर है।

३ नायक धीरोदात्त, उच्च क्षत्रिय वश का है और नायिका भी ऐसी ही है।

४ ग्रथ मे शृङ्गार रस की प्रमुखता और साथ ही अन्य रसो का भी समावेश है।

५. पद्मावती रूप ईश्वर की प्राप्ति ग्रथ के नायक का लक्ष्य है।

६ प्रात मध्यान्ह, सध्या और रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, यात्रा, यश, सग्राम, विवाह, मत्र आदि सबका यथासम्भव सागोपाग वर्णन है। इसके अतिरिक्त ग्रथ की कुछ अपनी विशिष्टताएँ भी हैं।

कहने का अभिप्राय यह कि पद्मावत हिन्दी का प्रथम और सफल महाकाव्य है।

दार्शनिकता और रहस्यवाद—जायसी निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि सूफी कवि हैं। अस्तु सूफी सिद्धान्तो का उनके काव्य मे पूर्ण समावेश होना स्वाभाविक है। पद्मावत में उन्होने जीवात्मा और परमात्मा का उन्ही सिद्धान्तो पर नात्विक दृष्टि में अभेद का वर्णन किया है। लौकिक दृष्टि में जीव को ब्रह्म के प्रति प्रेमोन्मुख माना है। ब्रह्म की कल्पना उस शक्ति के रूप मे उन्होने की है जिसने प्रथम ज्योति (नूर) की सृष्टि की, और फिर उसके द्वारा अखिल विश्व का निर्माण हुआ। उनका ब्रह्म अजन्मा है—'**जना न काहु न कोइ ओहि जना। जहँ लगि सब ताकर सिरजना।**' यह चराचर, अखिल सृष्टि उसी अनन्त और प्रेममय को पाना चाहती है।

पवन जाइ तहं पहुँचे यहा। मारा तैस, लोटि भुंइ रहा॥
अगिनि उठी, जरि उठी निआना। धुंआ उठा उठि बीच बिलाना॥
पानि उठा, उठि जाइ न छूआ। बहुरा रोइ, आइ भुंइ चूआ॥

प्रकृति के समस्त तत्व इसी आशा से जीवन के सहज धर्म को धारण करते हैं कि एक दिन हम उससे अवश्य मिलेंगे।

सूफी सिद्धान्तो में साधक की चार अवस्थायें बताई गई हैं। पद्मावत में उनका सकेत है—"**चरि बसेरे जो चढै, सत सो उतरै पार।**" शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत यही चार अवस्थाएं हैं, जिन्हें साधक को पार करना पडता है, तब उमे ब्रह्म के दर्शन होते हैं। जायसी का ब्रह्म पूर्ण प्रेममय है। पद्मावती जो ज्ञान या बुद्धि की प्रतीक है, यथा सम्भव प्रेममय परमेश्वर के समस्त गुणो से युक्त है। उसकी प्राप्ति का मार्ग बताने वाला गुरु सुआ है। रत्नसेन के पथ पर चलने वाला साधक जीवात्मा है। नागमती को मार्ग की बाधा के रूप में ग्रहण किया गया है। डा० सुधीन्द्र ने इसे 'काया' कहा है। साधक को भटकाने वाला शैतान राघवचेतन है। अलाउद्दीन माया का प्रतीक है।

जायसी के सूफी सिद्धान्तो पर भारतीय नागपथ का पूर्ण प्रभाव है। ग्रथ में गुरु की महत्ता सर्वोपरि स्वीकार की गई है।

डा० सुधीन्द्र के शब्दो मे "जायसी सूफी होने के नाते निर्गुण निराकार ब्रह्म (खुदा) की माधुर्य भावमूलक, प्रेम प्रधान, प्रणय साधना के पोषक हैं। समस्त 'पद्मावत' सूफी जायसी के ज्ञान का रूपात्मक पदार्थ पाठ है। उसमे अपने सिद्धान्त-जीव की ब्रह्म प्राप्ति की साधना—को रूपक कथा के आवरण में प्रस्तुत किया गया है।

चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं ॥
तन् चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोइ न एहिचित बंधा ॥
राघव दूत सोई सैतानू। काया अलाउदीन सुलतानू ॥
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु ॥

जायसी का मन्तव्य यह है कि—ज्ञान रूप ब्रह्म (खुदा) की प्राप्ति के साधक भक्त को अपने मन को निर्गुण परमेश्वर मे लीन करना चाहिए। उसके स्वरूप की पहचान बिना सदगुरु के ज्ञान-दान के नही होती। सासारिक मोह (माया और स्वजन-परिजन) के बधनो को ठुकराकर ही जो 'शैतान' और 'माया' को विजय कर लेता है वह परमेश्वर को पाता है।

पद्मावत में लौकिक प्रेम के माध्यम से पारलौकिक प्रेम की प्राप्ति-साधना का दिग्दर्शन कराया गया है। सम्पूर्ण ग्रथ में दार्शनिक और रहस्यवादी विचारो का समावेश है। 'पद्मावत' के सृजन में कवि का प्रमुख लक्ष्य ही यही था। इस दृष्टिकोण से उसे पर्याप्त सफलता मिली है।

अन्य विशेषताएँ—'पद्मावत' एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है। उसके अतरग और बहिरग दोनो में कवि की काव्य-कला का उत्कृष्ट स्वरूप मिलता है। वह हिन्दू और मुस्लिम दोनो सस्कृतियो के सम्मिलन का एक सफल प्रयास है। मुसलमान कवि के द्वारा भारतीय कहानी का अपनाया जाना, और उसमें वर्णित देवी देवताओं को उचित श्रद्धा की दृष्टि से कवि द्वारा देखा जाना, पद्मावत की उत्कृष्टता की ओर सकेत करता है। ग्रथ में भारती जीवन की एक सुन्दर झाँकी मिलती है। साथ ही तत्कालीन विविध परिस्थितियो का उल्लेख भी

पद्मावत की सबसे बडी विशेषता, जो उसे भारतीय साहित्य के श्रेष्ट ग्रन्थो में स्थान देती है, यह है कि उसमें मानव जीवन की प्रधान वृत्ति प्रेम का सागोपांग निरूपण और प्रतिपादन है। प्रेम की महत्ता सर्वोपरि स्वीकार की गई है। प्रेम के सम्मुख स्वर्ग तक को त्याज्य और हेय बताया गया है। अखिल चराचर प्रेममय ब्रह्म की छाया है, उसे पहचानना जीव का धर्म है। प्रकृति से प्रेम करके ही जीव, ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

अपनी इन विशिष्टताओ के कारण 'पद्मावत' एक उच्चकोटि का ग्रथ है। भारतीय साहित्य में उसका स्थान अन्यतम है।

प्रश्न ६—जायसी की रचनाओं में अपने मत-विशेष के प्रचार के साथ-साथ साहित्य-सवर्द्धना का पक्ष भी प्रबल है—स्पष्ट कीजिए।

काव्य का सृजन तभी हो सकता है जब कवि पूर्ण भावोद्रेक की अवस्था में पहुँच जाता है, साथ ही अपने उस उद्रेक को वाणी प्रदान करने के लिए उचित शब्द-योजना और वाक्य निर्माण की उसमे क्षमता भी होती है। यह कहने की आवश्यकता नही कि काव्य और प्रलाप में अन्तर होता है, अन्यथा इस धराधाम पर कवि ही कवि नजर आते।

इस तथ्य के प्रकाश मे जब हम महाकवि जायसी के काव्य पर दृष्टिपात करते है तो हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि अपनी रचनाओ में वे कवि प्रथम है फिर और कुछ (**जायसी ही क्या, प्रत्येक काव्यकार पहले कवि होता है फिर और कुछ—समाज सुधारक, नेता, विचारक, दार्शनिक तथा धर्म व्यवस्थापक व प्रचारक आदि। पहले उसका मन अपने काव्य को उच्चातिउच्च कोटि के बनाने में लगता है, तदुपरि उसके माध्यम से वह अपने अन्य किसी मतव्य विशेष का प्रतिपादन करता है।**) हिन्दी जगत के सामने सर्वमान्य तथा प्रमुख रूप मे जायसी की तीन पुस्तकें हैं। १ आखिरी कलाम, २ पद्मावत तथा ३ अखरावट। इन तीनो कृतियो का विस्तृत विवेचन हम 'जायसी की रचनाएँ' वाले अध्याय मे कर चुके है। अस्तु उन्ही सब बातो को उसी रूप में पुन दुहराना अधिक समीचीन नही जान पडता। यहाँ हमें केवल इतना ही कहना

है कि जायसी कवि थे और वह भी महाकवि। उनकी काव्य-प्रतिभा बहुत ही उच्चकोटि की थी जिसमे किसी को सन्देह नही हो सकता। उनका 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का वह प्रथम अपूर्व ग्रथ है जो अपने इस व्यवस्थित रूप में हमें प्राप्त है।

हिन्दी-काव्य क्षेत्र मे जायसी से पूर्व प्रबन्ध काव्य के लिखने वालो मे महाकवि चदवरदाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। प्रक्षिप्तांशो के आ जाने से उनका 'पृथ्वीराज रासो' भले ही आज विद्वानो के विवाद का विषय बना हुआ हो किन्तु उनकी महान् कवि-प्रतिभा अपने क्षेत्र मे प्रतिद्वन्दी नही रखती। उनके काव्य की अपनी विशेषताएँ उन्हें महाकवि के आसन पर आसीन करती हैं। वीर गाथात्मक शैली और सीमा मे जीवन की विविध दशाओं का जो मार्मिक चित्रण उन्होने किया है वह अभिनदनीय है। उनके काव्य मे उत्कृष्टता है, इसमे दो मत नही। ओज और प्रभावोत्पादकता उनकी कविता के अपने गुण-विशेष हैं। युद्ध क्षेत्र मे तलवारो की गति और प्रणय की दुनिया में कल कामिनियो के चचल कटाक्ष के साथ उनकी भाषा भी नर्तन करती है। ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनो गुणों का अद्भुत समन्वय हमको उसमे दिखाई देता है। जिस दृश्य का भी चित्र उन्होने खीचा है उसे साकार कर दिया है। उनकी उदात्त कल्पना, मर्मस्पर्शी भाव-व्यजना और मनहर अलकार-योजना, कविता में प्राण डाल देती है। वीर और शृङ्गार की एक साथ जो सुन्दर झाँकी हमें चन्दवरदाई के काव्य मे मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। तात्पर्य यह कि एक महाकवि के लिए अपेक्षित प्राय सभी उदात्त तथा प्रौढ वृत्तियां हमे चन्दवरदाई मे मिलती हैं। और इस नाते हम उन्हे हिन्दी का प्रथम महाकवि कहते हैं। चन्दवरदाई की सी ही महाकवि की प्रतिभा उनके उपरात यदि किसी मे देखने को मिलती है तो वह प्रेम के चतुर चितेरे कविवर जायसी मे ही। वीर गाथा-काल मे अन्य अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गये थे किन्तु वे उस स्तर तक नही पहुँच सके थे जहाँ पृथ्वीराज रासो था। वीर गाथात्मक युग के बाद कबीर आदि ज्ञानमार्गी सन्त कवियो का तो अपना क्षेत्र ही अलग था। अन्तत चन्दवरदाई के बाद उस परम्परा मे इतने उच्च आसन पर हमे जायसी ही दिखाई

देते हैं। स्थूल रूप से प्रवन्ध काव्यो को तीन वर्गो मे वॉटा गया है १—वीर गाथात्मक, २—प्रेम गाथात्मक और ३—जीवन-गाथात्मक। इस व्यवस्था के अनुसार रासो आदि को वीरगाथा के अन्तर्गत, मृगावती, पद्मावती आदि को प्रेम गाथा के अन्तर्गत तथा रामचरित मानस को जीवन गाथा के अन्तर्गत जब रखते हैं तो प्रेम गाथा की परम्परा के भीतर (जिममे कुतुबन, उस्मान और नूर मोहम्मद आदि हैं) जायसी का स्थान सर्वोच्च ठहरता है। उनका पद्मावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है।

उपर्युक्त बातो की चर्चा कर अपने उत्तर मे मैंने किसी अप्रासागिकता का समावेश नही किया है, अपितु उसके उल्लेख मे हमारा यह लक्ष्य छिपा हुआ है कि आप लोग देखे कवि के रूप मे जायसी कितनी ऊँचाई पर हैं। इस प्रकार उनके स्थान का मोटे रूप से निर्धारण कर लेने के उपरात अब हम उनके काव्य क्षेत्र मे प्रवेश कर यह जानने का प्रयत्न करेगे कि साहित्य सवर्द्धना मे उन्होने कितना योग दिया तथा उनका यह पक्ष कितना प्रवल है ?

पहली वात तो यह कि जायसी उच्च कोटि के कवि है। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि प्रत्येक कवि का यह प्रथम प्रयत्न होता है कि वह अपनी काव्य-प्रतिभा को अधिक से अधिक निखारे अथवा अपनी उस शक्ति को प्रौढ़-तर बनाये, जायसी ने भी प्रथम वही किया। उस शक्ति से अपने को पूर्ण सम्पन्न वनाने मे अनवरत प्रयत्नशील रहे। उन्होने प्रथम अपने कवित्व को जगाया और जब उसमे सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली तब उसके बाद और किसी विषय की ओर झुके हैं। उनकी काव्य कीर्ति का अक्षय स्तभ आखिरी कलाम व अखरावट न होकर पद्मावत ही है क्योकि इसमे उनकी उस शाश्वत भावना को वाणी मिली है जो विश्वजनीन होने के साथ ही साथ परमानन्द मे लय होने को आतुर है। **'आखिरी कलाम'** उनके कवि के वाल-प्रयास, **'पद्मात'** युवा और प्रोढावस्था के परिणाम तथा **'अखरावट'** उनकी अन्तिम कृति के रूप मे हमारे सामने आता है। अखरावट सिद्धान्त-ग्रन्थ होने के नाते काव्य की दृष्टि से अधिक महत्व नही पा सका। **'आखिरी कलाम'** की साहित्यिक-योजना ढीली ढाली और अधकचरी है। हाँ, इसमे कोई सन्देह नही कि उसमे महाकवि

का बीजारोपण दृष्टिगत होता है। इस ग्रंथ मे कवि ने कयामत के दिन तथा उससे सम्बन्धित अन्य उसी प्रकार की बातो का वर्णन किया है। इस्लाम सम्बन्धी अपनी विविध जानकारी को प्रकट करने का प्रयत्न किया है जो उसके अस्थिर जीवन पथिक की ओर संकेत करता है। कवि के विचारो मे अभी स्थायित्व नही आ पाया था। इन काव्य में वाक्य संगठन, काल सूचक और भाव व्यंजन की शिथिलताएँ पर्याप्त मात्रा में हैं। कवि के भीतर प्रबन्ध काव्य की निर्वहण शक्ति अभी नही आ पाई थी। इसमें सात-सात चौपाइयो के बाद एक दोहा है और इसका मसनवी शैली मे निर्माण हुआ है। तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार हिन्दू मुस्लिम सम्मिलन की भावना भी यत्र-तत्र दिखाई देती है, सम्पूर्ण ग्रन्थ में, काव्य-सौष्ठव तथा सौन्दर्य का पलडा भारी तो नही है किन्तु फिर भी अनेक स्थल बडे ही मनमोहक और सुन्दर बन पडे हैं। ऐसे ही स्थलो की रमणीयता पर मुग्ध होकर कुछ विद्वानो ने इसकी शैली को पद्मावत की अपेक्षा प्रौढतर सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु उनका यह आग्रह न्यायसंगत नही कहा जा सकता। मैं स्वयं भी इसके पक्ष में नही हूँ। हाँ कवि की उगती हुई नववयी प्रतिभा का किशोर चित्र अपने प्रारम्भिक आकर्षण से हमारे मन को अवश्य मुग्ध कर लेता है। मैंने ऊपर निवेदन किया है कि आखिरी कलाम कवि की प्रारम्भिक कृतियो मे से जान पडती है, इस नाते उसमें काव्य के प्रौढतर स्वरूप की उपेक्षा करना कवि के साथ अन्याय होगा। इस ग्रंथ के पढने मे हमे इतना अवश्य आभास मिल जाता है कि कवि अपनी प्रतिभा को विकसित करने के लिए उत्सुक और प्रयत्नशील है। इस आधार पर कवि के साथ न्यायपूर्ण दृष्टि रखते हुए मुझे यह कहने में कोई संकोच नही कि कवि ने इस ग्रंथ मे अपने साहित्यिक संवर्द्धना पक्ष की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है।

आखिरी कलाम के बाद कवि का सर्वोत्तम ग्रंथ और हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का प्राण पद्मावत आता है इस ग्रंथ में कवि की विराट प्रतिभा के दर्शन होते है। कवि की साधना पूर्ण सशक्त और सजग होकर इस काव्य मे अवतरित हुई है। कवि की काव्य-कला के उत्तरोत्तर विकास का परिचय ग्रंथ

की प्रथम पक्ति से ही चल जाता है। आखिरी कलाम में जिस कवि ने यह कहा था—

"पहिले नाम देव करि लीन्हा। जेइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा॥"

कवि पद्मावत में अपना पहला बोल इस प्रकार आरम्भ करता है—

"सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह, कीन्ह संसारू॥"

तात्पर्य यह कि कवि की साहित्यिक प्रतिभा यहाँ अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में चित्रित हुई है। सम्पूर्ण काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष पर जब हम एक विहगम दृष्टि डालते हैं तो हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि काव्य के दोनो पक्ष उच्चकोटि के हैं। भावपक्ष में रागात्मक तत्व, बुद्धितत्व और कल्पना तत्व का जैसा सुन्दर और सफल चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है उसकी चर्चा हम पिछले पृष्ठो में कर चुके हैं। कवि के भाव-पक्ष का केन्द्र विन्दु प्रेम है। पद्मावत में जिसे उद्दात उच्च और व्यापक तथा पवित्र प्रेम की कल्पना कवि ने की है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम के क्षेत्र में शृङ्गार रसातर्गत मिलन और विरह के जो मनोहर तथा मर्मस्पर्शी चित्र कवि ने खीचे हैं वैसे अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। पवित्र प्रणय की वैसी अनूठी भाव-व्यजना जायसी ऐसे कवि के अनुरूप ही थी। प्रेम की उस गहराई में विरले कवि उतर सके हैं। कवि की अनन्यता, प्रेमोन्मत्तता और हर्षोल्लास-व्यजना उसकी अपनी निधि है। व्यापक प्रेम की इतनी सुन्दर और मनोहर झाँकी प्रस्तुत करने का श्रेय उस युग में जायसी को ही है। उनकी प्रेम वेदना की गूढता निराली है। पाडित्य और विचारो तथा साहित्यिकता की दृष्टि से भले ही तुलसी हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ कवि हो किन्तु प्रेम की इस गूढ व्यजना के सम्मुख तो उन्हे अपना मस्तक झुकाना ही पडता है। प्रेम की नाना दशाओ का दिग्दर्शन कराके कवि ने अपने को इस क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी वना लिया है।

पद्मावत का कला-पक्ष भी कम प्रौढ नही। दोहे और चौपाइया में लिखा गया मनसवी ढग का यह काव्य वडा ही निराला वन पडा है। वोल चाल की ठेठ अवधी का प्रयोग करने के नाते भाषा में एक अपूर्व मिठास आ गई है जो उसे

साहित्यिक बना देने मे नही ही आ पाती। तुलसी की साहित्यिक अवधी को इतना परिमार्जित करने का श्रेय उनके महान अध्ययन, ठोस ज्ञान, और पांडित्य को है। और सबसे बडी बात यह कि तुलसी की वह मातृ-भाषा है। इसके विपरीत जायसी का अध्ययन व चिंतन इतना गम्भीर नहीं था। और न तुलसी की भाँति उन्होंने विधिवत शिक्षा ही पाई थी। तुलसीदास की समकक्षता में अध्ययन की दृष्टि से जायसी को शून्य अंक ही मिलने चाहिएँ। दूसरे यह भी कि जायसी मुसलमान थे और उनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं थी। फिर भी कवि ने पद्मावत की भाषा को जो मिठास प्रदान की है हिन्दी साहित्य मे वह उसकी देन ही कही जायगी।

पद्मावत की अलंकार-योजना आकर्षक, भाषा प्रवाहमान, उक्तियाँ चुभती हुई तथा कल्पना उच्चकोटि की और छंद चलते हुए व शैली सरल है। अपने काव्य मे प्राण प्रतिष्ठा करने के लिए कवि ने नागमती के विरह वर्णन का समावेश किया अन्यथा कथा-क्रम में उसकी कोई विशेष आवश्यकता नही थी। भारतीय नारी का उज्ज्वलतम और आदर्श रूप नागमती के चरित्र के कुछ मुख्य विन्दुओ द्वारा प्रस्तुत करना जायसी का उस वर्णन में प्रमुख ध्येय कहा जा सकता है। जो सम्पूर्ण काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इसी नाते आचार्य शुक्ल को भी कहना पडा, "जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिन्दू गृहणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलंभ शृङ्गार के अत्यन्त सम्मुज्ज्वल रूप का विकास दिखाया है।" "नागमती के विरह वर्णन के अन्तर्गत वह प्रसिद्ध बारह मासा है। जिसमें वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारो ओर की प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारो के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।"... "नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।" पद्मावत के एक मर्मस्पर्शी काव्य स्थल क्या कवि के काव्य नवर्द्धन दृष्टि की ओर संकेत नही करते? भावो की इतनी गूढ व्यंजना हिन्दी काव्य को इतनी सरलता से नही उपलब्ध हैं। देखिए पद्मावत के काव्य सौंदर्य पर मुग्ध होकर डा० रामकुमार

वर्मा ने कितनी युक्ति सगत वात कही है। "पद्मावत का सबसे बड़ा सौंदर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है। नागमती का विरह वर्णन, उसका उन्माद पशु पक्षियों से उसकी सहानुभूति प्रकट करना आदि सभी स्वाभाविकता के साथ वैदग्ध पूर्ण भाषा में वर्णित है। बारहमासा मे वेदना का कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का मर्मस्पर्शी माधुर्य, प्रकृति की सजीव अभिव्यक्ति मे हृदय की मनोहर अनुभूति है। इसी मनोवैज्ञानिक चित्रण में रसों का सफल प्रदर्शन हुआ है। जहाँ रत्नसेन-पद्मावती मिलन में सयोग और नागमती विरह वर्णन मे वियोग शृङ्गार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है वहाँ गोरा वादल के उत्साह में वीर-रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अतिम भाग में मारे जाने पर करुण रस से ही, प्रत्युत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पद्मावत प्रेमकाव्य का एक चिर स्मरणीय ग्रथ रहेगा।" फारसी की मनसवी-शैली से प्रभावित होने के कारण कही-कही कवि के काव्यत्व को भारी धक्का भी लगा है पर वह विचार और नीति की दृष्टि से ही हेय कहा जा सकता है शुद्ध काव्य की दृष्टि से नही। वैसे काव्य में और भी दोप है किन्तु अनेक काव्यात्मक गुणो के सम्मुख उनकी गणना शून्यवत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मावत में भी कवि अपनी साहित्य-मवर्द्धना की वात नही भूला है, वल्कि उमे शीर्पस्थ कर दिया है। इस सम्वन्ध में सवमे प्रमुख वात यह है कि कोई भी कवि या साहित्यकार अपनी कृति का सृजन साहित्य सवर्द्धना को लक्ष्य वनाकर नही करता है अपितु प्रमुख कला अथवा उसकी साधना होने के कारण उसके चित्राकन में उत्तरोत्तर विकास आता ही जाता है। अन्यथा कवि को भारी असतोप हो आये। कवि का अपनी कला के प्रति यह अनन्य अनुराग ही उसके साहित्यिक पक्ष का निरतर सवर्द्धन करता रहता है। कवि चाहे उमे जान पाये या न जान पाये। उसकी काव्यात्मक शक्ति का विकास होता रहता है।

अखरावट कवि का मैद्धान्तिक ग्रथ है जिसमे उसने अक्षर क्रमानुसार धार्मिक उपदेश दिए है। इमके सम्वन्व में डा० जयदेव की इन पक्तियो के साथ

जिन्हें उन्होने सैयद मुस्तफा से सहमत होते हुए लिखा है, मैं भी स्वर मिलाता हुआ कहूँगा कि "इस काव्य में छन्दगत दोष न्यूनतम हैं। दोहे चौपाइयो में माधुर्य भी अधिक और भाषा भी अधिक सुस्थिर तथा व्यवस्थित है। कवि ने एक नवीन छन्द सोरठे का भी सफल प्रयोग किया है। कुछ सोरठो के चारों चरणो के तुको में साम्य है जिससे यह छन्द विशेष श्रुति-मधुर बन गए हैं। गोस्वामी जी ने भी इस प्रकार के पद्यो का प्रयोग किया है जो जनता मे बड़े ही लोकप्रिय बन गये हैं।" इस प्रकार इस ग्रथ से भी स्पष्ट है कि कवि का ध्यान साहित्य सवर्द्धन की ओर अवश्य रहा है अन्यथा उसकी कला को यह निखार नही मिलता।

जायसी के आखिरी कलाम, पद्मावत और अखरावट के साहित्य पक्ष की साधारण चर्चा कर लेने के उपरात अब हम उनके मत-विशेष के प्रचार की भावना को देखेंगे।

इस सम्बन्ध में मेरे और कुछ कहने से पूर्व यह सर्वमान्य बात जान लेनी चाहिए कि जायसी एक उच्च कोटि के सूफी साधक थे। सभी सूफी साधको का यह प्रमुख कर्तव्य होता है कि वे अपने धर्म का प्रचार करे। इसी नाते सूफी प्रेम गाथाकारो ने अपने काव्यों के माध्यम से सूफी धर्म का प्रचार कार्य सम्पन्न किया है, फिर सर्वश्रेष्ठ हिन्दी सूफी प्रेम गाथाकार जायसी ही इस कथन के अपवाद कैसे हो सकते थे। जायसी के काव्य मे सूफीमत के समाविष्ट होने के कौशल के लिए डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है कि "समस्त कथा मे सूफी सिद्धात बादल मे पानी की बूंद की भांति छिपे हुए हैं।" सूफियो की नीति उदार होती हैं। इस्लाम की कट्टरता से उन्हें चिढ है। जीवन की स्वच्छ, सरल और पवित्र उदात्त वृत्तियो को वे विशेष प्रश्रय देते हैं, मानवता के विकास मार्ग पर जोर देते हैं। पारस्परिक उच्छृङ्खल स्वार्थी वृत्ति से परे व्यक्ति को ऊँचा उठाने की बात करते हैं। शाश्वत सत्य की व्याख्या करते हैं, आध्यात्मिक प्रेम का वह महामन्त्र देते हैं जिसके सहारे पतनोन्मुख मानव पार-लौकिक सुख की प्राप्ति कर सके। परम प्रियतम का अश जीवात्मा उसमे लीन

हो अखड आनन्दमय हो जाय। सभी प्रकार के बन्धनो से मुक्त हो जाय। प्रेम जो मानव जीवन का चरम-बिन्दु है, इन सूफी कवियो की कविता का प्राण है। जायसी के काव्य में ये समस्त विशेषतायें अपनी प्रबल शक्ति के साथ विद्यमान हैं। जायसी ने सूफी साधना का बडा विस्तृत और गूढ तथा व्यापक वर्णन किया है। आखिरी कलाम तो उनके इस्लामी विचारो का प्रतिनिधित्व ही करता है। अखरावट में वे इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि विधिना के पास पहुँचने के तो तन-रोग्राँ और आकाश के नक्षत्रो की भाँति अगणित मार्ग हैं किन्तु उनमें से मुहम्मद साहब द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही सर्वोत्तम है। इस प्रकार अपने धर्म के प्रति वे गहरी निष्ठा व्यक्त करते हैं। अखरावट और आखिरी कलाम दोनो में उनके इस्लामी स्वरूप का प्रकटीकरण है, और पद्मावत का तो कहना ही क्या ? वह तो उनकी समस्त साधना का प्रशस्त पथ-निर्माण ही है जिसके प्रति हिन्दू जनता को आकृष्ट कर वे उसे उसकी अनुगामिनी बनाना चाहते हैं। उन्हें हिन्दुओ का सहज विश्वास तो प्राप्त था, पर विधि की कुछ ऐसी मरजी थी कि जायसी को इस दिशा में मनचाही सफलता न मिल सकी। इसमें सन्देह नही कि अपने सूफी धर्म को उन्होने अपने काव्य में बडे कौशल से पिरोया है। काव्य की मनोहरता में वे सिद्धान्त वैसे ही घुल-मिल गये हैं जैसे बादलो की सघन घटा में बिजली।

अपनी काव्योपासना के साथ-साथ सूफी धर्म साधना एव उसके प्रसार की बात वे नही भूल सके हैं। उसके प्रति उनका सस्कारगत मोह है जिसे उनसे अलग भी नही किया जा सकता। श्री यज्ञदत्त शर्मा के शब्दो मे "महाकवि जायसी मुसलमानी आस्थाओं मे विश्वास रखने वाले सूफी मुसलमान थे और अपनी ही मान्यता का प्रचार उन्होंने किया है। मुसलमान धर्म के प्रवर्तकों में उनका पूर्ण विश्वास था और उनकी मान्यताओं तथा पाबन्दियों की रूढियों का उन पर असर था। वह एक सूफी मुसलमान थे और मुसलमानी दर्शन के प्रति ही उनकी मान्यता थी।" सूफी साधना जायसी के जीवन का प्रधान लक्ष्य था और उसकी सिद्धि में जीवन पर्यन्त वे लगे भी रहे। पद्मावत में सम्पूर्ण कथा

कह जाने के उपरात उन्हें यह आशंका वनी रही कि कही हमारी यह प्रेम-कहानी दूसरे ढग से न विचार ली जाय इसलिए उपसहार में (जो मसनवी शैली के अन्तर्गत देने की मजवूरी भी थी) उन्होने अपना मतव्य स्पष्ट कह सुनाया—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा ॥
चौवह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं ॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, वुधि पदमिनि चीन्हा ॥
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। विना गुरु को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया-धंधा। कांचा सोइ न एहि चित बंधा ॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू ॥
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु ॥

अपने उत्तर का अन्तिम निष्कर्ष देने से पूर्व हम दो एक स्थल ऐसे और उपस्थित कर देना आवश्यक समझते हैं जिनके द्वारा उनकी सूफी साधना अधिक मुखर हो सकी है।

यह सूर्य की भाँति सबके सामने है कि सूफी साधना का केन्द्र विन्दु प्रेम है। उसी प्रेम की प्रशस्ति में जायसी ने वहुत कुछ लिखा है—

भलेहि प्रेम है कठिन सुहेला।
दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला ॥

किन्तु शिष्य के अन्दर इस प्रेम ज्योति को जगा देना गुरु का ही कार्य है। वह विरह की एक चिनगारी डालता है, शिष्य उसी चिनगारी को अपने में अधिक सुलगा लेता है।

गुरु विरह चिनगी जो मेला।
जो सुलगाई लेइ सो चेला ॥

अथवा

सवद एक उन कहा अकेला।
गुरु जस भृंग फनिग जस चेला ॥

हो अखड आनन्दमय हो जाय। सभी प्रकार के वन्धनो से मुक्त हो जाय। प्रेम जो मानव जीवन का चरम-विन्दु है, इन सूफी कवियो की कविता का प्राण है। जायसी के काव्य में ये समस्त विशेपतायें अपनी प्रवल शक्ति के साथ विद्यमान हैं। जायसी ने सूफी साधना का वडा विस्तृत और गूढ तथा व्यापक वर्णन किया है। आखिरी कलाम तो उनके इस्लामी विचारो का प्रतिनिधित्व ही करता है। अखरावट में वे इस वात की स्पष्ट घोपणा करते हैं कि विधिना के पास पहुँचने के तो तन-रोओं और आकाश के नक्षत्रो की भाँति अगणित मार्ग हैं किन्तु उनमें से मुहम्मद साहव द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही सर्वोत्तम है। इस प्रकार अपने धर्म के प्रति वे गहरी निष्ठा व्यक्त करते हैं। अखरावट और आखिरी कलाम दोनो में उनके इस्लामी स्वरूप का प्रकटीकरण है, और पद्मावत का तो कहना ही क्या ? वह तो उनकी समस्त साधना का प्रशस्त पथ-निर्माण ही है जिसके प्रति हिन्दू जनता को आकृष्ट कर वे उसे उसकी अनुगामिनी बनाना चाहते हैं। उन्हें हिन्दुओ का सहज विश्वास तो प्राप्त था, पर विधि की कुछ ऐसी मरजी थी कि जायसी को इस दिशा में मनचाही सफलता न मिल सकी। इसमें सन्देह नही कि अपने सूफी धर्म को उन्होने अपने काव्य में वडे कौशल से पिरोया है। काव्य की मनोहरता में वे सिद्धान्त वैसे ही घुल-मिल गये हैं जैसे वादलो की सघन घटा में विजली।

अपनी काव्योपासना के साथ-साथ सूफी धर्म साधना एव उसके प्रसार की वात वे नही भूल सके हैं। उसके प्रति उनका सस्कारगत मोह है जिसे उनसे अलग भी नही किया जा सकता। श्री यज्ञदत्त शर्मा के शब्दो मे "महाकवि जायसी मुसलमानी आस्थाओं मे विश्वास रखने वाले सूफी मुसलमान थे और अपनी ही मान्यता का प्रचार उन्होंने किया है। मुसलमान धर्म के प्रवर्तकों में उनका पूर्ण विश्वास था और उनकी मान्यताओ तथा पावन्दियो की रूढियों का उन पर असर था। वह एक सूफी मुसलमान थे और मुसलमानी दर्शन के प्रति ही उनकी मान्यता थी।" सूफी साधना जायसी के जीवन का प्रधान लक्ष्य था और उसकी सिद्धि मे जीवन पर्यन्त वे लगे भी रहे। पद्मावत मे सम्पूर्ण कथा

कह जाने के उपरात उन्हें यह आशका वनी रही कि कही हमारी यह प्रेम-कहानी दूसरे ढग से न विचार ली जाय इसलिए उपसहार मे (जो मसनवी शैली के अन्तर्गत देने की मजबूरी भी थी) उन्होने अपना मतव्य स्पष्ट कह सुनाया—

मै एहि अरथ पडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पथ दिखावा। बिना गुरु को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया-धधा। बाँचा सोइ न एहि चित बधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु॥

अपने उत्तर का अन्तिम निष्कर्ष देने से पूर्व हम दो एक स्थल ऐसे और उपस्थित कर देना आवश्यक समझते हैं जिनके द्वारा उनकी सूफी साधना अधिक मुखर हो सकी है।

यह सूर्य की भाँति सबके सामने है कि सूफी साधना का केन्द्र बिन्दु प्रेम है। उसी प्रेम की प्रशस्ति में जायसी ने बहुत कुछ लिखा है—

भलेहि प्रेम है कठिन सुहेला।
दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला॥

किन्तु शिष्य के अन्दर इस प्रेम ज्योति को जगा देना गुरु का ही कार्य है। वह विरह की एक चिनगारी डालता है, शिष्य उसी चिनगारी को अपने मे अधिक सुलगा लेता है।

गुरु विरह चिनगी जो मेला।
जो सुलगाई लेइ सो चेला॥

अथवा

सबद एक उन कहा अकेला।
गुरु जस भृग फनिग जस चेला॥

भृङ्गी ओहि पाँखि पै लेई।
एकहि बार छीनि जिउ देई।।

जायसी का कहना है कि शुद्ध साधना के लिए पहले अह को दूर करो। अपने को मिटा दो।

जब लगि गुरु हौं अहा, न चीन्हा।
कोटि अन्तर पट बीचहि दीन्हा।।
जब चीन्हा तब और न कोई।
तन मन जिउ जीवन सब सोई।।
हौं हौं करत धोख इतराई।
जब भा सिद्ध कहाँ इतराहीं।।

जो इस प्रकार उठकर अपने प्रियतम में लय हो जाता है वह धन्य है। जायसी का कहना है कि प्रियतम के पास जो पहुँच गया उसे फिर इस मायावी विश्व में लौटने की आवश्यकता नही रहती। उस आनन्द लोक की महिमा न्यारी है।

जब राजा रत्नसेन दिल्ली मे कैद हो गये तब रानी पद्मावती का विलाप कुछ इसी प्रकार के भावो को ध्वनित करता है—

सो दिल्ली अब निबहुर देसू। केहि पूछहुँ, को कहै सदेसू।
जो कोइ जाइ तहाँ करि होई। जो आवै किछु जान न सोई।।
अगम पथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा।।

जायसी पर नाथ पथ और हठयोग का पूरा-पूरा प्रभाव था। सिंहलगढ के वर्णन मे अनेक उदाहरण ऐसे मिलेंगे। गढ को शरीर का रूपक देकर हठयोग साधना का कैसा सुन्दर चित्र उन्होने खीचा है, इसे नीचे की पक्तियो में देखिए—

गढ़ तस बाँक जौसि तोरि काया। पुरुष देखि ओही कै छाया।।
नौ पौरी तेहि गढ मझियारा। औ तहँ फिरै पाँच कोतवारा।।
दसवें द्वार गुपुत एक तारा। अगम चढाव बाक सो बाका।।

भेदै जाइ सोइ वह घाटी। जो लहि भेद चढ़ै होइ चांटी ।।
गढ़ तर कुंड, सुरंग तेहि मांहा। तहँ वह पंथ कहौं तोहि पांहा ।।
जस मरजीया समुद धँसि, हाथ आव तव सीप।
ढूँढि लेहि जो सरग दुआरी। चढै सो सिंहलदीप।

तथा—

नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ वज्र किवार।
चारि बसेरे जो चढ़े, सत सो उतरै पार ।।

पर यहाँ हम एक वात का उल्लेख और कर देना चाहते हैं कि पद्मावत के अधिकांश स्थलों में इस आध्यात्मिक या सूफी मत के अनुकूल, अर्थ नहीं ध्वनित हुए हैं। कुछ थोड़े से स्थल ही हैं जहाँ कवि की यह साधना अधिक वेग से मुखरित हुई है। अनेक स्थलों पर तो वर्णन इतना स्थूल हो गया है कि आध्यात्मिक अर्थ की खींचतान करना कवित्व की हत्या करना प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए वादल की नवागता वधू का कथन देखिये—

जौं तुम चहहु जूझि पिउ! वाजा। कीन्ह सिंगार-जूझ मैं साजा ।।
जोवन आइ सौंह होइ रोपा। विखरा विरह कामदल कोपा ।।
भौंहैं धनुष नैन सर साधे। काजर पनच, वरुनि विष वाँधे ।।
अलक-फांस गिउ मेलि असूझा। अधर-अधर सौं चाहहिं जूझा ।।
कुम्भ स्थल-कुच दोउ मैमंता। पेलौं सौंह, सँभारहु कंता ।।

कौन भारतीय वधू इतनी निर्लज्ज हो जायगी कि प्रथम समागम के अवसर पर अपने पति से इस प्रकार प्रलाप करेगी। वर्णन को पढकर मन घृणा और क्षोभ से भर जाता है।

पद्मावती-रत्नसेन का मिलन देखिये—

लीन्ह लेक, कंचन-गढ टूटा, कीन्ह सिंगार अहा सव लूटा ।।
औ जोवन मैमत विधासा। विचला विरह जीव जो नासा ।।
टूटे अंग अंग सव भेसा। छूटी मांग, भंग भए केसा ।।
कंचुकि चूर, चूर भइतानी। टूटे हार मोति छहरानी ।।

वारी, टाँण सलोनी टूटी। बाहू कगन कलाई फूटी।
चदन अंग छूट अस भेंटी। वेसरि टूटि तिलक गा मेटी ॥

पुहुप सिंगार सवार सब, जोवन नवल बसत।
अरगज जियिहिय लाइ कै, मरगज कीन्हेउ कत ॥

कहने की आवश्यकता नही कि वर्णन घोर पार्थिव है। लौकिक प्रेम माध्यम से कवि यहाँ अलौकिक सूफी प्रेम का आभास नही दे पाया है।

ऐसे ही ग्रन्थ में अनेक स्थल है जिन्हे उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया ज सकता है। वहां पर कवि केवल काव्यात्मक वर्णन करता चलता है उसका व वेग, अपेक्षा कृत सूफी सिद्धान्तो का प्रचार करनें के, अधिक प्रखर है।

इससे यह पता चलता है कि कवि की काव्य-धारा के प्रवाह को उसके सूफी सिद्धान्त नहीं रोक सके हैं। वह जिधर जाना चाहती है स्वेच्छा से उध वहती गई है। तात्पर्य यह कि कवि की कला के विकास मार्ग में सूफीमत मन चाहा अवरोध नही वन सका है।

अस्तु अव हम निष्कर्ष रूप में यह कहेगे कि कवि की कला में साहित्य सवर्द्धन-स्वाभाविक प्रवल, तथा सशक्त वेग से हुआ है किन्तु साथ ही जायस अपने जीवन की मूल साधना सूफीमत को भी नहीं भूल सके हैं। अपने काव में उसका सगुफन भी उन्होने वडी चतुरता से किया है। पक्का मुसलमान हो के नाते अपने धर्म की विशद विवेचना तथा उसके प्रचार व प्रसार का उनव यह प्रयत्न विल्कुल स्वाभाविक ही था।

प्रश्न ७—जायसी के प्रेम गाथा-काव्य में भावात्मक और व्यवहारात्म दोनों ही शैलियों का सम्मिश्रण है। सप्रमाण समझाइये।

'जायमी के प्रेमगाथा काव्य में भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनो पक्ष का सम्मिश्रण है' इस तथ्य का उद्‌घाटन जायसी के प्रेम तत्व तथा उसक पद्धति को जान लेने के उपरात हो जाता है।

भारतीय साहित्य में कवियों ने प्राय निम्न चार रूपो में प्रेम को ग्रहण किया है—

१. जीवन की प्रेरक शक्ति के रूप में।

२ प्रेम को जीवन का साध्य मान कर।

३. प्रेम को जीवन का एक अग मानकर।

४ जीवन को प्रेम का एक अग मानकर।

आदि काव्य रामायण में वर्णित राम और सीता का प्रेम प्रथम प्रकार,का र्थात् जीवन की मूल शक्ति के रूप मे है। वह शक्ति जीवन की शाश्वत और रतन शक्ति है। सीता और वियोगी राम के क्रियाकलापो मे उसी शक्ति ी अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार के प्रेम को विवाह के पश्चात् उत्पन्न होने ाला और जीवन की कठिनाइयो में उत्कर्ष को प्राप्त होने वाला प्रेम भी कहा ाता है।

दूसरे प्रकार का प्रेम वह है जिसमें प्रेम को ही जीवन का साध्य मान कर ला जाता है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए हम इसको विवाह से पूर्व ा प्रेम कहेंगे। इसमें नायक और नायिका किसी मनोरम स्थान पर—यथा न—उपवन, सर-सरिता के तट पर एक दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं ोर उनमें प्रेम का अकुर उग आता है। 'अभिज्ञान-शाकुतलम' में दुष्यत और कुन्तला का प्रेम ऐसा ही प्रेम है। विक्रमोर्वशी नाटक भी इसी प्रेम का तिपादन करता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम राजाओ के अन्त करण तथा उद्यान मे भोगविलास रूप मे दिखाई देता है, जिसमें सपत्नियो के द्वेष, विदूषकों के हास-परिहास ोर राजाओ की रसिकता का दृश्य होता है। ऐसा प्रेम 'रत्नावली' 'कर्पूर मजरी' प्रेय दर्शिका' आदि सस्कृत के उत्तरकालीन नाटको मे मिलता है।

चौथे प्रकार का प्रेम गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन अथवा स्वप्न-दर्शन आदि से त्पन्न होता है। ऊषा और अनिरुद्ध का प्रेम इसी प्रकार का प्रेम है। इसमे यत्न स्त्री जाति की ओर से होता है और जीवन की समस्त साधना प्रेम मे र्यवसित कर दी जाती है। जीवन प्रेम का ही एक अग बन जाता है।

जायसी का प्रेम चौथी कोटि में आता है। किन्तु जायसी ने उसे उसी रूप

मे नही अपनाया है, अपितु कुछ अपनी विशिष्टताओ के सयोग से उसका रूप और भी मनोरम बना दिया है।

ऊपर मैने बताया है कि इस प्रेम में प्रयत्न स्त्री जाति की ओर से होता है, किन्तु जायसी में प्रयत्न स्त्री अर्थात् नायिका की ओर से न होकर नायक की ओर से हुआ है। जायसी के प्रेम-जगत का नायक रत्नसेन, मजनू और फरहाद जैसा ही नायक है। लैला-मजनू और शीरी फरहाद की प्रेम कहानियो में नायक की प्रेमानुभूति वडे तीव्र रूप में प्रदर्शित की गई है। इन कहानियो से पूर्ण प्रभावित होने के नाते जायसी का नायक रत्नसेन भी सुआ के द्वारा पद्मावती के रूप की प्रशसा सुन उसे प्राप्त करने को लालायित हो उठता है। ......उसके मन में जाग्रत यह लालसा, उसकी प्रथम प्रेमानुभूति को तीव्रतर वना देती है। देखिये जायसी ने उसे किस सुन्दर ढग से व्यक्त किया है—

पद्मावति राजा कै बारी। पदुमगध ससि विधि औतारी॥
ससि मुख अग मलयगिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस बानी॥
हैहि जो पदुमिनि सिंहल मांहा। सुगध सुरूप सो ओहि के छांहा॥

× × ×

हीरामनि जो कँवल वखाना। सुनि राजा होइ भँवर लुभाना॥
आगे आउ पँखि उजिआरे। कहहिं सो दीप पतग के मारे॥
रहा जो कनक सुवासित ठाऊँ। कस न होइ हीरामनि नाऊँ॥
को राजा, कस दीप पतंगू। जेहिरे सुनत मन भयउ पतंगू॥
सुनि सो समुंद चख ये किलकिला। कँवलहि चहौ भँवर होइ मिला॥
कहु सुगध धनि कसि निरमरी। भा अलि सग, कि अव ही करी॥

× × ×

का राजा हौं वरनौ तासू। सिंहल दीप आहिक विलासू॥
घर घर पदुमिनि छति सौ जाती। सदा वसत देवस औ राती॥
उ हि जेहि वरन फूल फूलवारी। तेहि तेहि वरन सुगध सो नारी॥
ग रपसेन तहाँ वड राजा। अछरिन्ह मँह इन्द्रासन साजा॥

सो पद्मावति तेहि करि वारी। जो सब दीप माँहि उजियारी ॥
चहुँ खंड के वर जो ओनाहीं। गरवहि राजा बोलैं नाहीं ॥
उअत सूर जस देखिय, चांद छपै तेहि धूप।
ऐसें सबै जाहि छपि, पदुमावति के रूप ॥

× × ×

सुनि रवि-नांव रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु वाता।
तै सुरंग मूरति वह कही। चित मंह लागि चित्र होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आंइ मन बसी। सब घट पूरि हिये परगसी ॥
अब हौं सुरुज, चाद वह छाया। जल विनु मीन, रक्त विनु काया ॥
किरिन-करा या प्रेम-अंकरू। जो ससि सरग, मिलौं होइ सूरू ॥

सुए के शब्दों मे वर्णित—सूर्य की भाँति रूपवती पद्मावती ने रत्नसेन को अनुरक्त कर लिया, किन्तु प्रेम की प्रगाढ़ता ने उसे स्वय सूर्य और पद्मावती को उसकी छाया चन्द्र बना दिया जिसे प्राप्त करने के लिए वह सूर्य बनेगा।

प्रेमांकुर के प्रगट होते ही प्रेम की अनुपमता भी स्पष्ट हुए बिना न रह सकी—

तीनि लोक चौदह खंड, सबै परै मोहि सूझि।
पेम छाँड़ि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि ॥

प्रेम के पुंजीभूत पवित्र रूप को उसके व्यापक आकार मे समझने के लिए यहाँ पद्मावती के प्रेम विह्वल हृदय का चित्र प्रस्तुत करना अप्रासांगिक न होगा। पद्मावती का मदन-पीडित रूप प्रेम पुजारी जायसी ने अपनी तूली से कितनी कुशलतापूर्वक अंकित किया है, देखते ही बनता है।

एक दिवस पदुमावति रानी। हीरामनि तहं कहा सयानी ॥
सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिन दिन मदन सतावैं आई ॥

उसका यौवन—प्रवाह गंगा की भाँति विशद हो गया है और अंग-अंग से अनंग की ज्वाला फूट रही है।

जोबन मोर भयऊ जस गंगा। देह-देह हम लाग अनंगा ॥

क्यो न हो, विधाता ने उसे अवर्णनीय रूप जो दिया है—

भई ओनत पदुमावति वारी। धज धौरें सब करी सँवारी ॥
जग वेधा तेइ अग सुवासा । भँवर आइ लुवुधे चहुँ पासा ॥
वेनी नाग मलै सिर पीठी । ससि माथे होइ दुइजि बईठी ॥
भौंहें धनुक साधि सर फेरी। नैन कुरगिनि भूलि जनु हेरी ॥
नासिक कीर कँवल मुख सोहा। पदुमिनि रूप देखि जग मोहा ॥
मानिक अधर दसन जनु हीरा। हिये हुलसै कुच कनक जँभीरा ॥
केहरि लक गवन गज हरे। सुर नर देखि माथ भुंइ धरे ॥
जग कोई विस्टि न आवै, आछहि नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी, तप साधहि तेहि आस ॥

सुए के द्वारा पद्‌मावती की रूप प्रशसा सुन रत्नसेन का उसको प्राप्त क के लिए इस तरह आकुल हो जाना आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को नही रुचता। इसे लोभ मात्र कहते हैं। उनके विचार से यह पूर्व राग है ही नही—"जब त पूर्व राग आगे चलकर रति या प्रेम के रूप मे परिणत नहीं होता, तब तक र हम चित्त की कोई उदात्त या गम्भीर वृत्ति नहीं कह सकते। हमारी समझ तो दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिडिया हो या आदमी, किसी पुरुष या स्त्री रूप-गुण आदि को सुनकर चट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करने वा भाव लोभ मात्र कहला सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं।"

आचार्य शुक्ल का यह आक्षेप कुछ उचित नही जँचता, क्योकि जायसी व प्रेम कथा को हम सामान्य कथा मानकर उसका मूल्याकन नही कर सकते। व ब्रह्म और जीव की अनन्त प्रणय—कथा है जिसमे 'प्रेम' से भी पहले 'विर की दशा आ जाती है। इस कथा का रहस्य समझने और उसके प्रति ईमानदा मे अपने विचार व्यक्त करने के लिए हमें अपनी दृष्टि अपेक्षा कृत सूक्ष्म करन होगी तभी वह मर्म को भेद सकेगी। शुक्ल जी का यह कथन भी अतिरजि है कि "तोते के मुंह से पहले ही पहल पद्‌मावती का वर्णन सुनते ही रत्नसे का मूर्छित हो जाना और पूर्ण वियोगी बन जाना अस्वाभाविक सा लगता है। वस्तुत रत्नसेन की 'प्रेम-दशा' क्रमश विकसित हुई है।

क्रिस्टोफर मार्लोव नामक अंग्रेजी कवि और नाटककार ने लिखा है—
"Who ever loved that loved not at first Sight ?"
जिसने प्रथम दर्शन से प्रेम नही किया उसने प्रेम ही नही किया। रत्नसेन को पद्मावती के प्रति अनुरक्त करने के लिए सुआ उसी प्रकार आया था जैसे नल को अनुरक्त करने के लिए दमयन्ती का हँस तथा शिव को अनुरक्त करने के लिए देवगण प्रेरित कामदेव। राम और सीता का भी पूर्व परिचय नही था तथापि उनमे प्रेम हो आया था। वस्तुत आचार्य शुक्ल का अपने निजी नीति और औचित्य का मान दड प्रत्येक स्थान के लिए युक्ति सगत नही बैठता। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनके वियोग मे सतप्त गोपियो की विरह दशा पर भी उन्होने इसी प्रकार का आक्षेप किया है।

जायसी के प्रेम गाथा की दूसरी विशेषता है—फारसी के एकातिक और आदर्शात्मक प्रेम के साथ लोक पक्ष का भी मिश्रण कर देना। पद्मावत के पूर्वार्द्ध में प्रेम का जो स्वरूप है वह एकातिक और आदर्शात्मक है। इस प्रेम मे नायक अथवा नायिका ने जो कठिनाइयाँ सही है, वे सब उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। उन्होंने जो साहस दृढता और वीरता भी दिखाई है वह केवल अपने प्रेम की प्राप्ति के लिए, लोक कर्तव्य का कही उसमे पता तक नही है।

भारतीय प्रेम पद्धति इसके विपरीत होती है। वह लोक सम्बद्ध तथा व्यवहारिक होती है। वह जीवन पर समग्रत छाई रहती है। सामान्य अनुभूति की ईंटो पर उसके भव्य-भवन का निर्माण होता है। वह एक मात्र वैयक्तिक न होकर सार्वजनीन होती है। राम का भालु कपि से मित्रता जोडना, समुद्र पर पुल वाधना तथा रावण से युद्ध करना केवल सीता को प्राप्त करने का एकमात्र प्रयास ही नही कहा जा सकता, वल्कि उसमें लोकरजन के साथ-साथ लोकहित की भी भावना काम कर रही थी। इसे अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें राम के उन शब्दो को याद करना होगा जो उन्होने भूतल भार उतारने के सम्बन्ध में हरण से पूर्व सीता से कहा था—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करिब ललित नर लीला।।
तुम पावक महँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।

इन पंक्तियो से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि लोक पक्ष पर अपेक्षाकृत अधिक रही है। भारतीय कवि होने के नाते जायसी ने भी पद्मावत के उत्तरार्द्ध मे लोक-व्यवहार का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में किया है। राजा रत्नसेन के दिल्ली में बन्दी होने पर, उसकी मृत्यु पर सती होने पर प्रेममार्ग की जिस दृढता और समर्पणशीलता का वर्णन है वह लोक पक्ष समन्वित है।

रत्नसेन के दिल्ली में बन्दी हो जाने का समाचार जब पद्मावती को मिला तो वह बहुत दुखी हुई। सखियो ने जैसे-तैसे उसे समझाया-बुझाया। रानी के चित्त को शान्ति कहाँ। वह पैदल ही गोरा-बादल के द्वार पर गई। कमल के समान चरण कभी पृथ्वी पर नही पडे थे, पैदल चलने से उनमें छाले पड गये। पति बन्दी था, इसलिए रानी को उस चिन्ता में यह दुख कुछ भी न जान पडा। रानी का आना सुनकर गोरा-बादल आश्चर्य में डूबे सहसा घर के अन्दर से निकल पडे। उनकी समझ मे न आया कि क्या मामला है। उन्होने रानी को बैठने के लिए एक सुनहरा सिंहासन रखा पर रानी उस पर न बैठी। उसने विरह कातर स्वरो में अपना निवेदन करना आरम्भ किया—

तुम गोरा बादल खँभ दोऊ। जस भारथ तुम्ह और न कोऊ।।
दुख बिरवा अब रहै न राखा। मूल पतार सरग भई साखा।।
छाया रही सकल महि पूरी। विरह बेलि होइ बाढ़ि खजूरी।।
तेहि दुख केत बिरिख बन बाढ़े। सीस उघारे रोवहि ठाढ़े।।
बिहरा हिये खजरि कबीया। बिहरै नहिं यह पाहन-हीया।।
पिय जहँ बदि जोगिनि होइ धावौं। हौं होइ बदि पियहिं मोकरावौं।।
सूरज गहन गरासा, कवल न बैठे पाट।
महू पथ तेहि गवनब, कत गए जेहि बाट।।

इन पक्तियो मे कवि ने पद्मावती को वडी ही पवित्र और उच्च भाव भूमि पर खडा किया है। हृदय की सवेदन शीलता दर्शनीय है।

इसी प्रकार राजा के योगी होकर घर से निकलने के समय उसकी माता तथा रानी के रो-रोकर रोकने की चेष्टा का वर्णन भी जायसी ने वडे अनूठे और मार्मिक ढग से किया है। पद्मावती से समागम होने पर उसके रस रग का वर्णन तथा विदा होते समय सखियो और परिजनो के स्वाभाविक दुख का वर्णन जायसी की अपनी विशिष्टता लिए हुए है। पद्मावती अपूर्व सुन्दरी है, उसकी समता इस विश्व मे और कोई नही कर सकता; फिर भी वह नागमती से झगडती है।

दुवौ सवति मिलि पाटवईठी। हिय विरोध, मुंह वातें मीठी॥
वारी दिस्टि सुरंग सुठि आई। हँस पदुमावति वात चलाई॥
वारी सुफल आहि तुम्ह रानी। है लाइ पै लाइ न जानी॥
नागेसरि औ मालति जहाँ। सुखद राउ न चाहिअ तहाँ॥
अहा जो मधुकर कँवल पिरीती। लागेउ आइ करील की रीती॥
पहिले फूल कि दहुं फर, देखिअ हिये विचारि।
आँव होइ नेहिठाइं, जाँवु लागि रहि आरि॥

× × ×

अनु तुम कही नीकि यह शोभा। पै फुल सोइ भँवर जइ लोभा॥
सँवरि जावु कस्तूरी चोवा। आँव नो ऊँच, तो हिरदय रोवा॥
तेहिगुन अस भै जावु पियारी। लाई आनि सांझ कै वारी॥
सोकस पराई वारी दूखी। तजै पानि धावहि मुंह सूखी॥
उठै आगि दुइ डारि अमेरा। कौन साथ तेहि वैरी केरा॥
जो देखी नागे सर वारी। लाग मरै सव सुगा सारी॥
जेहि तरिवर जो वाढ़ै, रहै सो अपने ठाऊँ।
तजि केसरि औ कुन्दहि, जांउन पर अँवराऊँ॥

× × × ×

कवल के हिय रोवां तौ केसरि। तेहि नहिं सरि पूजै नागे सरि ॥
जेंह केसरि नहिं उवरै पूंछी। वर पाकरि का वोलहिं छूंछी ॥
जो फर देखिय सोइय फीका। ताकर काह सराहिअ नीका ॥
रहु अपनी तै वारी, मो सौं जूझू न वांझ।
मालति उपम कि पूजै, वनकर खूझा खाझ ॥

सपत्नियो का यह वाक्युद्ध जायसी ने भारतीय पद्धति के अनुसार और लोकपक्ष पर आधारित्त दिखाया है। व्यवहारिक जीवन की झांकी प्रस्तुत की है।

राघव चेतन को जव राजा ने निर्वासन की आज्ञा दे दी, उस समय राज्य के अनिष्ट की आशका से पद्मावती उमे अपना एक कगन दे सतुष्ट कर देना चाहती है। एक रानी के रूप में राज्य के प्रति उसमें जो दूरदर्शिता होनी चाहिए, इम स्थल पर प्रकट होती है।

पद्मावत के उतरार्द्ध में वर्णित ये उपर्युक्त सभी स्थल लोकपक्ष में आते हैं। इनसे हमें पता चलता है कि जायसी के ऊपर भारतीय जीवन, उसकी गतिविधि और प्रेम-परम्परा की गहरी छाप है।

जायसी का प्रेम उच्चात्युच्च भाव भूमि पर स्थित ईश्वरोन्मुख प्रेम है। वह एक नित्य सुन्दर, एक रस एव एकान्तिक आनन्दप्रद पदार्थ है। उसे प्राप्त करने के लिए, प्रेमी को भांति-भांति के कष्ट उठाने पडते हैं। यहां तक कि जान की भी वाजी लगानी पडती है। सूफीमत से प्रभावित होने के नाते जायसी ने प्रेम मार्ग की कठिनाइयो का वडा विशद एव भयकर वर्णन किया है। रत्नमेन रूपी आत्मा पद्मावती रूपी परमात्मा से मिलने की चाह में अनेक कठिनाइयो का सामना वडे धैर्य के साय करती है। परिणाम स्वरूप अन्त में उसे इष्ट की प्राप्ति हो जाती है। लैला-मजनू और शीरी फरहाद की कहा-नियो में जो मिलनोत्कठ, त्याग और प्रेम का चरम उत्कर्ष दिखाया गया है, वह मव हमें जायमी मे उससे भी कही अधिक सशक्त रूप में मिलता है। सयोग-वियोग दोनो पक्षो का वडा ही सुन्दर और हृदयग्राही वर्णन हमें जायसी

पद्मावत में देखने को मिलता है। सारी कहानी को अध्यात्म के रंग में रंगकर मानो कथानक मे कवि ने प्राण प्रतिष्ठा कर दी हो।

अन्त मे डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के शब्दो मे निष्कर्ष रूप में हम यह कहेंगे कि 'जायसी का पद्मावत एकातिक प्रेम की गढ़ और गम्भीर कृति होने पर भी पारिवारिक और सामाजिक जीवन की सुन्दर झांकी प्रस्तुत करता है। यद्यपि सामाजिक जीवन के जो चित्र उत्तरार्द्ध में मिलते हैं उनका अधिक विकास नहीं हुआ; फिर भी यात्रा, युद्ध, सपत्नी-कलह, मातृ-स्नेह, स्वामि-भक्ति, वीरता, छल, कृतघ्नता तथा सतीत्व आदि वृत्तियों का समावेश किया गया है। यह कहना न होगा कि प्रेम का यह एकान्तिक स्वरूप भावात्मक शैली के अन्तर्गत गिना जायगा और पारिवारिक या सामाजिक प्रेम का स्वरूप व्यवहारात्मक शैली के अतर्गत आयेगा। इस प्रकार अब यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी की प्रेम गाथा मे भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है।"

प्रश्न ८—जायसी की तत्कालीन तथा पूर्ववर्ती विभिन्न परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराइए।

प्रत्येक कवि के काव्य तथा उसमे निहित सन्देश और विचार धाराओ पर तत्कालीन एव पूर्ववर्ती विभिन्न परिस्थितियो, यथा—राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक और सांस्कृतिक आदि, का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पडता है। जायसी के कवि और साहित्य पर भी इन सबका अपना प्रभाव है। अस्तु इनकी पृष्ठ भूमि से परिचित होना नितात आवश्यक है, तभी हम जायसी-साहित्य का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे।

राजनैतिक परिस्थिति—हर्ष का साम्राज्य आर्यों का अंतिम सुदृढ साम्राज्य था। उसके अवसान पर देश में अनेक छोटे-छोटे स्वतत्र राज्यो की स्थापना हो गई। उनके शासक योग्य, प्रतिभा सम्पन्न तथा वीर होते हुए भी स्वार्थपरता के नाते राष्ट्रहित की ओर ध्यान नही दे सके। ऐसी ही परिस्थिति मे, नवीन धार्मिक आवेग से अनुरक्त और लूट के लिए लालायित तथा सुसगठित इस्लामी

सत्ता ने भारत में प्रवेश किया। कुछ वीर शासको ने उसका सामना करना चाहा परन्तु आपसी फूट के कारण वे अपने प्रयत्न में असफल रहे। विधाता की दृष्टि भारत के प्रतिकूल तथा विदेशियो के अनुकूल थी। फलस्वरूप उनकी जड़ें जमने लगी और आतक बढ चला। हिन्दुओ के सामने ही उनके मदिर और देवालय गिराये जाते, देवताओ की मूर्तियाँ विनष्ट की जाती और उनकी धार्मिक पुस्तकें जला दी जाती। निरपराध स्त्रियो और बच्चो के साथ अमानुषिक और नृशसता पूर्ण व्यवहार किया जाता। नारियो की इज्जत लूटी जाती और विविध प्रकार से उन्हें अपमानित किया जाता, पर हिन्दू जनता मूक और अन्ध बनी भीतर ही भीतर विष का घूंट पी लेने तथा उससे उत्पन्न व्यथा को सह लेने के अतिरिक्त किसी प्रकार का विरोधी कदम नही उठा सकती थी। जिसने सिर उठाया उसे वही दबा दिया गया या उसका सिर धड से अलग कर दिया गया। दिल्ली सम्राट महाराज पृथ्वीराज अन्तिम हिन्दू राजा हुए जिनके अस्त के साथ भारतीय गौरव और वीरता भी अस्त हो गई। मुसलमानो का भारत पर एकाधिपत्य हो गया।

तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य तक मुस्लिम साम्राज्य यदा-कदा उथल-पुथल के साथ चलता रहा। फिरोज की मृत्यु के बाद तैमूरी आक्रमण ने (१४५५ वि०में) उसकी जडो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सिकदर लोदी ने कुछ सीमा तक स्थिति सभाली किन्तु उसके उत्तराधिकारियो की अयोग्यता से देश के नवाब, राजा तथा सूबेदारो में विरोध और विद्रोह के भाव आ गए। ठीक इसी समय बाबर ने आक्रमण किया। उसे अपने आक्रमण में सफलता मिली, इब्राहीम लोदी बुरी तरह पराजित हुआ। राजपूतो में अभी कुछ वीरता शेष थी। इसलिए १५२७ ई० में राणा सागा के नेतृत्व में उन्होने कनवाहा का प्रसिद्ध युद्ध किया किन्तु विधि के प्रतिकूल होने से बाबर फिर विजयी हुआ। राजपूतो की हिम्मत एकदम टूट गई। चन्देरी के मेदिनी राव ने भी बाबर से लोहा लिया, तत्पश्चात् अफगाना की सम्मिलित शक्ति से १५२९ ई० में घाघरा के मैदान में बाबर को भयकर युद्ध करना पडा। सर्वत्र वह विजयी हुआ। सन् १५३० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। हुमायूँ राज्य के साथ-साथ

ठिनाइयाँ भी उत्तराधिकार में ले गद्दी पर बैठा। राज्य की स्थिति डाँवाडोल ी अस्तु १५३९ मे अफगानो ने शेरशाह के नेतृत्व में पुन धावा बोल दिया। ौसा के युद्ध मे हुमायूं पराजित हुआ और भाग कर ईरान की शरण ली। ससके एक भी भाई ने उसे आश्रय नही दिया। शेरशाह जब तक रहा उसने डा सुन्दर शासन प्रबन्ध चलाया, उसकी मृत्यु के उपरान्त अफगानी शासन भी गमगाने लगा। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि सन् १५५५ ई० में हुमायूं ने अपना खोया हुआ राज्य पुन. प्राप्त कर लिया। मुगल साम्राज्य की जड जम ाई। अब मुगल परदेशी न रह पूर्णत भारतीय बन गये।

इस राजनैतिक उथल-पुथल का प्रभाव जायसी और उनके साहित्य पर पर्याप्त मात्रा में पडा। अपने जीवन के अन्तिम दिनो तक वे इस हलचल से प्रभावित होते रहे और युग के अनुकूल उन्होने अपने साहित्य को दिशा दी।

सामाजिक-परिस्थिति—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इस सत्य से मुँह नही मोडा जा सकता। समाज की गतिविधि से उसका जीवन प्रभावित रहता है। समाज से अलग मनुष्य की सत्ता ही नही है। उसके स्वाभाविक और बहुमुखी विकास के लिए समाज का होना नितात आवश्यक है। इसीलिए अरस्तू (Aristotel) ने कहा है कि "Man perfected by society in the best of all animals; he is the most terrible of all when he lives without law and without justice" अर्थात् **"समाज से रक्षित मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। नियम और न्याय से उच्छृङ्खल मनुष्य अति भयावह जंतु है।"** समाज एक प्रगतिशील और प्राकृतिक सगठन है जिसका आयोजन मनुष्य के उत्तरोत्तर विकास और वृद्धि में सहायक है।

दो समाजो का जब सम्मिलन होता है तो वे परस्पर एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं। विदेशी मुस्लिम समाज ने जब भारत मे प्रवेश लिया तो उसका प्रभाव भारतीय समाज पर पडा और भारतीय समाज का उस पर भी। मुस्लिम समाज विजेता समाज था और भारतीय समाज विजित समाज ; ऐसी

अवस्था में मुस्लिम समाज का मनमाना व्यवहार और अत्याचार भारतीय समाज के साथ चलने लगा। हिन्दुओ के हृदय में राजनैतिक पराभव से भारी भय उत्पन्न हो गया था। विजेताओ के आतक ने उनके धीरज को डगमगा दिया था। हिन्दुओ के सामने अब अपने अस्तित्व का भी प्रश्न था। मुसलमान अपनी सत्ता के साथ जब धर्म प्रचार भी करने लगे तब तो समाज की स्थिति और भी विषम हो उठी। हिन्दुओ में मुसलमानो से लोहा लेने की शक्ति नही थी, और न वे सामाजिक और धार्मिक विद्रोह ही कर सकते थे। अपने धर्म और सामाजिकता पर होते हुए अत्याचार को चुपचाप सह लेने के अतिरिक्त उनके पास और कोई चारा नही था। मुसलमानो में बहुमुखी सकीर्णता थी और हिन्दुओ में इसके विपरीत विशाल उदारता। अस्तु! मुस्लिम-समाज ने राजनैतिक सत्ता की आड में हिन्दुओ की उस उदारता और सरलता का अनुचित लाभ उठाना आरम्भ किया। तात्पर्य यह कि राजनैतिक दासता के साथ हिन्दुओ का सामाजिक पतन भी होने लगा। वे राज्य के शत्रु समझे जाते थे और उन्हे *उच्चाधिकारो से वचित रखा जाता था। अलाउद्दीन ने काजी* मुगीसुद्दीन से कहा था कि **"इस बात का पूर्ण विश्वास रखो कि जब तक हिन्दू निर्धन नहीं हो जायेंगे तब तक वे किसी तरह नम्र और आज्ञाकारी नहीं बनेंगे।"** इस तरह हिन्दुओ की आर्थिक स्थिति निरतर बिगडती गई। अलाउद्दीन से पूर्व की दशा भी बडी ही विषम और करुणाजनक रही है। अलाउद्दीन ने राजनैतिक और सामाजिक सख्ती तो रखी किन्तु धर्म पर आक्षेप विशेष नही किया। इस सख्ती का नतीजा यह हुआ कि सारी जनता रोटी का प्रश्न हल करने में इस तरह उलझ गई उसे विद्रोह का अवसर ही न मिल सका। खुसरो ने हिन्दुओ के प्रति उदार नीति का व्यवहार किया और प्रथम दोनो तुगलको ने भी हिन्दुओ के प्रति कठोरता न दिखाई। फिरोज और सिकन्दर लोदी के समय मे पुन हिन्दुओ की सामाजिकता पर भारी आघात होने लगा।

इस प्रकार दोनो समाजो का तीन-चार शताब्दियो तक सघर्ष चलता रहा। इस बीच विजयी मुसलमानो ने विजित हिन्दुओ की कुछ बातें अपनाई और हिन्दुओ ने भी नए शासको को प्रसन्न करने के लिए, रोटी की समस्या

को हल करने के लिए तथा अपनी सुरक्षा के लिए मुसलमानो की कुछ बातो को अपना लिया। पर्दे का प्रचार चल निकला। सती प्रथा भी थी। समाज में जादू टोना का महत्व बढ़ा। काफी दिनो से एक साथ रहने से परस्पर भाई चारा का सम्बन्ध दृढतर हुआ। अब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना हृदय खोलने लगे। जनता की प्रवृति भेद से अभेद की ओर हो चली। मुसलमान हिन्दुओ की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए और हिन्दू मुसलमानो का दास्तान हमजा। नल और दमयन्ती की कथा मुसलमान जानने लगे और लैला मजनू की हिन्दू। ईश्वर तक पहुँचाने वाला मार्ग ढूंढने की सलाह भी दोनो कभी-कभी साथ बैठकर करने लगे। इधर भक्ति मार्ग के आचार्य और महात्माओ ने भगवत्प्रेम को सर्वोपरि ठहराया तो उधर सूफी महात्माओ ने मुसलमानो को इश्क हकीकी का सबक पढाया। पन्द्रहवी शताब्दी के समाज के रूप में काफी परिवर्तन आ गया था। राजनैतिक वातावरण एकदम शान्त हो गया था और सामाजिक वातावरण में काफी मेल-मिलाप का भाव उत्पन्न हो गया था। हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो ने यह जान लिया था कि हमें अपना जीवन इस भारत वसुन्धरा पर ही व्यतीत करना है। इसलिए अधिक मात्रा में सामाजिक भिन्नता रखने से जीवन निरन्तर दुखमय होने की अपेक्षा सुखमय नहीं हो सकेगा। पन्द्रहवीं शताब्दी के भारतीय मुसलमानो की यह प्रवृत्ति हो गई थी कि वे अपने पड़ोसी हिन्दुओ से मेल-मिलाप करें। हिन्दू बेचारे तो पराजित, असहाय और परवस थे ही। उन्हें जैसे भी रखा जाता वैसे रहने के लिए वे मजबूर थे। मेल-मिलाप की इस प्रवृत्ति को एक ओर हुसेनशाह आदि मुसलमानों ने और दूसरी ओर चैतन्य, रामानन्द, कबीर आदि हिन्दू साधुओ ने बहुत उत्तेजना दी।

सांस्कृतिक-परिस्थिति—भारत अपनी सभ्यता और सस्कृति की प्राचीनता एवं महानता में विश्व का अग्रणी देश है। हमारा ऋगवेद विश्व का प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। यही समस्त कलाओं और विज्ञानो ने जन्म लिया था फिर वे विश्व के अन्य भागों में फैले थे। विदेश से आने वाले यात्रियो ने अपने यात्रा विवरणों में भारत की महानता की ओर पर्याप्त संकेत

किया है। यहाँ का जीवन सादा, पवित्र तथा आडम्बर हीन रहा है। शुद्ध सात्विक सत्याचरण यहाँ की मनुष्यता की कसौटी रहता आया है। यही कारण है कि यहाँ का जीवन विशृङ्खल न हो एक निर्दिष्ट लक्ष्य का पथिक रहा है।

भारतीय प्राचीनता प्रिय होते हुए भी भिन्न-भिन्न जातियो और व्यक्तियों के आचार-विचार तथा धर्म सम्बन्धी विभिन्नताओ को स्वीकार करते हैं। ये विभिन्नताएँ प्रगति और विकास के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य हैं। इसी नाते भारतवासी जाति व्यवस्था के कडे बधन में बधे होने पर भी विभिन्न व्यक्तियो के धर्म, सस्कृति तथा स्वभाव को घृणा या क्षोभ की दृष्टि से नही देखते। फलत मुसलमानो से पूर्व जितनी जातियाँ आईं वे सब यहाँ के वातावरण में घुल-मिल गईं। वे सर्वथा भारतीय बन गईं। भारत ने उनका स्वागत किया, उनके आचार-विचार, धर्म और स्वभाव भारतीय सस्कृति में घुल-मिल गए। सामजस्य भावना भारतवासियों की अपनी भावना रही हैं।

सिन्ध विजय के पश्चात् भारत का इस्लाम से सम्पर्क हुआ। विजयी होकर भी अरबो ने सभ्यता तथा विद्या आदि के लिए भारत के सम्मुख मस्तक झुकाया। भारत की सभ्यता ने उनके लिए अपना कोष खोल दिया। अरबो द्वारा भारतीय सभ्यता का प्रचार समस्त योरप और मिश्र में हुआ। किन्तु जब मुस्लिम सभ्यता के साथ द्वितीय बार सघर्षण हुआ तो उस समय जो विचार इस्लाम धर्म में प्रविष्ट हो चुके थे वे भारतीय होकर भी पराये हो गए। इस बार का मुस्लिम बडा असहिष्णु, कुरान तथा इस्लाम के सिवाय अन्य समस्त पुस्तको तथा धर्मो की आवश्यकता न समझने वाला, विजय की मादकता में विवेकहीन और भारत की सम्पत्ति की 'चकाचौंध से प्राय अन्धा होकर आया था। उसका यह सिद्धान्त था कि विजित जातियों की विचारधारा, आचार-विचार, विश्वास तथा धर्म आदि को भेंट देना चाहिए। इस मुस्लिम विजय ने बडी उथल-पुथल कर दी। हिन्दू धर्म को बडा धक्का लगा, पण्डितो और पुरोहितो का सत्कार उठ सा गया। हिन्दू स्मारक नष्ट कर दिए गये। साहित्य के बिना राजाश्रय के प्रपन्नावस्था को प्राप्त हुआ। एक वाक्य मे यो समझिये कि राजनैतिक पराजय सास्कृतिक मृत्यु प्रतीत होने लगी।

धीरे-धीरे काल की कठोर आवश्यकताओं के साथ दोनों संस्कृतियों का संघर्ष कम हुआ। परस्पर मेल-मिलाप बढ़ा। एक दूसरे को समझने का प्रयत्न चला। कला-कौशल आचार-व्यवहार सब में एक दूसरे की छाप पड़ने लगी। हिन्दुओं के इस काल के मन्दिरों और भवनों में नवीनता का पुट लक्षित होता है। चित्रकला में भी वस्तुकला की भाँति ही नवीनता है। हिन्दू पण्डितों और ज्योतिषियों ने मुसलमानों से अनेक बातें सीखीं। घरेलू व्यवहार, पहनावे, संगीत, मेला, उत्सव तथा दरबारी ढंग आदि पर मुसलमानी प्रभाव अधिक पड़ा।

सामान्यतया बाहरी बातें एक संस्कृति की दूसरी संस्कृति में जो मिल सकती थीं मिलीं। इससे सामाजिक वातावरण में भी काफी शांति आई और परस्पर प्रेम-भावना किसी सीमा तक दृढ़ हुई। पर भारतीय संस्कृति की मूल धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही।

धार्मिक परिस्थिति—भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ प्रारम्भ से ही जीवन, धर्म और दर्शन का समन्वय रहा है। आर्य धर्म में कर्म, ज्ञान और उपासना का महत्वपूर्ण योग था। कालान्तर में कर्मकाण्ड की प्रतिष्ठा बढ़ चली। फिर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जैन और बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। इन धर्मों में अछूतों के लिये विशेष आकर्षण था। राजाश्रय पाकर बौद्ध धर्म का खूब प्रचार रहा किन्तु समय के परिवर्तन ने उसमें भी अवरोध उत्पन्न करना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे इस धर्म का वातावरण भी दूषित हो चला, जिसके फलस्वरूप उसकी पवित्रता से लोगों का विश्वास उठने लगा। दूसरी बात यह भी थी कि बौद्ध धर्म का नास्तिकवाद भारत की प्रकृति के विरुद्ध था और उसकी अहिंसा क्षत्रियों को अरुचि कर थी। ऐसी ही डावाँडोल परिस्थिति में जगत गुरु शंकराचार्य ने बड़ा प्रबल विरोध किया और उसकी धज्जियाँ उड़ा दी। बौद्ध धर्म को भारत में कहीं शरण न मिला। वह पतन मार्ग से पैर सिर पर रख कर भागा। हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हुआ और वेद तथा उपनिषदों की नवीन व्याख्यायें चल पड़ी। इस नवीन हिन्दू धर्म में जैन, बौद्ध आदि सभी

धर्मो का सार तत्व निरूपित था। ईसा की सातवी-आठवी शती में शिव, वि
तथा अन्य देवताओ की पूजा का सारे देश में प्रचार हो गया। भक्ति
महिमा वढ चली।

भक्ति-आन्दोलन—शकराचार्य उत्तरी भारत में अपनी भक्ति का प्रच
कर रहे थे। वे अद्वैत के समर्थक थे। दक्षिणी भारत में रामानुजाचार्य
नेतृत्व मे अद्वैत का विरोधी आन्दोलन उठ खडा हुआ। उन्होने नवधा भ
का वडा ही मनमोहक स्वरुप हिन्दू जनता के समक्ष रखा जिससे वह विस
विमुग्ध हो गई। हिन्दू धर्म में एक नवीन चेतना जागी। हिन्दुओ को अद्
आलम्वन प्राप्त हुआ। दक्षिणी भारत का यह भक्ति आंदोलन शुद्ध हिन्दू
से अनुमोदित था इसलिये वह हिन्दुओ को अपेक्षाकृत अधिक ग्राह्य हुआ। वौ
के दु खवाद से ऊवी तथा राजनैतिक विफलता से त्रस्त जनता भवित की अ
उमड पडी।

रामानुजाचार्य की वैष्णव भक्ति केवल उच्च वर्णो के लिये ही थी,
उसके अधिकारी न थे किन्तु इनके शिष्य रामानन्द ने इस भेदभाव को मि
दिया और उसे समस्त मानव जाति के लिये हितकारी वताया। उन्होने अ
उपदेश की भापा हिन्दी रखी। रामानन्द ने विष्णु के स्थान पर राम
भक्ति का प्रचार किया। भगवान राम की लीलाओ, उनके लोक-रक्षक
तथा भक्तवत्सलता से जनता पूर्ण परिचित थी। इस प्रकार भक्ति मार्ग अ
सुगम हो गया। लगभग इसी समय वारहवी शताव्दी में वृन्दावन में निम्ब
ने वैष्णव भक्ति का प्रचार किया जिनकी रास लीलाओ से जनता का म
रजन हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि चौदहवी शताव्दी तक सम्पूर्ण भा
में भक्ति-भावना पूर्ण रूप से फैल चुकी थी। इस आन्दोलन से प्रादे
भापाओ की उन्नति हुई, जाति वन्धन शिथिल हुए, गार्हस्थ्य जीवन में पवि
आई, स्त्री पद उन्नत हुआ, लोगो में उदारता तथा सहिष्णुता फैली।

इस्लाम और भारत—इस्लाम विश्वास का धर्म है। ईश्वर-प्रेम
अपेक्षा ईश्वर प्रकोप से भयभीत होकर इस धर्म के अनुयायी उसके सन्देशो
विश्वास करते है। इस्लाम की नीव ही इलहाम (ईस्वरी सन्देशो) पर

विद्वान खलीफा हारूँ रशीद ने भारतीय विद्वानो को अपने यहाँ निमन्त्रित कर अनेक दर्शन और अन्य उपयोगी ग्रथ अरबी भाषा में अनूदित कराये थे। इस प्रकार भारत प्रवेश से पूर्व ही इस्लाम पर भारतीय दर्शन और धर्म (विशेषत बौद्ध धर्म) की छाप पड चुकी थी।

६३६ ई० में मुसलमान व्यापारी मालाबार तट पर समुद्र मार्ग से आये। भारतवासियो ने उनका स्वागत किया और अनेक सुविधाये प्रदान की। धीरे-धीरे इन मुसलमानो ने अपना धर्म प्रचार आरम्भ किया। आठवी शती मे मुहम्मद-बिन कासिम की सिन्ध विजय के साथ इस्लाम धर्म सारे उत्तरी भारत में फैलने लगा। सिन्ध विजय के साथ ही 'मुल्तान', तसुव्वुफ का केन्द्र तथा फकीरो का अड्डा बन गया। ये सूफी और फकीर देहातो में फैलकर इस्लाम के प्रचार में जुट गए। वैसे हिन्दुओ को इस धर्म मे कोई आकर्षण नही था परन्तु ग्यारवी शती में जब इस्लाम तलवार के बल पर फैलने लगा तब परिस्थिति विषम और अनियन्त्रित हो उठी। इस्लाम धर्म विजयिनी सत्ता का धर्म था इसलिये उसके प्रचार में सारी शक्ति लगा दी गई। व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रलोभन से कुछ हिन्दू इधर खिच आये। इसके अतिरिक्त अछूत वर्ग की हिन्दू धर्म से असन्तुष्टि ने भी इस धर्म के फैलाने मे काफी सहायता पहुँचाई। अछूतवर्ग इधर आकृष्ट हुआ। तलवार के जोर, प्रलोभन और अछूतो की असन्तुष्टि से इस्लाम का प्रचार हुआ। वैसे स्वेच्छा से बहुत कम लोगो ने इस्लाम को अपनाया।

इस प्रकार कई शताब्दियो तक सघर्ष चलता रहा। कुछ मूलभूत सिद्धातो और उनके व्यवहार में अन्तर विशेष होने के कारण विशाल हिन्दू धर्म भी जिसने बौद्ध धर्म ऐसे महान धर्म को हजम कर 'बुद्ध जी' को अपने अवतारो मे सम्मिलित कर लिया था, इस्लाम को अपने में न मिला सका। किन्तु काफी दिनो के साहचर्य के उपरान्त दोनो में कट्टरता का आग्रह कुछ कम हो गया। मुसलमान भी जान गये कि अब हम पूर्ण भारतीय हैं। सूफियो ने हिन्दुओ की बातें अपने सहधर्मियो तथा अपनी बातें हिन्दुओ को समझाना आरम्भ किया। फलत दोनो एक दूसरे के समीप आने लगे। मजार, दर्शन, मनौती और नजूम

हिन्दू जीवन में घुल-मिल गये। चौदहवी शताब्दी के आग तो नामदेव और नानकदेव की शिक्षाओ मे हिन्दू तथा मुस्लिम विचारो का पूर्ण सामञ्जस्य है। उन्होंने जाति व्यवस्था, वहुदेववाद तथा मूर्ति पूजा की कडी भर्त्सना की और सत्य पवित्र जीवन का उपदेश दिया। रामानन्द और चैतन्यदेव भी साधारण अन्तर से इसी पथ के पथिक वने। तात्पर्य यह कि हिन्दुओ ने इस दिशा में काफी प्रयत्न किया, यद्यपि मकीर्ण विचारो के नाते मुसलमान अपनी सीमा से अधिक आगे नही वढे।

वगाल में गौड के सम्राट हुसेनशाह द्वारा सस्थापित एक सप्रदाय विशेष चला जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनो ही सम्मिलित थे और एक ही देवता 'सत्य पीर' की पूजा करते थे। महाराष्ट्र में भी सतो ने वही काम किया जो उत्तरी भारत में कवीर और नानक ने। पन्द्रहवी शताव्दी तक मुसलमान सूफी और फकीर पूरे पजाव मे फैल चुके थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन तथा मुल्तान आदि सूफियो के प्रसिद्ध केन्द्र वन चुके थे। यही पर सूफी सप्रदाय नाथ पथियो के भी सम्पर्क में आया और उससे अनेक वातें ग्रहण की। इस क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का प्रबल प्रचार हुआ। नानकदेव का प्रमुख ध्येय ही हिन्दू मुस्लिम ऐक्य था। वे किसी एक धर्म या जाति के नही थे वरन समस्त मसार के थे। उनका धर्म नितांत क्रियात्मक, शुद्ध और सूफी सिद्धान्तो के अनुरूप था।

इम प्रकार हम देखते हैं कि रामानन्द के भक्ति मार्ग में, नानकदेव के सिक्ख सप्रदाय में, गोरखनाथ के नाथ-पथियो में, वगाल के सत्यपीर वादियो में, कवीर दादू आदि पथियो में, और महाराष्ट्र के अन्य सतो में हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना कार्य कर रही थी। जाति व्यवस्था की कठोर पावन्दी सवको असह्य हो रही थी तथा "हरि को भजं सो हरि को होई" का प्राधान्य था। वहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ जो अद्वैतवाद से मूलत भिन्न है। गुरु का स्थान लगभग ईश्वर के वरावर ही महत्वपूर्ण समझा गया—

गुरु गोविन्द दोनों खडे, का के लागूं पांय।
वलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया वताय ॥ कवीर ॥

अतः गुरु भक्ति चल पड़ी। गुरु-मुख से उपदेश का महत्व स्थापित हुआ। साधु संतो और फकीरो का महत्व बढा और साथ ही समाधि-दर्शन, झाड़ फूक, नजूम, करामात आदि मे भोली जनता का विश्वास जगा। जन साधारण में सूफी फकीर, कनफटे जोगी, वैष्णव भक्त ही नहीं, अपितु समस्त भगवा वस्त्रधारी व्यक्ति श्रद्धा के पात्र हुए और सत्कार के अधिकारी। सारांश यह है कि सोलहवीं शताब्दी तक प्राचीन धार्मिक तथा सामाजिक बंधन शिथिल पड़ गए थे, ऐक्य ही सबका लक्ष्य था और जनता मे श्रद्धा एवं विश्वास का स्रोत उमड़ पड़ा था।"—(डा० जयदेव)

साहित्यिक परिस्थिति—वीरगाथा काल के समाप्त होने के पहिले ही साहित्य के क्षेत्र में क्रांति आरंभ हो गई थी। मुसलमानो के बढते हुए आतंक ने जनता के साथ साहित्य को अस्थिर कर दिया था। मुसलमानो की शक्ति और धर्म के विस्तार ने साहित्य का दृष्टिकोण बदल दिया था और हिन्दी साहित्य की धारा अपने पुराने उद्याम तथा ओजस्वी वीरगाथात्मक रूप को छोडकर भक्ति की प्रशान्त कलित कविता के रूप में प्रवाहित होने लगी थी। चारणो की रचनायें धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं। राजाश्रय समाप्त होने लगे थे। युद्ध क्षेत्र मे पराजित, और अपनी जनता की रक्षा मे असमर्थ राजाओ की प्रशस्तियाँ अब ये कवि किस मुंह से गाते। निदान साहित्य को राजदरबार छोड जगलो तथा कुटियो मे आश्रय लेना पडा और उसकी मूल धारा ही बदल गई। वस्तुत. वीरगाथा काल के साहित्य मे साधारण जनता के काम की कोई चीज नही थी। इस नाते और भी वीरगाथा कालीन साहित्य अधिक लंबा जीवन न प्राप्त कर सका। विक्रम की चौदहवी शताब्दी तक मुसलमानो का राज्य भारत में पूर्ण रूप से स्थापित हो गया, और अब उनमें यह निश्चित धारणा आ गई थी कि हम भारतीय हैं। हमें अपना जीवन इसी भूमि मे व्यतीत करना है। ऐसी दशा में उन्होंने हिन्दुओ से सानिध्य और उनके जीवन से सामंजस्य स्थापित करने वाले कदम उठाने आरम्भ किये। दोनो ही धर्मो को मानने वाले समझदार व्यक्ति अपने-अपने धर्म ग्रन्थो की खोज बीन करके सिद्धान्तो को प्रकाश मे लाने लगे। उन बातो का प्रचार बढ चला जिनके आधार पर परस्पर मैत्री-भाव

दृढ हो सकता था। इस दिशा में अमीर खुसरो ने बडा सराहनीय कार्य किया। उन्होने जन-साधारण तथा शासको के बीच सहयोग स्थापित कराने के लिए, हिन्दी-फारसी शब्दकोप तैयार किया और उसकी प्रतियाँ सारे देश में बँटवा दी। साथ ही मनोरजन का साधन भी जुटाया। प्रचलित पहेलियो, मुकरियो आदि के अनुकरण पर प्रचलित भाषा में बडी सरस कविता की। उनके द्वारा भाषा का बडा उपकार हुआ। हिन्दी और फारसी दोनो के मिश्रण से उन्होने एक ऐसी भाषा तैयार की जो हिन्दू मुसलमान दोनो को बडी मनमोहक लगी। उनकी यह भाषा खडी बोली का प्रारम्भिक स्वरूप प्रस्तुत करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार उस समय की वास्तुकला तथा सगीतकला में, समाज तथा धर्म में, हिन्दू मुस्लिम आदर्शो के सम्मिलन की भावना कार्य कर रही थी, उसी प्रकार भाषा और साहित्य में भी वही ऐक्य भावना अग्रसर हो रही थी।

इस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य भावना को गति देने में कबीर के काव्य का बडा महत्वपूर्ण योग है। कबीर के अतिरिक्त अन्य सतो ने भी इस दिशा में प्रशसनीय कार्य किया। कबीर ने हिन्दू मुस्लिम मलोमालिन्य मिटाने के लिए कुछ कठोरता से प्रहार किया। वस्तुत उनका काल सक्रान्ति का काल था। राजनीति, समाज और धर्म—सर्वत्र अशाति तथा अव्यवस्था की स्थिति थी। इसीलिए कबीर को सभी दिशाओ में क्रान्ति करनी पडी। उन्होने हिन्दुओ और मुसलमानो, पडितो और पीरो, सिद्धो और फकीरो को उनके पाखड तथा ढोग के लिए बुरी तरह फटकारा, धर्म की मूल बातो की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और इस प्रकार एक ऐसे सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा की जो सबको ग्राह्य हो सकता था। उन्होने हिन्दुओ के तीर्थ व्रत, मठ, मदिर और पूजा आदि की निन्दा की तो मुसलमानो के नमाज और मस्जिद की भी खूब खबर ली और इस प्रकार दोनो की बुराइयो का दिग्दर्शन कराके उन्होने कहा—

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई॥

इसके साथ ही उन्होंने राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन करते हुए बताया 'अल्ला राम की गति नहीं तहँ कबीर ल्यो जाय'—अर्थात् राम-रहीम के विवाद से ऊपर उठकर इनसे परे एक अव्यक्त सामान्य शक्ति या सत्ता की ओर उनका सकेत था। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के आधार पर इस सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा के साथ हिन्दुओ की जाति-पाँति और छूआ छूत का विरोध करके उन्होंने अहिंसा, तप, सत्य, सुजनता तथा अन्य मानवीय गुणो के विकास पर जोर दिया। उन्होंने शुद्ध भाव से अपने सिद्धान्तो और विचारो का प्रकाशन किया।

जहाँ उनकी रचनाओ के साहित्यिक मूल्य का प्रश्न है, तो इस सम्बन्ध में हमें यह न भूलना चाहिए कि उन्होंने मसि-कागद नही छुआ था और न हाथ में कलम गही थी, उन्होंने तो प्रेम का ढाई अक्षर पढा था और उसी से वे पडित हुए थे। उनका काव्य अनुभव तथा सत्सगति एव परिभ्रमण से अर्जित ज्ञान का अक्षय कोष है जो व्यय के साथ बढता जाता है। ऐसी दशा में उनके काव्य को शास्त्रीय कसौटी पर कसना कवि के साथ अन्याय करना होगा। कबीर ने साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही किया हो, किन्तु उन्होंने जो सन्देश दिया है वह इस थोथी मर्यादा से बहुत ऊँचाई पर है। अनपढ और क्रातिकारी कबीर के लिये यही उपयुक्त भी था। कबीर अनेकत्व से एकत्व, भेद से अभेद की ओर ले जाने वाले कवि थे। उनके युग की माँग ही थी—समन्वय, मेल-मिलाप। इसीलिये कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम दोनो के प्रतिबन्धो, असगत विचारो और सिद्धान्तों की कडी भर्त्सना की तथा खिल्ली उड़ायी। वे केवल सत्य और सर्व हितकारी के प्रतिपादक थे, इस नाते वे नीरस लगे। उनके अक्खड व्यक्तित्व ने उन्हें और भी कटु बना दिया। उनकी उक्तियाँ चुभती हुई थी, और उनमे सत्य का प्रकाश था, किन्तु व्यजना तीखी होने के कारण वे सर्व-साधारण को ग्राह्य न हो सकी। उनके प्रहार से लोग तिलमिला उठे। वस्तुत इस समय ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो जनता के व्यथित हृदय को अपने स्नेह-स्पर्श से सुख और शाति पहुँचा सकता, साथ ही उसके जीवन मे आशा,

दृढ हो सकता था। इस दिशा में अमीर खुसरो ने बडा सराहनीय कार्य किया। उन्होने जन-साधारण तथा शासको के बीच सहयोग स्थापित कराने के लिए, हिन्दी-फारसी शब्दकोष तैयार किया और उसकी प्रतियाँ सारे देश में बँटवा दी। साथ ही मनोरजन का साधन भी जुटाया। प्रचलित पहेलियो, मुकरियो आदि के अनुकरण पर प्रचलित भाषा में बडी सरस कविता की। उनके द्वारा भाषा का बडा उपकार हुआ। हिन्दी और फारसी दोनो के मिश्रण से उन्होने एक ऐसी भाषा तैयार की जो हिन्दू मुसलमान दोनो को बडी मनमोहक लगी। उनकी यह भाषा खडी बोली का प्रारम्भिक स्वरूप प्रस्तुत करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार उस समय की वास्तुकला तथा सगीतकला में समाज तथा धर्म में, हिन्दू मुस्लिम आदर्शों के सम्मिलन की भावना कार्य कर रही थी, उसी प्रकार भाषा और साहित्य में भी वही ऐक्य भावना अग्रसर हो रही थी।

इस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य भावना को गति देने में कबीर के काव्य का बडा महत्वपूर्ण योग है। कबीर के अतिरिक्त अन्य सतो ने भी इस दिशा में प्रशसनीय कार्य किया। कबीर ने हिन्दू मुस्लिम मलोमालिन्य मिटाने के लिए कुछ कठोरता से प्रहार किया। वस्तुत उनका काल सक्रान्ति का काल था। राजनीति, समाज और धर्म—सर्वत्र अशाति तथा अव्यवस्था की स्थिति थी। इसीलिए कबीर को सभी दिशाओ में क्रान्ति करनी पडी। उन्होने हिन्दुओ और मुसलमानो, पडितो और पीरो, सिद्धो और फकीरो को उनके पाखड तथा ढोग के लिए बुरी तरह फटकारा, धर्म की मूल बातो की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और इस प्रकार एक ऐसे सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा की जो सबको ग्राह्य हो सकता था। उन्होने हिन्दुओ के तीर्थ व्रत, मठ, मदिर और पूजा आदि की निन्दा की तो मुसलमानो के नमाज और मस्जिद की भी खूब खबर ली और इस प्रकार दोनो की बुराइयो का दिग्दर्शन कराके उन्होने कहा—

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई॥

इसके साथ ही उन्होंने राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन करते हुए वताया 'अल्ला राम की गति नहीं तहँ कवीर ल्यो जाय'—अर्थात् राम-रहीम के विवाद से ऊपर उठकर इनसे परे एक अव्यक्त सामान्य शक्ति या सत्ता की ओर उनका संकेत था। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के आधार पर इन सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा के साथ हिन्दुओं की जाति-पाँति और छूआ छूत का विरोध करके उन्होंने अहिंसा, तप, सत्य, सुजनता तथा अन्य मानवीय गुणों के विकास पर जोर दिया। उन्होंने शुद्ध भाव से अपने सिद्धान्तों और विचारों का प्रकाशन किया।

जहाँ उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्य का प्रश्न है, तो इस सम्बन्ध में हमें यह न भूलना चाहिए कि उन्होंने मसि-कागद नहीं छुआ था और न हाथ में कलम गही थी, उन्होंने तो प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ा था और उसी से वे पंडित हुए थे। उनका काव्य अनुभव तथा सत्संगति एवं परिभ्रमण से अर्जित ज्ञान का अक्षय कोष है जो व्यय के साथ बढ़ता जाता है। ऐसी दशा में उनके काव्य को शास्त्रीय कसौटी पर कसना कवि के साथ अन्याय करना होगा। कवीर ने साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही किया हो, किन्तु उन्होंने जो सन्देश दिया है वह इन थोथी मर्यादा से बहुत ऊँचाई पर है। अनपढ़ और क्रांतिकारी कवीर के लिये यही उपयुक्त भी था। कवीर अनेकत्व से एकत्व, भेद से अभेद की ओर ले जाने वाले कवि थे। उनके युग की माँग ही थी—समन्वय, मेल-मिलाप। इसीलिये कवीर ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों के प्रतिबन्धों, असंगत विचारों और सिद्धान्तों की कड़ी भर्त्सना की तथा खिल्ली उड़ायी। वे केवल सत्य और सर्व हितकारी के प्रतिपादक थे, इस नाते वे नीरस लगे। उनके अक्खड़ व्यक्तित्व ने उन्हें और भी कटु बना दिया। उनकी उक्तियाँ चुभती हुई थीं, और उनमें सत्य का प्रकाश था, किन्तु व्यंजना तीखी होने के कारण वे सर्व-साधारण को ग्राह्य न हो सकीं। उनके प्रहार से लोग तिलमिला उठे। वस्तुतः इस समय ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो जनता के व्यथित हृदय को अपने स्नेह-स्पर्श से सुख और शांति पहुँचा सकता, साथ ही उनके जीवन में आशा,

विश्वास और नवचेतना का सचार कर सकता, सरसता घोल सकता। यह कार्य सूफी काव्यकारो ने सम्पन्न किया।

मुसलमानो को भारत मे आये लगभग आठ शताब्दियाँ बीत चुकी थी जिससे वे हिन्दूओ के जीवन की गतिविधि से पूर्ण परिचित हो चुके थे। इसलिये साहचर्य ने दोनो के सामाजिक और धार्मिक स्वरूप मे काफी परिवर्तन कर डाला। दोनो एक दूसरे को अत्यधिक निकट से परख चुके थे, इसलिए अब वे परस्पर मिल-जुलकर जीवन-यापन करने की श्रेष्ठता के पक्ष मे हो गए थे। शासन मुसलमानी था, इससे मुसलमानो के आमोद-प्रमोद के साथ ही मुसलमानी सिद्धान्तो का प्रचार भी हुआ जो आख्यानक कवियो की प्रेम-गाथाओ में प्रस्फुटित हुआ। प्रेम-गाथाकारो मे प्राय सभी मुसलमान थे, परन्तु इनकी विशेषता यह रही कि इन्होने कहानियाँ हिन्दू राज घरानो से ली। उन्होने जनता की रुचि और शासको के आकर्षण, दोनो का ध्यान रखा। इन कहानियो की सरसता ने मुस्लिम शासको को अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणाम स्वरूप इन कवियो को भी दरबार मे अन्य कलाकारो की भाँति उचित सम्मान मिलने लगा। कहानियो मे शृङ्गार और करुणा को विशेष प्रश्रय मिला। इन कहानियो मे लौकिक कथा के माध्यम से पारलौकिक या परमसत्ता के प्रति इन कवियो ने अपने प्रेम और विरह का वर्णन प्रस्तुत किया। अन्योक्ति का सहारा भी उन्हे इसी नाते लेना पडा। कहानियो के बीच-बीच मे इन सूफी कवियो ने शुद्ध आध्यात्म की बडी सुन्दर व्यजना की है।

कहानियो की भाषा अवध प्रान्त की बोलचाल की भाषा है और उस समय तक विशेष रूप से व्यवहृत छन्द, दोहे तथा चौपाइयो मे इनका निर्माण हुआ है। सभी कहानियाँ प्राय प्रबन्ध काव्यों के रूप मे हैं।

अन्त मे डा० जयदेव के शब्दो मे हम कहेंगे कि "जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न इतने दिनो से भिन्न-भिन्न लोग अपने-अपने क्षेत्र मे अपने-अपने ढग से कर रहे थे, सोलहवीं शताब्दी मे उन समस्त भावनाओ का एकीकरण और भिन्न-भिन्न आदर्शों का सामजस्य वडे ही सरस एव आकर्षक ढग

में सहृदयता पूर्वक उपस्थित करने का इन सूफी फकीरों ने स्तुत्य प्रयत्न किया।"

प्रश्न ६—सिद्ध कीजिए कि पद्मावत फारसी-शैली का एक मनसवी काव्य है।

मनसवी फारसी साहित्य की एक काव्य-शैली है जिसमें सामान्यतया निम्न-लिखित बातो का समावेश रहता है—

१. प्रत्येक पद अपने आप में स्वतन्त्र और पूर्ण तथा तुकांत होता है। एक चरण के शब्द दूसरे चरण में नहीं जा सकते।

२. इसका प्रयोग अधिकतर वर्णनात्मक काव्यो, (यथा प्रेमाख्यान, उपदेशात्मक या धार्मिक) के लिए अधिक सुन्दर समझा जाता है।

३ इस शैली के काव्य के प्रारभ में ईश्वर, पैगम्बर, पैगम्बर के मित्र, कवि के गुरु और सामयिक राजा की प्रशसा रहती है। इसके पश्चात् कवि अपना परिचय तथा कथा का साकेतिक सूत्र बताता है।

४ ग्रथ के खड या विभाग होते हैं फिर ये सर्गबद्ध किये जाते हैं। सर्गों का नाम वर्ण्य विषय के अनुसार रखा जाता है।

५. अन्त में उपसहार होता है जिसमें कवि अपनी रचना का उद्देश्य तथा ग्रन्थ की समाप्ति की तिथि का उल्लेख करता है।

अब हम इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए 'पद्मावत' का परीक्षण करेंगे कि वह फारसी शैली का मसनवी-काव्य है या नही? क्रमश. एक एक बिन्दु को लीजिए।

१. जहाँ तक प्रथम बिन्दु का प्रश्न है पद्मावत का प्रत्येक पद अपने में स्वतंत्र, पूर्ण तथा तुकांत है। यहाँ हम एक अर्द्धाली की ही चर्चा कर रहें हैं जिसको पूर्ण चौपाई के रूप में जायसी ने अपनाया है। मसनवी में भी प्रत्येक दो मिसरे समतुकांत होते हैं। उदाहरण—

मनचिन्ह पिउ कांपों मन मांहा। का मैं कहव गहव जो बांहा॥
बारि वैस गहे प्रीति न जानी। तरुनि भई, मैमंत लुभानी॥

जोवन गरव न किछु मैं चेता। नेह न जानौं साम कि सेता॥
अव सो कत जौ पूछहिं वाता। कस मुख होइहि पीत की राता॥

× × ×

करि सिगार तापँह का जाऊँ। ओहि देखहुँ ठाँवहि ठाँऊँ॥
जौं जिउ मैं तौ उहै पियारा। तन मन सो नहिं होइ निनारा॥
नैन माँह है वहै समाना। देखौं तहाँ नाहि कोउ आना॥

× × ×

पद्मावति सौ कहेउ विहगम। कत लोभाइ रही करि सगम॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कह हिये दुन्द दुख पूरा॥
हमहुं वियाही सँग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ, जानु पर जीऊ॥
मोंहि भोग सो काज न, वारी। सौंह दिस्टि कै चाहन हारी॥

२ पद्मावत एक प्रेमाख्यानक काव्य है। राजा रत्नसेन और पद्मावती की प्रणय-कथा का वर्णन ही इसका केन्द्र विषय है। कथा का प्रारभ मसनवी शैली पर किया गया है और प्रेम का प्रसग भी फारसी प्रेम शैली पर है। पद्मावती के रूप वर्णन से ही राजा मूर्छित हो जाता है। इसके अतिरिक्त विरह वर्णन में भी फारसी शैली के अनुसार प्रेम का काठिन्य दिखाने के लिए कवि औचित्य और स्वाभाविकता की सीमा को लाँघ गया है। रूप वर्णन में भी अतिशयोक्ति का प्रयोक्ति स्वाभाविकता में वाधा डालता है।

उदाहरण—

हिया थार कुच कचन लाडू। कनक कचोर उठे करि चाडू॥
कुन्दन वेल साजि जनु कूदे। अमृत भरे रतन दुइ मूँदे॥
वधे भँवर कट केतुकी। चाहँहि वेध कीन्ह कँचुकी॥
जोवन वान लेहि नहिं वागा। चाहहिं हुलसि हिएँ हठि लागा॥
अगिनि वान दुई जानहु साँधे। जग वेधहिं जौं होहि न वाँधे॥
उतग जँभीर होइ रखवारी। छुइ को सका राजा कै वारी॥
दारिव दाख भरे अनचाखे। अस नारंग दहुँ का कँह राखे॥

राजा बहुत मुए तपि, लाइ लाइ भुंइ माथ।
काहू छुअँ न पारँ, गए मरोरत हाथ ।।

अर्थ—इस पद में तोता राजा से पद्मावती के स्तनो का सौंदर्य वर्णन कर रहा है—

(हृदय रूपी थाल में उसके दो कुच ऐसे हैं जैसे सोने के लड्डू हो, अथवा सुन्दर मोने के दो कटोरे उलटे लगकर उठे हैं। सुन्दर सोनी के बेल खराद पर सजाये हुए हैं, या अमृत से भरे हुए छिपा कर रखें हुए हैं। कुचो के ऊपर जो काली ढेंच होती है उसे दृष्टि में रखकर ज्ञात होता है मानो केतकी फूल के काँटे में काला भोरा बिध गया है और अब चोली को वेधना चाहता है। जवानी का रंग उस पर चढा है, वे वाग नही लेते अर्थात् रोके नही रुकते। अब वे हुलमकर हृदय में लग जाना चाहते हैं, मानो दो अग्नि वाण सधे हुए हैं, यदि बँधे न होते तो सारे ससार को वेध डालते। ये उठे हुए नीबू के समान हैं जिन की रखवाली होती है। यह तो राजा की लडकी या वाटिका है, इसको कौन छू सकता है। इसमे दाडिम (दाँत) और दाख (अधर) अनचखे पडे हुए हैं। तोता कहना है पता नही ये नारगियाँ (कुच) भी किसके लिए रखी हुई हैं। अनेक राजा लोग तपस्या कर कर और पृथ्वी पर माथा रगड़-रगड़ कर मर गए, कोई इसे छू न सका। सभी हाथ मरोरते चले गए)।

—(डा० मनमोहन गौतम) नखशिख खड

सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानहु लहरि सुरुज कै आई ।।
पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई ।।
परा सो पेम समुद अपारा। लहरहि लहर होइ बिस भारा ।।
बिरह भँवर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीव हिलोरहि लेई ।।

—प्रेमखंड

× × ×

जेहि पंछी कहँ अठवौं, कहि सो बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ डहि, तरुवर होइ निपात ।।

—नागमती वियोग-खंड

तँह लगि राज खरग वर लीन्हा । इसकदर जुल करा जो कीन्हा ॥
हाथ सुलेमा केरि अगूठी । जग कहँ जिअन दीन्ह तेहि मूठी ॥
ओ अति गरू पुहुमि मति भारी । टेकि पुहुमि सब सिष्टि सभारी ॥
दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज ।
पातसाहि तुम जग के, जग तुम्हार मुहताज ॥

—स्तुति खड

शाहे वक्त शेरशाह के वर्णन के पश्चात् कवि अपने गुरु का स्मरण करता है जिसने कि उसे पथ सुझाया। बिना गुरु के कोई उसकी दृष्टि में परम प्रियतम को प्राप्त ही नही कर सकता। इस नाते कवि ने गुरु का बडा वक्त ज्ञतापूर्ण वर्णन किया है—

सैयद असरफ पीर पियारा । तिन्ह मोहि पथ दीन्ह उजियारा ॥
लेसा हिए प्रेम कर दीया । उठी जोति भा निरमल हीया ॥
मारग हुत अँधियार असूझा । भा अँजोर सब जाना बूझा ॥
खार समुद्र पाप मोर मेला । बोहित धरम लीन्ह कइ चेला ॥
उन्ह मोर करिअ पोढ़ कर गहा । पाएउँ तीर घाट जो अहा ॥
जा कँह अइस होहि कँडहारा । तुरति वेगि सो पावइ पारा ॥
दस्तगीर गाढे के साथी । जँह अवगाह देहि तह हाथी ॥
जहाँगीर ओइ चिस्ती, निहकलक जस चाँद ।
ओइ मखदूम जगत के, हौं उनके घर बाँद ॥

—स्तुति खड

आगे चलकर कवि ने शेख मुहीउद्दीन के प्रति भी गुरुवत श्रद्धा का प्रदर्श किया है।

गुरु मोहदी खेवक मै सेवा । चलै उताइल जिनकर खेवा ॥
उन्ह सौं मै पाई जव करनी । उघरी जीभ प्रेम कवि करनी ॥
ओइ सो गुरु हौं चेला, निति विनवौं भा चर ।
उन्ह हुति देखइ पावौं, दरस गोसाइँ केर ॥

—स्तुति खड

गुरुओ की चर्चा करने के उपरांत कवि ने अपना परिचय दिया है। इस वर्णन मे सर्वप्रथम उसका ध्यान अपनी कुरुपता की ओर ही गया है। वर्णन में गर्वोक्ति है—

एक नैन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ विमोहा जेइ कवि सुनी॥
चाँद जइस जग विधि ओौतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा॥
जग सूझा एकइ नैनाहाँ। उआ सूक अस नखतन्ह माँहा॥
जौ लहि अवहि डाभ न होई। तौ लहि सुगंध बसाइ न सोई॥
कीन्ह समुद्र पानि जौ खारा। तौ अति भएउ असूझ अपारा॥
जौ सुमेरु तिरसूल विनासा। भा कंचन गिरि लाग अकासा॥
जौ लहि घरी कलक न परा। कांच होइ नहि कचन करा॥
एक नैन जस दरपन, औ तेहि निरमल भाउ।
सब रूपवत पांव गहि, मुख जोवहि कइ चाउ॥

—स्तुति खड

अपना परिचय देने के पश्चात् कवि ने अपने चारो मित्रो का वर्णन किया है। अपना निवास स्थान वताया है और फिर खण्ड के अत में कथा का सार सक्षेप मे कह दिया है।

सन नव सै (सत्ताइस) सैतालिस अहा। कथा आरम्भ बैन कवि कहा॥
सिघलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ आनी॥
अलाउदीं दिल्ली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह वखानू॥
सुना साहि गढ छेंका आई। हिन्दू तुरुकहि भई लराई॥
आदि अन्त जसि कथ्था अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥
कवि विआस रस कौला पूरी। दूरिहि नियर-नियर भा दूरी॥
निअरहि दूरि फूल सँग कांटा। दूरि जो निअर जस गुरु चांटा॥
भँवर आइ वनखड हुति, लेहि कंवल कै वास।
दादुर वास न पावहि, भलेहि जो आछहि पास॥

—स्तुति खड

गया। उसके लास-हास और उल्लास को नारी के लास-हास और उल्लास में देखा गया। साधना की ज्वाला में तप कर निखरी हुई पवित्र आत्मा को अपने में एकाकार कर लेने की ब्रह्म की लालसा तथा एक रूप हो जाने की कामना और उत्सुकता को नारी की कामना और उत्सुकता के रूप में व्यक्त किया गया। लौकिक वर्णनो के बीच मे साधना की इस ऊँचाई पर खडे रह सकना कोई सरल कार्य नही था। इस परीक्षा में अनेक कवियो को असफल होना पडा और कुछ को तो सफलता मिलते-मिलते भी कलक का उपहार स्वीकार करना पडा। हमारे महाकवि जायसी भी ऐसे ही कुछ बदनसीब साधको में से हैं जिन्हे अपनी साधना के क्षेत्र में अधिकाधिक सफलता मिलते हुए भी उक्त कलक का उपहार मिले बिना न रह सका।

जायसी ने जिस काव्य का प्रणयन किया वह फारसी शैली और भाव-भंगिमा से अनुप्राणित था। हाँ कलेवर अवश्य उन्होने भारतीय रखा। अपने सूफी- धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तो और कतिपय मान्यताओ को अपने काव्य में वाणी देने से वे न चूके। भारतीय वाटिका से पुष्प चुन-चुनकर प्रेम की जो माला उन्हेने तैयार की उसमें सभी फूलो को गूंथने के लिए सूफी-सूत्र (धागे) का उपयोग किया। सूफी-सूत्र में पिरोई भारतीय वाटिका के सुन्दर पुष्पो की उस माला से जो सौरभ निकली वह भी भारतीय वायु से प्रेरित न हो फारसी वायु से प्रेरित थी।

फारसी शैली से बुरी तरह प्रभावित होने के नाते जायसी ने शृङ्गार रस के वर्णन मे वहीं की स्थल पद्धति को अपनाया। मिलन-विरह के सभी चित्र फारसी रग-ढग से प्रभावित हैं और उनकी चमक दमक भी फारसी-काति लिये हुये है। इसी नाते कुछ स्थलो पर जायसी ने बडा ही निकृष्ट कोटि का विलास-मय वर्णन किया है जिससे उनकी आध्यात्मिकता को भारी धक्का लगता है। इन स्थलो पर कवि नीति, मर्यादा तथा मानवीय शील की सीमा को पार कर गया है। निश्चय ही ये स्थल कवि की साधना को अपवित्र बनाते हैं। कतिपय स्थल देखिए —

एक दिवस पद्मावति रानी। हीरामन तहँ कहा सयानी॥
सुनु हीरामन कहौं बुझाई। दिन-दिन मदन सतावै आई॥
पिता हमार न चालै वाता। त्रासहिं बोलि सकै नहिं माता॥
देस-देस के वर मोहि आवहिं। पिता हमार न आँख लगावहिं॥
जोवन मोर भयऊ जस गंगा। देह-देह हम लाग अनंगा॥

—जन्म खण्ड

× × ×

हिया थार, कुच कंचन लाडू। कनक कचोर उठे करि चाडू॥
कुन्दन वेल साजि जनु कूँदे। अंम्रित भरे रतन दुइ मूँदे॥
वेधे भंवर कंट केतुकी। चाहहिं वेध कीन्ह कँचुकी॥
जोवन वान लेहिं नहीं वागा। चाहहिं हुलसि हिएँ हठ लागा॥
अगिनि वान दुइ जानहु साँधे। जग वेधहिं जौं होहि न वाँधे॥
उतग जँभीर होइ रखवारी। छुइ को सक राजा कै वारी॥
दारिव-दाख भरे अनचाखे। अस नारंग दहुँ का कहँ राखे॥
राजा वहुत मुए तपि, लाइ-लाइ भुइँ माथ।
काहूँ छुअै न पारे, गए मरोरत हाथ॥

—नखशिख खण्ड

× × ×

कहि सत भाव भएउ कंठ लागू। जनु कंचन सो मिला सोहागू॥
चौरासी आसन वर जोगी। खट रस विदक चतुर सो भोगी॥
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार ओनाई॥
करी वेधि जनु भंवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के वाना॥
कंचन करी चढ़ी जग जोती। वरमा सौं वेधा जनु मोती॥
नारंग जानुँ कीर नख देई। अधर आँवु रस जानहु लेई॥
कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। कुँवहिं कुरलहि जनु सर हंसा॥
रही वसाइ वासना, चोवा चन्दन मेद।
जो अस पदुमिनि रावै, सो जाने यह भेद॥

—पद्मावती-रत्नसेन भेंट खण्ड

हैं। लका रूपी कटि को राजा ने ले लिया और कचनगढ़ रूपी आभूषण छीना झपटी में टूट गए। जो शृङ्गार पद्मावती ने कर रखा था वह सब लुट गया। मस्त यौवन विध्वस हो गया। वह विरह जिसने जीभ को नष्ट कर रखा था विचलित हो गया। अग-अग के भेष सब टूट गए, माँग छूट गई, बाल खुल गए। चोली और उसकी बर्दें सब टूट गई, हार टूट गए और उसके सारे मोती बिखर गए। कान की सुन्दर बालियाँ और टाड टूट गए, बाँह के कगन और चूडियाँ टूट गईं। इन प्रकार गाढ आलिगन किया कि शरीर में लगा हुआ चन्दन छूट गया, बेसर टूट गई और मत्थे की टीका-बिन्दी बिखर सी गई। यौवन रूपी जो नया बसन्त फूलो के शृङ्गार से सजा था उसको जैसे अरगजा को हृदय में लगा कर रत्नसेन ने मल-दल डाला। —डा० गौतम

× × ×

विनति करै पदमावति बाला। सोधनि सुराही पीउ पियाला ॥
पिउ आयसु माथे पर लेऊँ। जो माँगै नै-नै सिर देऊँ ॥
पै पिय बचन एक सुनु मोरा। चाखि पियहु मधु थोरइ थोरा ॥
पेम सुरा सोई पै पिया। लखै न कोइ कि काहू दिया ॥
चुवा दाख मधु सो एक बारा। दोसरि बार होहु बिसँभारा ॥
एक बार जो पी कै रहा। सुख जेंवन, सुख भोजन कहा ॥
पान फूल रस रंग करीजै। अधर-अधर सो चाखन कीजै ॥
जो तुम्ह चाहहु सो करहु, नहि जानहु भल-मंद ॥
जो भावै सो होइ मोहि, तुम्हहि पै चहौ अनंद ॥

—पद्मावती-रत्नसेन-भेंट खण्ड

अर्थ—पद्मावती विनय करने लगी हे प्रिय तू तो प्याले के स्थान पर सुराही भर पीने लगा। आज्ञा तो मैं शिरोधार्य करूँगी और जो आप माँगोगे उसे नम्रता पूर्वक झुक-झुक कर दूँगी। पर हे प्रिय मेरी एक बात सुनिए आप अमृत को थोडा-थोडा ही चखिए। प्रेम की शराब तो वही पीता है कि जिसे कोई देखे न, कि उसे किसने दिया। दाख का मधु तो एक बार ही चू जाता है, दूसरी बार वह बेसँभाल हो जाता है। जिसने एक बार ही सब पी लिया

उसके भोजन में क्या आनन्द है ? पान फूल के रस रग को लीजिए और अधरामृत पान धीरे-धीरे करिए। जो तुम चाहोगे उसे ही करूँगी, यह न विचार करूँगी कि वह अच्छा है, या बुरा, जो तुम्हे अच्छा लगेगा वही मुझे भी प्रिय हो जायेगा, मै तो तुम्हारा ही आनन्द चाहती हूँ। —डा० मनमोहन गौतम

× × ×

भएउ विहान उठा रवि साईं। सखि पँह आईं नखत तराईं ॥
सब निसि सेज मिलै ससि सूरू। हार चीर वलया भे चूरू ॥
सो धनि पान, चून भै चोली। रंग रँगोलि निरँग भो भोली ॥
जागत रैन भएउ भिनुसारा। हिय न सँभार सोवति बेकरारा ॥
अलक भुअंगिनि हिरदै परी। नारँग ज्यो नागिनी विख भरी ॥
लरैं मुरैं हिय हार लपेटी। सुरसरि जनि कालिंदी भेंटी ॥
जनु पयाग-अरइल विच मिली। वेनी भइ सो रोमावली ॥
नाभी लाभी पुन्य की, कासी कुंड कहाउ।
देवता मरहिं कलपि सिर आपुहि, दोख न लावहिं काउ ॥

—पद्मावती-रत्नसेन-भेंट-खण्ड

अर्थ—प्रात. काल होने पर रत्नसेन उठा और सखियाँ पद्मावती के पास आईं। उन्होने आकर देखा कि सारी रात सूर्य और चन्द्र (रत्नसेन और पद्मावती) मिले रहे, इससे हार, चीर और चूडियाँ चूर-चूर हो गए। वह स्त्री पद्मावती पान के पत्ते की भाँति पीली हो गई और उसकी चोली चूर्ण हो गई। वह रग-रँगिया करने वाली भोली—पद्मावती—तेजहीन सी (फीकी) पड़ गई। सारी रात जगते हुए सवेरा हो गया, वह अपने को सँभाल न सकी और बेसुध होकर सोने लगी। उसके हृदय पर बालो की चोटी सर्पिणी के समान पडी हुई है। मानो नारगी (स्तनो) के पास विष से भरी सर्पिणी पडी है। हृदय के हार से लिपट कर वेणी उलझ गई है, मानो गगा जमुना मे मिल रही है। उसके दोनो कुच मानो प्रयाग और अरैल है और उसी के बीच गगा जमुना से मिल रही है। जो रोमावलि नाभि से कुच तक सहसा रूप में आ रही है वह

सच-सच कहना, ऐसा कहकर सब सखियाँ पूछताछ करती हुई उसके पीछे पड़ गईं। —डा० गौतम

× × ×

इस प्रकार के और भी कई स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें घोर शृङ्गारिकता अथवा विलासमयी भावनाओ को वाणी दी गई है। ये वर्णन जायसी की आध्यात्मिक कथा को भारी ठेस पहुँचाते हैं। प्रेम का यह अश्लील उत्कर्ष फारसी साहित्य के लिए प्रशसनीय हो सकता है, परन्तु भारतीय-साहित्य व नीति में इसे बहुत ऊँचा स्थान नही दिया जा सकता। वैसे इस बात से भी कोई मुख नही मोड सकता कि यह भी मानव-जीवन का कठोर सत्य है, फिर नैसर्गिकता के साथ कृत्रिम नियमो की मर्यादा क्यो? सत्य का उद्घाटन होना चाहिए और अवश्य होना चाहिए। मानव अपने जीवन के सत्यो से ही यदि अनवगत रहा तो उसकी साधना में गहराई न आ पायेगी और फिर जायसी ने तो इन सबका बडा कलात्मक चित्र उपस्थित किया है जिससे विशुद्ध कला (साहित्यिकता) की उन्नति ही हुई है। अस्तु वे उतने दोषी नही, और जीवन के दोष गुणो से परे कवि के मच पर तो बिल्कुल ही दिर्दोष हैं (तथा इन सबसे आगे उनकी साधना का चरम उत्कर्ष तो कुछ और ही है)। फिर भी ऐसी उच्छृङ्खल कला भारतीय साहित्य और समाज के लिए आदरणीय नही हो सकती।

जायसी के साथ ही अन्य हिन्दी सूफी कवियो के काव्यो से भी कुछ ऐसे ही स्थल यहाँ उपस्थित करना हम अधिक अप्रासगिक नही समझते हैं। उनके प्रकाश में भी इस प्रसग को समझने में सहायता मिलेगी। कतिपय स्थल देखिए—

तीन पहर सुख कै दुख मेटा।
चौथ पहर करवट कै लेटा।

तब—

तब बोली पुहुपावति रानी।
मुसकिआइ अम्रित मुख बानी।

ए पिव तुम्ह निपट निरदई।
अब काहे कीन्ही निठुरई।
ऐसन करी जो हाल हमारी।
जनु हम वैरिनि रही तुम्हारी।
सांसति कै सब साज नसावा।
जनु हम किछु तोहार चोरावा।
दुख देह बहुत सतावो जीऊ।
तुम अपने सुख कारन पीऊ।
ता ऊपर सोए देइ पीठी।
काहे करहु नसत मुख दीठी।

अब तौ एक घरीनि की मोंहि बांधेहु जंजाल।
अब फिरि सोए पीठी दै, कौन चतुरई लाल॥

× × ×

फिरि कै कुंवर नारि उर लाई।
एकर उतर दीन्हे मुसकाई।
जौ न रही तै वैरिनि मोरी।
काहे लीन्हे मनचित चोरी।
प्रेम फांस माला गर लाई।

—पुहुपावती

'चित्रावली' में उसमान लिखते हैं—

लै सुजान तव अंक मे लाई।
घूंघुट खोलि रुप अस देखा। सो देखा जोहि सीस सुरेखा॥
अधर घूंट सो अम्रित पीया। जेहि के पियत अमर भा हीया॥
राहु गरास कलानिधि कांपा। लोयन पल आनन पट झांपा॥
पुनि मनमय रति फागु संवारी। खोलि अछूत कनक पिचकारी॥

रग गुलाल दोउ लै भरे। रोम तन मोती झरे।
सेद, थंम, रोमाच तन, आसु पतन सुर भग।
प्रथम समागम जो कियो, सीतल भा सब अग ॥

—चित्रावली पृष्ठ १०४ १०

सूरदास लखनवी लिखते हैं—

प्रथम अधर सो अधर मिलाई,
मानौं अहै खेल पर आई।
× × ×
प्रीतम केलि धमार लगाई,
घन कुहुकी होई निरत मचाई।

—नलदमन पृष्ठ ९५

आगे लेखक दमयती के माता-पिता का सभोग वर्णन देता है—

विहंसत कत सेज पर गयऊ।
भर अँकवन गहि कठ लगाई। रहस दसन धनि बीच दिखाई ॥
उपजै काम कथा दुहुँ ओरा। मिलि गए एक-एक उठै घनघोरा ॥
श्रम जल बूंद झमक जह परी। पग बेनी चातुरू रति करी ॥
नेवर मोर ऊँच कुहुकाएँ। छवर कठ झींगुर झनकाएँ ॥
पौन हिलोर उठै झकझोरा। झूलै दोउन केलि-हिंडोरा ॥
माझ प्रकट आयो चौमासा। जवत छुर भए आक जनासा ॥
तरनी जोबन समुद मँह, नाभि सीय जहँ भाँत ॥
स्वाती बूद आवा यहै, हँस हिरदै मैं साँत ॥

—नलदमन पृष्ठ ३१

दुखहरन दास लिखते हैं—

घूंघट खोलि अधर रस चाखा। मैन पियासा रहै न राखा ॥
कचूक खोलि के अक मिलायो। काँपो अग उमग बढ़ावो ॥

नौबत बाजै लागु नगारा। बिछिया घूंघुर झांझ नकारा ॥
मैन भंडारा जाय उघारा। लेइ कुंजी जनु खोला तारा ॥

—पहुपावती पृष्ठ ३०८

एक दूसरा चित्र दुखहरन दास देते हैं—

अधर से अधर मधुर रस लीन्हा। हिय से हिया लाइ सुख दीन्हा ॥
कर से कर, भुज से भुज गहा। नैन से नैन निरखि छवि रहा ॥
पेट से पेट लंक से लंका। होइ एक सुख प्रेम के अंका ॥
जांघ से जांघ पाउँ से पाऊँ। सीस से सीस मिलावा राउँ।
एहि विधि छत्तीस आसन भोगी। औ चौरासी आसन जोगी ॥
कोक कला कै काम नेवारा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सभी कवि सभोग के चित्रण मे मर्यादा को छोड देते हैं और स्वच्छन्द होकर वर्णन करने लगते हैं। जायसी ने भी ऐसा ही किया—वे भी मर्यादा को भूल गए और जिधर घूमे उधर वर्णन करते चले ही गए। यह ठीक है कि सूफी-भावना मे इसे ही चरम उत्कर्ष की सज्ञा मिलती है किन्तु ये वर्णन अश्लीलता से मुक्त नहीं कहे जा सकते। इन वर्णनो में पवित्रता का रचमात्र भी आभास नही है। बरबस इनमे आध्यात्मिकता के दर्शन करना कवित्व की हत्या कही जायगी। इन्हीं स्थलो को दूसरे प्रकार से चित्रित किया जा सकता था जिनमे न रस-विरोध होता और न उत्कर्ष में कोई कमी। साथ ही साथ आध्यात्मिक साधना की पवित्रता भी बनी रहती पर जायसी ने वैसा नही किया और अपनी परम्परागत लकीर पर ही चलकर ऐसा घोर शृङ्गारिक एव पार्थिव वर्णन किया जिससे उनकी आध्यात्मिकता को धक्का पहुँचा।

अस्तु निष्कर्ष रूप मे अब हम कहेंगे कि जायसी के इन अत्यधिक विलास-मय वर्णनो ने उनकी आध्यात्मिकता के चित्र को अस्पष्ट कर दिया है जो जायसी जैसे साधक और महाकवि की कला मे खलक सा प्रतीत होता है।

प्रश्न ११—'पद्मावत के सयोग-शृङ्गार की सजीवता मे किसी भी सहृदय को विभोर कर देने की पर्याप्त क्षमता है।' स्पष्ट कीजिए।

प्रेम की पीर के अमर गायक कविवर जायसी का पद्मावत शृङ्गार प्रधान काव्य है। वैसे अन्य रसो का भी उसमें यथास्थल समावेश हुआ है किन्तु सम्पूर्ण काव्य में शृङ्गार रस ही प्रमुख रूप से रम रहा है। शृङ्गार रस के सयोग और वियोग दो मुख्य भेद होते हैं। पद्मावत में इन दोनो रसो को उचित प्रश्रय मिला है। जायसी वियोग पक्ष का जितना मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, उतना सयोग पक्ष का नही। इसका प्रधान कारण यह है कि सूफियो के प्रेम में विरह को प्रमुखता दी जाती है। उस परम प्रियतम से भिन्न जीवात्मा तथा सम्पूर्ण प्रकृति की उससे मिलने की उत्कठा और व्याकुलता विरह रूप में ही चित्रित हुई है। इस अलगाव या विरह से सारी सृष्टि व्यथित है। सभी उस महामिलन के अभिलाषी हैं। सूफी काव्यो में इस पक्ष की बडी विशद विवेचना की गई है। सयोग पक्ष का भी वर्णन सूफी कवियो ने किया है और सुन्दर वर्णन किया है—उसमें पर्याप्त रमणीयता है किन्तु इस पक्ष का अपेक्षित सागोपाग विवेचन नहीं हो पाया है। फारसी शैली के प्रभाव और तीव्र आध्यात्मिक झुकाव ने रस-भग उपस्थित कर दिया है। कही-कही तो वर्णन बडा ही स्थूल और निकृष्ट कोटि का हो गया है जिससे कवियो की महानता को भारी धक्का भी पहुँचा है। हमारे कविवर जायसी में भी उपर्युक्त सभी गुण-दोष पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। यदि वे फारसी शैली से बुरी तरह प्रभावित न होते और आध्यात्मिकता की झलक बरबस स्थान-स्थान पर देने का दुराग्रह न करते तो उनका शृङ्गार वर्णन (सयोग-शृङ्गार) अधिक स्वाभाविक और उत्कृष्ट रूप में निखर सका होता। फिर भी जायसी के सयोग वर्णन की रमणीयता और सजीवता को अस्वीकार नही किया जा सकता। यह ठीक है कि अन्य सूफी कवियो की भाँति जायसी को भी रस शास्त्र का ज्ञान नही था और इसी कारण वे उसका साँगोपाँग विवेचन नही कर सके तथापि उन्होने ऐसे स्थलो पर मनोहर वातावरण का सृजन किया है जो लौकिक सौन्दर्य के साथ-साथ पारलौकिक सौन्दर्य का भी भान कराता है। भौतिक प्रणय के द्वारा

उन्होंने लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि की और अन्त तक उसमें लगे रहे, यह सभी स्वीकार करते हैं।

'पद्मावत' की कथा रत्नसेन और पद्मावती तथा नागमती को लेकर चलती है। सयोग शृङ्गार के लिए नागमती और पद्मावती दोनो महत्वपूर्ण हैं। डा० रामरतन भटनागर के शब्दो मे 'साधना की दृष्टि से नागमती और पद्मावती में चाहे जो अन्तर हो, साहित्य की दृष्टि से कोई अन्तर नही है। दोनो रत्नसेन की प्रिया हैं। जहाँ तक नागमती और रत्नसेन के सयोग का प्रश्न है इसका वर्णन केवल एक स्थल पर आया है—जब रत्नसेन सिंहल से लौटकर नागमती के पास जाता है। परन्तु वस्तुत वह मिलन भी पूर्ण मिलन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमे अधिकाश नागमती द्वारा मान-प्रदर्शन और सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ही व्यक्त हुआ है। देखिये—रात्रि मे रत्नसेन जब नागमती के कक्ष में पहुँचता है तो—

नागमती मुख फेरि बईठी। सौंह न करै पुरुख सौं डीठी॥

और उससे कहती है—

ग्रीखम जरत छाडि जो जाई। पावस आव कवन मुखलाई॥

तथा—

काह हँसौ तुम मो सौं, किएउ और सौं नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोंहि मुख बरिसै मेह॥

सपत्नी पद्मावती के प्रति यह ईर्ष्याभाव तथा पति रत्नसेन के प्रति यह व्यग भरा प्रेम बिल्कुल स्वाभाविक है, किन्तु सयोग का माधुर्य यहाँ नष्ट हो गया है। रत्नसेन का यह कहना—

"नागमती तू पहिल बियाही। कठिन प्रीति दाहै जस दाही॥
बहुतै दिनन आव जो पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ॥
काह भएउ तन दिन दस दहा। जो बरखा सिर ऊपर अहा॥"

तो वातावरण को और भी हल्का कर देता है। रत्नसेन का यह सारा कथन उसका फुसलाना प्रतीत होता है। संयोगकालीन मधुमय वातावरण की सृष्टि में इनसे कोई योग नही मिलता, किन्तु कवि जब आगे कहता है—

यहाँ पर जायसी का कवि जागा है, जिसने साहित्य और मनोविज्ञान को एक साथ वाणी प्रदान की है। वस्तुत इस वर्णन के शब्द-शब्द में जीवन डोल रहा है।

इसके उपरान्त विवाह होता है और विवाह के बाद पद्मावती-रत्नसेन के मिलन का आयोजन। ऐसे अवसर के उपयुक्त जायसी ने पहले कुछ विनोद का विधान किया है। सखियाँ पद्मावती को छिपा देती हैं और रत्नसेन मिलने को आतुर होता है। सखियो ने शायद ऐसा कुछ छेड-छाड करने के उद्देश्य से ही किया था। परन्तु इस विधान में जायसी को सफलता नही मिली है। **"विनोद का कुछ भाव उत्पन्न होने से पहिले ही रसायनियों की परिभाषायें आ दबाती हैं। सखियों के मुख से 'धातु कमाय सिखै तौं योगी' सुनते ही राजा भी धातुवादियों की तरह वर्णने लगता है जिसमे पाठक या श्रोता का मन कुछ भी लीन नहीं होता।"** ऐसा जायसी ने अपनी बहुज्ञता प्रदर्शित करने के लिए ही किया। फिर भी कुछ ऐसे स्थल-विशेष को छोडकर जायसी ने कई रसपूर्ण स्थल भी प्रदान किए हैं। देखिए पद्मावती जिस समय शृंगार करके राजा के पास जाती है उस समय कवि कैसा मनोहर चित्र खडा करता है—

साजन लेइ पठावा, आयसु जाय न मेट।
तन, मन, जोवन साजि कै देइ चली लेइ भेंट॥

इस दोहे में *तन, मन* और *यौवन* तीनो का *अलग-अलग* उल्लेख बहुत ही सुन्दर है। मन का साजना क्या है? समागम की उत्कण्ठा या अभिलाषा। विना इस मन की तैयारी के तन की सब तैयारी व्यर्थ हो जाती। देखिए, प्रिय के पास गमन करते समय कवि परम्परा के अनुसार शेष-सृष्टि से चुनकर सौंदर्य का कैसा सचार कैसी सीधी-सादी भाषा मे किया गया है—

पदमिनि गवन हस गए दूरी।
कुंजर लाज मेल सिर धूरी॥
वदन देखि घटि चँद समाना।
वसन देखि कै बीजु लजाना॥

खजन छपे देखि कै नैना।
कोकिल छपी सुनत मधु बैना॥
पहुँचहि छपी कँवल-पौनारी।
जांघ छपा कदली होइ वारी॥

इस प्रकार जायसी पहले तो सौंदर्य के साक्षात्कार से हृदय के उस आनन्द सम्मोह का दर्शन करते हैं जो मूर्छा की दशा तक पहुँचा हुआ जान पडता है। फिर राजा अपने दुख की कहानी तथा प्रेम मार्ग में अपने ऊपर पडे संकटों का वर्णन करके प्रेम मार्ग की उस सामान्य प्रवृत्ति का परिचय देता है जिसके अनुसार प्रेमी अपने प्रियतम के हृदय में अपने प्रति दया या करुणा का भाव जाग्रत करने का प्रयत्न किया करता है।

जायसी को हावों की सुन्दर योजना प्रस्तुत करने मे असफलता मिली है। हां पद्मावती के स्वभाव सुलभ कुछ अनुभावो का वर्णन अवश्य सुन्दर प्रस्तुत किया है। तदुपरि कवि ने दोनो का मिलन कराया है जिसमे पर्याप्त सरसता है।

कहि सत भाउ भएउ कँठ लागू। जनु कंचन सो मिला सोहागू।
चौरासी आसन वर योगी। खट रस विदंक चतुर सो भोगी॥
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चम्पा गहि डार ओनाई।
करी वेधि जनु भँवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के वाना॥
कंचन करी चढी नग जोती। वरमा सों वधा जनु मोती॥
नारंग जानु कीर नख देई। अवर आंवु रस जानहु लेई॥
कौतुक केलि करहि दुख नंसा। कुंदहि कुरलहि जनु सर हंसा॥
रही वसाइ वासना, चोवा चँदन मेद।
जो अस पदुमिनि रावं, सो जानै यह भेद॥

× × ×

कहाँ जूझि जस रावन रामा। सेजि विधंस विरह संग्रामा॥
लीन्ह लंक, कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥

ओ जोबन मैमंत विघसा। विचला बिरह जीव लै नंसा॥
लूटे अग अग सब भेसा। छूटी मग, भग भे केसा॥
कचुकि चूरि, चूर भै ताने। टूटे हार, मोति छहराने॥
बारी टाड सलोनी टूटी। बाहूँ कगन कलाईं फूटीं॥
चदन अग छूट तस भेंटी। वेसरि टूटि, तिलक गा मेटी॥
पुहुप सिगार सँवारि जो, जोबन नवल बसत।
अरगज जेउ हिय लाइ के, मरगज कीन्हें कत॥

× × ×

इसमें सन्देह नही कि वर्णन में घोर अश्लीलता के साथ निकृष्टता भी है तथापि उसकी सरसता से अस्वीकार नही किया जा सकता। प्रस्तुत प्रश्न में सरसता का परिचय प्राप्त करना मात्र ही हमारा लक्ष्य भी है। वर्णन लौकिक पक्ष में ही अधिक घटता है, इसी नाते आलोचक को यहाँ बडी कठिनाई का सामना करना पडता है कि वह किस पक्ष का समर्थन करे। अतत आचार्य शुक्ल के शब्दो में मै तो यही कहूँगा कि इस विलासिता के बीच-बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है। राजा जिससे मतवाला हो रहा है वह प्रेम की सुरा है जिसका वर्णन सूफी शायरों ने बहुत किया है।

सुनु धनि! प्रेम-सुरा के पिये। करन-जियन-डर रहे न हिए।
जेहि मद तेहि कहा ससारा। की सो घूमि रहु की मतवारा॥
जाकह होइ वार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु ओहो चाहा।
अरथ दरब सो वेह वहाई। की सब जाहु, न लाइ पियाई॥

अन्त में लेखक ने निम्न मधुर शब्दो के साथ इस मिलन प्रसग को समाप्त किया है —

आजु मरम मैं जाना सोई। जस पियार पिउ और न कोई।

कवि का यह वर्णन आध्यात्मिकता के रग से रगा होते हुए भी काफी सरस और सजीव है जो किसी भी सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखता है।

इसी प्रकार कवि ने षटऋतु वर्णन खण्ड में भी बड़े ही सरस और हृदय ग्राही स्थल प्रस्तुत किए हैं। एक उदाहरण देखिए।

पद्मावती चाहति ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सोहाई।
चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना॥
रंग राती पीतम सँग जागी। गरजे गगन चौंकि गर लागी।
सीतल बूँद ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाइ ससारा॥

राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती का पावस की शोभा का कैसा सुखद अनुभव हुआ है। ऐसे ही अन्य ऋतुओं का भी वर्णन (यद्यपि सभी उन्ही के रूप में ही हैं तथापि) बड़ा ही हृदयग्राही है।

अस्तु अब हम निष्कर्ष रूप मे यह कहेगे कि जायसी के पद्मावत के संयोग शृङ्गार की सजीवता मे किसी भी सहृदय को विभोर कर देने की पर्याप्त क्षमता है। यद्यपि जायसी मूलत वियोग के कवि हैं तथापि संयोग वर्णन में भी जीवन डाल देने की कला वे खूब जानते हैं। यह दूसरी बात है कि उन्होंने अपने सयोग-वर्णनो को अपेक्षित निखार नही दिया है, फिर भी उनकी सरसता और सजीवता तो स्तुत्य है ही। पता नही संयोग की इस व्यापक भाव-भूमि मे उतरने का कवि ने उतना विस्तृत विधान क्यों नही किया।

प्रश्न १२—"पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुए भी रसात्मक है।" पद्मावत के सम्बन्ध-निर्वाह को ध्यान में रखते हुए इसका विवेचन कीजिए।

पद्मावत की कथा के इतिवृत्तात्मकता से उसके ऐतिहासिक आधार और रसात्मकता से स्थूल रूप में उसके काल्पनिक आधार की ओर ही सकेत मानना चाहिए। सामान्यतया पद्मावत की कथा को हम इन्ही दो भागो मे विभाजित भी करते हैं १. ऐतिहासिक और २. काल्पनिक। ग्रथ का उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया है और पूर्वार्द्ध पूर्णतया काल्पनिक आधार पर। इतिहास और कल्पना के इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम हमें उसके कथा-क्षेत्र में उतरना पड़ेगा। पद्मावत की कथा इस प्रकार है :—

गधर्वसेन सिंहलदीप का राजा था और चम्पावती उसकी रानी। चम्पा-वती के एक सतान हुई जिसका नाम पद्मावती रखा गया। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। साथ ही साथ पढने मे काफी दक्ष भी। पाँच वर्ष की आयु में ही वह बहुत कुछ पढ गई। जब वह ग्यारह वर्ष की हुई तो सातखड के एक महल में अलग रहने लगी। उसके साथ उसकी कुछ सखियाँ भी रहती थी और हीरामन नाम का एक तोता भी। तोता देश विदेश का घूमा हुआ और अत्यन्त ही पडित था। पद्मावती उसे बहुत ही प्यार करती थी।

धीरे-धीरे पद्मावती वयस्क हुई परन्तु वैभव के गर्वीले राजा ने उसका व्याह नही किया। पद्मावती को इससे बडा दु ख हुआ। वह चिंतित रहने लगी। एक दिन उसने हीरामन से अपने काम पीडित मन की व्यथा कही। इस पर हीरामन ने उसे सात्वना दी और कहा कि वह उसके योग्य वर ढूँढेगा, उसे मुक्त कर दिया जाय। जब तक वह लौटकर नही आता पद्मावती को धैर्य धारण करना पडेगा। कोई दुर्जन इस बात को सुन रहा था। उसने राजा से सारी बात जाकर कह दी। राजा बडा क्रुद्ध हुआ। उसने वधिको को तोता मार डालने की आज्ञा दी। परन्तु पद्मावती ने किसी प्रकार छिपाकर उसके प्राण बचा दिए। वधिको के लौट जाने पर हीरामन ने पुन बाहर जाने का आग्रह किया किन्तु प्रेम के कारण पद्मावती ने उसे आज्ञा नही दी। सयोगवश पूर्णिमा को पद्मावती मानसरोवर में अपने सखियो के साथ स्नान करने गई। वहाँ वह जलक्रीडा में मग्न हो गई। इधर हीरामन पिंजडा तोड बाहर उड गया और जगल में स्वतन्त्र पक्षियो के साथ रहने लगा। एक दिन एक बहेलिये ने उसे पकड लिया और झाबे में रखकर ले चला।

× × ×

चित्तौड में राजा चित्रसेन राज करता था। उसके रत्नसेन नाम का एक पुत्र था। ज्योतिपियो ने बताया था कि वह पद्मिनी से विवाह करेगा, सिंहल-दीप जायेगा। राजा चित्रसेन की मृत्यु के उपरान्त रत्नसेन गद्दी पर बैठा।

एक ब्राह्मण भी था। बनिये ने वहाँ अनेक वस्तुएँ खरीदी। ब्राह्मण ने हीरामन सुए को ही पडित देखकर खरीद लिया। चित्तौड लौटने पर इन सबन अपनी-अपनी वस्तुएँ राजा रत्नसेन के हाथ बेच दी। हीरामन रत्नसेन के रनिवास में रहने लगा। एक दिन जब रत्नसेन आखेट को गया हुआ था, उसकी रानी नागमती ने हीरामन से सगर्व पूछा "तोते! सच-सच बतलाओ क्या मुझ जैसी सुन्दरी इस संसार मे और भी कोई है?" हीरामन ने हँसकर कहा, "रानी सिंहलदीप की पद्मिनी तुमसे कहीं अधिक सुन्दरी है। उसके सौन्दर्य-लावण्य-प्रकाश के सम्मुख तुम रात्रि के समान हो।" यह सुनकर नागमती बहुत घबराई। उसे यह आशका हुई कि कही तोता पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य की चर्चा राजा से न कर बैठे, और राजा पद्मिनी के रूप पर मुग्ध हो उसे प्राप्त करने चल पडे, फिर मुझे पिय-वियोग का दुःख उठाना पडे। इसलिए उसने तोते को एक धाय के सिपुर्द कर दिया कि वह उसे मार डाले, किन्तु धाय ने उसे मारा नही अपितु छिपा दिया। राजा ने लौटकर तोता माँगा। नागमती झूठ न बोल सकी। अन्तत तोता फिर राजा को मिल गया। राजा ने तोते से पद्मावती का रूप तथा नखशिख वर्णन करने को कहा। तोते ने विस्तार में सब बताया। राजा पद्मावती के लिए बेचैन हो उठा, उसे मूर्छा आ गई। अन्त में वह हीरामन के नेतृत्व मे सोलह हजार कुंवरो के साथ योगी होकर उसे प्राप्त करने के लिए सिंहलदीप चल पडा और मार्ग के अनेक कष्टो को झेलते हुए वहाँ पहुँच ही गया। सिंहल पहुँचने पर नगर के बाहर ही महादेव के मडप पर ही तोते ने राजा को रोक दिया और उससे कहा कि एकाग्रचित्त से प्रतीक्षा करो माघ पचमी के दिन पद्मावती यहाँ महादेव जी की पूजा करने आयेगी तब तुम उसका दर्शन पा सकोगे। तदुपरि वह पद्मावती के पास चला गया। राजा पद्मावती के ध्यान मे मग्न हो गया।

हीरामन ने जाकर पद्मावती से रत्नसेन के गुणो की बडी प्रशसा की जिसे सुनकर पद्मावती अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह बसन्त पचमी के दिन तोते के कथनानुसार मन्दिर में गई और रत्नसेन को देखा। रत्नसेन को उसने वैसा ही

पाया जैसा तोते ने कहा था। उधर रत्नसेन ने जब पद्मावती को देखा तो वह मूर्छित हो गया। वह उसके पास गई और चन्दन से उसके वक्षस्थल पर यह लिखकर चली आई कि **"तूने अभी भिक्षा के योग्य'योग नहीं सीखा है, जब समय आया तो तू सो गया।"**

रत्नसेन की जब मूर्छा हटी तो वह अत्यन्त दु खी हुआ और जल मरने के लिए उद्यत हुआ। इसी ममय उसकी रक्षार्थ देवताओ की प्रार्थना से महादेव और पार्वती ने परीक्षा द्वारा उसका प्रेम सत्य जानकर उसे आश्वासन दिया और एक सिद्धि-गुटिका भी प्रदान किया। इस गुटिका की शक्ति से वह योगियो सहित गढ में पहुँच गया और अगाध कुड में घुसकर वज्र किवाडो को तोड दिया। प्रात होते ही राजा ने योगियो को घेर लिया। रत्नसेन की आज्ञा से प्रेम मार्ग में क्रोध को उचित न समझ सभी योगी शात रहे। राजा गधर्वसेन ने उन सबको वन्दी बना लिया। यह सुनकर पद्मावती बहुत दु खी हुई परन्तु तोते के यह कहने से कि रत्नसेन सिद्ध हो गया है वह मर नही सकता, उसे शाति मिली।

रत्नसेन को सूली की आज्ञा हुई। एक योगी पर आपत्ति देख महादेव और पार्वती भाट-भाटिन के रूप में वहाँ आये और राजा को बहुत समझाया कि रतनसेन भी राजा है, वह सर्व प्रकार से पद्मावती का वर होने लायक है। परन्तु गन्धर्वसेन यह सुनकर और भी क्रुध हो उठा। राजा की यह दशा देख अब तो योगियों को भी क्रोध हो आया और वे युद्ध के लिए तैयार हो गए। युद्ध में महादेव, विष्णु तथा हनुमान आदि भी योगियो की रक्षार्थ प्रवृत्त हुए परन्तु जब गधर्वसेन ने उन्हे पहचान लिया तो वह महादेव जी के पैरो पर गिर पडा। अन्त में पद्मावती का विवाह रत्नसेन से कर दिया गया। दम्पति ने सुख पूर्वक काम-क्रीडाएँ कीं। राजा के सोलह हजार साथियो का विवाह भी सिहल की सुन्दरी पद्मिनी स्त्रियो के साथ कर दिया गया। इस प्रकार सबने सुख-चैन में एक वर्ष बिता दिया।

× × ×

अब कवि चित्तौड़ में वियोगिनी नागमती के पास आता है। रत्नसेन के वियोग में नागमती की बड़ी ही करुणाजनक स्थिति हो गई। वह विरह से दग्ध हो सम्पूर्ण विश्व को जलाने लगी। भावावेश मे पति-वियोग में विह्वल नागमती जगल-जंगल फिरने लगी। एक दिन आधी रात को एक विहगम ने उसके दुख से द्रवित हो उसकी करुण-कथा पूछी। नागमती ने उसे अपनी व्यथा बताई और रत्नसेन तथा पद्मावती के पास सदेश पहुँचाने का उससे निवेदन किया। पक्षी तैयार हो गया। संदेश लेकर वह सिंहल पहुँचा। सिंहल मे पहुँचते ही आग लग गई। रत्नसेन वन मे आखेट के लिए आया हुआ था। वह एक पेड़ के नीचे बैठा विश्राम कर रहा था। सहसा उसने सुना कि ऊपर बैठे पक्षी किसी नवागतुक से बात कर रहे हैं। इस पक्षी ने अपना परिचय दिया और नागमती के वियोग की कथा सबको सुनाई। राजा नीचे बैठा हुआ सब सुन रहा था। उसने पक्षी से सारी बात फिर पूछी। पक्षी कहानी सुना उडकर चला गया। रत्नसेन पुकारता रहा पर वह न लौटा। रत्नसेन आखेट से वापिस आने पर उदास रहने लगा। चित्तौड की याद उसे सताने लगी। राजा रत्नसेन की इस उदासी का समाचार सिंहलपति गधर्वसेन को भी मिला। रत्नसेन ने विदा माँगी। अन्त में शुभ मुहूर्त में बहुत धन-धान्य के साथ पद्मावती को लेकर वह चला।

परन्तु इस यात्रा मे भी अनेक बाधाएँ आईं। जहाज अपना मार्ग भूल गया। वहाँ एक मछुए के भेस में कोई राक्षस शिकार कर रहा था। राजा ने उससे राह पूछी। परन्तु वह उसे अतल जल में ले गया और वहाँ जहाज डूब गया। राजा और पद्मावती अलग-अलग हो गए। बहते-बहते पद्मावती समुद्र तट पर लगी। वहाँ समुद्र की पुत्री लक्ष्मी खेल रही थी। लक्ष्मी ने उसे अपने पितागृह में रखा। जब रत्नसेन वहाँ आया तो लक्ष्मी ने अपने को पद्मावती बता उसे छलना चाहा किन्तु रत्नसेन ने उसे पहचान लिया। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती के पास ले गई। दोनो मिले और फिर वहाँ से चित्तौडगढ की ओर प्रस्थान किया।

चित्तौड में घर-घर उत्सव हुए। नागमती भी बडी प्रसन्न हुई। परन्तु कु ही दिनो उपरात वह पद्मावती के प्रति ईर्षा से जलने लगी। एक दिन दो रानियो मे काफी सघर्ष हुआ और रत्नसेन को बीच में पडकर उन्हें सन्तु करना पडा। अन्त में नागमती के नागसेन और पद्मावती के पद्मसेन नाम पुत्र हुए।

यहाँ तक तो पूर्वार्द्ध की कथा चलती है। अब उत्तरार्द्ध में आइये—

चित्तौड के दरबार मे राघव चेतन नाम का एक बहुत बडा पडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजदरबार में वाद-विवाद हो गया। राज ने उसे देश निकाला की आज्ञा दे दी। राघव चेतन दिल्ली चला गया। वह उसने बादशाह अलाउद्दीन से पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य की चर्चा की। रू का लोभी अलाउद्दीन उसकी बातो में आ गया। उसने राघव चेतन की सलाह चित्तौड मे रत्नसेन के पास एक पत्र भेजा जिसमें लिखा कि वह पद्मावती क बादशाही हरम मे भेज दे और बदले में जितना राज्य लेना चाहे ले ले। रत्नसे उस पत्र को पढकर बडा क्रुद्ध हुआ। दूत वापिस चला गया। अलाउद्दीन चित्तौड पर चढाई कर दी। कई वर्षो तक युद्ध चलता रहा। अन्त में दोनो सन्धि हुई। बादशाह ने महल देखना चाहा। राजा घूम-घूम कर उसे मह दिखाने लगा। इस प्रकार घूमते हुए वह पद्मावती के महल के सामने पहुँच और वही बैठकर राजा के साथ चौपड खेलने लगा। कौतूहलवश पद्मावत झरोखे से देखने लगी। सहसा उसका प्रतिबिम्ब अलाउद्दीन के सामने रखे शी पर पडा। उसे देखकर अलाउद्दीन के हृदय में पुन वासना का सचार हो गया भारतीय हिन्दू परम्परानुसार राजा उसे द्वार तक पहुँचाने आया। अन्तिम द्वा पर अलाउद्दीन ने छल से उसे कैद कर लिया और दिल्ली चला गया। पद्मा वती ने गोरा बादल की सहायता से अलाउद्दीन को भी छलकर रत्नसेन को पुन प्राप्त किया। इसी बीच जब रत्नसेन दिल्ली में कैद था, सुअवसर जान देवपाल ने दूती भेजकर पद्मावती को फुसलाना चाहा किन्तु उसकी दाल न गली। जब रत्नसेन दिल्ली से छूटकर आया, पद्मावती ने देवपाल की बात बताई। रत्नसेन बहुत क्रोधित हुआ। सवेरे ही उसने देवपाल पर चढाई कर दी। वहाँ

द्वन्द युद्ध मे वह वीर गति को प्राप्त हुआ। यही हमें यह न भूल जाना चाहिये रत्नसेन दिल्ली से छूटकर जब चला तो बादल तो उसके साथ हो लिया और गोरा वहीं अलाउद्दीन की फौज से युद्ध करने लगा। एक हजार राजपूत वीरो के साथ वह वीर, मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा सुरक्षित चित्तौड पहुँच गया। देवपाल के साथ युद्ध करते हुए जब उसकी मृत्यु हो गई तो गढ बादल को सौंप दिया गया और पद्मावती तथा नागमती दोनो रानियाँ राजा रत्नसेन के शव के साथ सती हो गई। अब तक अलाउद्दीन सेना सहित चित्तौड आ चुका था। बादल ने वीरता से उसका सामना किया किन्तु अन्त मे बेचारा फाटक की लडाई म मारा गया। अलाउद्दीन ने सगर्व किले मे प्रवेश किया किन्तु उसके हाथ केवल राख आई। उसका स्वप्न महल ढह गया।

× × ×

कथानक का साराश जान लेने के उपरात अब हमे यह देखना है कि कथा के उत्तरार्द्ध के ऐतिहासिक आधार मे कितना सत्याश है।

टाड राजस्थान में दिए गए चित्तौड गढ आक्रमण को पढने से पता चलता है कि विक्रम स० १३३१ मे लखनसी चित्तौड के सिंहासन पर बैठा। उसकी आयु छोटी थी, इस नाते उसके स्थान पर उसका चाचा भीमसी (भीमसिंह) ही राज्य करता था। भीमसी का विवाह सिंहल के चौहान राजा हम्मीर शक की कन्या पद्मिनी से हुआ था जो रूप गुण मे जगत में अद्वितीय थी। उसके रूप की ख्याति सुनकर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड गढ पर चढाई की। घोर युद्ध के उपरात अलाउद्दीन ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा कि मुझे एक बार पद्मिनी का दर्शन हो जाय तो मैं दिल्ली लौट जाऊँ। इस पर यह ठहरी कि अलाउद्दीन दर्पण मे पद्मिनी की छाया मात्र देख सकता है।

इस प्रकार युद्ध बन्द हुआ और अलाउद्दीन बहुत थोडे से सिपाहियो के साथ चित्तौड गढ के भीतर लाया गया। वहाँ से जब वह दर्पण में छाया देखकर लौटने लगा तब राजा उस पर पूर्ण विश्वास करके गढ के बाहर तक उसे पहुँचाने आया। बाहर अलाउद्दीन के बहुत से सैनिक घात मे पहले से ही लगे

थे। ज्योही राजा बाहर आया वह पकड लिया गया और मुसलमानो के शिविर मे जो चित्तौड से थोडी दूर पर था कैद कर लिया गया। राजा को कैद करके यह घोषणा की गई कि जब तक पद्मिनी नही भेज दी जायगी राजा नही छूट सकता है।

चित्तौड में हाहाकार मच गया। पद्मिनी के दुःख का तो कहना ही क्या। किन्तु उसने धैर्य से काम लिया और गोरा बादल की सहायता से अलाउद्दीन को भी छलकर राजा रत्नसेन को छुडा लाई। राजपूतो और अलाउद्दीन की फौज में भीषण युद्ध हुआ। अन्त मे राजपूत विजयी हुए। अलाउद्दीन अपना सा मुंह लेकर दिल्ली लौट गया। इसी लडाई में वीर गोरा भी काम आया। और उसकी पत्नी उसके शव के साथ सती हो गई। स० १३४६ में अलाउद्दीन ने फिर चित्तौड पर चढाई की। इसी दूसरी चढाई में राणा अपने ग्यारह पुत्रो सहित मारे गए और पद्मिनी ने जौहर कर डाला।

टाड का यह वृत्त राजपूताने में रक्षित चारणो के इतिहासो पर आधारित है। "दो चार ब्योरों को छोडकर ठीक यही वृत्तांत आइने अकबरी मे दिया हुआ है। 'आइने अकबरी' में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रत्नसिंह या रत्नसेन) नाम है। रत्नसी के मारे जाने का ब्योरा भी दूसरे ढग पर है। 'आइने अकबरी' मे लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी चढ़ाई में भी हारकर लौटा। वह लौटकर चित्तौड से सात कोस पहुंचा था कि रुक गया और मैत्री का नया प्रस्ताव भेजकर रतनसी को मिलने के लिए बुलाया। अलाउद्दीन की बार-बार की चढ़ाई से रतनसी ऊब गया था इससे उसने मिलना स्वीकार किया। एक विश्वासघाती को साथ लेकर वह अलाउद्दीन से मिलने गया और धोखे से मार डाला गया। उसका सम्बन्धी आरसी चटपट चित्तौड के सिंहासन पर बिठाया गया। अलाउद्दीन चित्तौड की ओर फिर लौटा और उस पर अधिकार किया। आरसी मारा गया और पद्मिनी सब स्त्रियों के सहित सती हो गई।'

इन दोनो ऐतिहासिक वृत्तो के साथ जायसी द्वारा वर्णित कथा का मिलान करने से कई बातो का पता चलता है। पहली बात तो यह है कि जायसी ने

जो रत्नसेन नाम दिया है वह उनका कल्पित नही है, क्योकि प्राय उनके समसामयिक या थोडे ही पीछे के ग्रन्थ 'आइने अकबरी' मे भी यही नाम आया है। यह नाम अवश्य इतिहासज्ञो में प्रसिद्ध था। दूसरी बात यह है कि जायसी ने रत्नसेन का मुसलमानो के हाथ से मारा जाना न लिखकर जो देवपाल के साथ द्वन्द युद्ध में कुभलनेर गढ के नीचे मारा जाना लिखा है उसका आधार शायद विश्वासघाती के साथ बादशाह से मिलने जाने वाला वह प्रवाद हो जिसका उल्लेख आइने अकबरी कार ने किया है।

अपनी कथा को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिए ऐतिहासिक घटनाओ के ब्यौरो मे कुछ फेरफार करने का अधिकार कवि को बराबर रहता है। जायसी ने भी इस अधिकार का उपयोग कई स्थलो पर किया है। सबसे पहले तो हमे राघव चेतन की कल्पना मिलती है। इसके उपरान्त अलाउद्दीन के चित्तौड गढ घेरने पर सन्धि की जो शर्त (समुद्र से पाई हुई पाँच वस्तुओ को देने की) अलाउद्दीन की ओर से पेश की गई वह भी कल्पित है। इतिहास मे दर्पण के बीच पद्मिनी की छाया देखने की शर्त प्रसिद्ध है पर दर्पण मे प्रतिबिम्ब देखने की बात का जायसी ने आकस्मिक घटना के रूप मे वर्णन किया है। इतना परिवर्तन कर देने से नायक रत्नसेन के गौरव की पूर्ण रूप से रक्षा हुई है। पद्मिनी की छाया भी दूसरे को दिखाने पर सम्मत होना रत्नसेन ऐसे पुरुषार्थी के लिए कवि ने अच्छा नही समझा। तीसरा परिवर्तन कवि ने यह किया है कि अलाउद्दीन को शिविर में बन्दी होने के स्थान पर रत्नसेन का दिल्ली मे बन्दी होना लिखा है। रत्नसेन को दिल्ली में ले जाने से कवि को दूती और जोगिन के वृत्तांत, रानियो के विरह और विलाप तथा गोरा बादल के प्रयत्न विस्तार का पूरा अवकाश मिला है। इस अवकाश के भीतर जायसी ने पद्मिनी के सतीत्व की मनोहर व्यंजना के अनन्तर बालक बादल का वह क्षात्र-तेज तथा कर्तव्य की कठोरता का वह दिव्य और मर्म स्पर्श दृश्य दिखाया है जो पाठक के हृदय को द्रवीभूत कर देता है। देवपाल और अलाउद्दीन का दूती भेजना तथा बादल और उसकी स्त्री का सम्वाद ये दोनो प्रसंग इसी निमित्त कल्पित किए गए हैं। देवपाल कल्पित पात्र है। पीछा करते हुए अलाउद्दीन के चित्तौड पहुँचने

के पहले ही रत्नसेन का देवपाल के हाथ से मारा जाना और अलाउद्दीन के हाथ से न पराजित होना दिखाकर कवि ने अपने चरित नायक की आन रखी है।—(आचार्य शुक्ल)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक कथावस्तु के चार केन्द्र मुख्य रूप से बनते हैं नागमती, पद्मावती और रत्नसेन तथा अलाउद्दीन। स्थानों में तीन नाम आते हैं चित्तौड, सिंहलदीप और दिल्ली। नागमती चित्तौड के राजा रत्नसेन की विवाहिता थी। पद्मावती पहले प्रेयसी थी पीछे विवाहिता बन गई। सिंहल, चित्तौड और दिल्ली तीनो ही ऐतिहासिक स्थान हैं। किन्तु जायसी द्वारा चित्रित सिंहल ऐतिहासिक सिंहल (अथवा वास्तविक सिंहल—लंकादीप) नही हो सकता क्योंकि वहाँ के लोग अत्यन्त ही काले कलूटे होते हैं। अपूर्व सुन्दरी पद्मिनी सिंहल (लंकादीप) की नही हो सकती। सिंहल में पद्मिनी की कल्पना गोरखपंथी साधुओं के मस्तिष्क की उपज है।

कथा के उत्तरार्द्ध अंश का ऐतिहासिक परीक्षण कर लेने के उपरांत अब हम पूर्वार्द्ध की ओर चलते हैं। पूर्वार्द्ध की कथा के सम्बन्ध में छानबीन करने से यह पता चलता है कि अवध प्रान्त में पद्मिनी रानी और हीरामन सुए की कहानी अब तक प्राय उसी रूप में कही जाती है। इतिहास की जानकारी रखने के कारण जायसी ने रत्नसेन अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं, पर कहानी कहने वाले नाम नही लेते हैं। केवल यही कहते हैं कि 'एक राजा था', 'दिल्ली का बादशाह था' इत्यादि। यह कहानी बीच-बीच में गा-गाकर कही जाती है। जैसे राजा की पहली रानी जब दर्पण में अपना मुंह देखती है तब सुए से पूछती है।

देस देस तुम फिरौ हौ, सुअटा। मोरे रूप और कहु कोई ?

सुआ उत्तर देता है—

काह बखानौं सिंहल कै रानी। तोरे रूप भरं सब पानी ॥

अस्तु, यह अनुमान किया जाता है कि जायसी ने उसी प्रचलित कहानी को लेकर बीच-बीच में सूक्ष्म मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुन्दर स्वरूप दे दिया। इस कहानी को कई लोगो ने काव्य के रूप में बाँधा। जैसे—

१ हुसेन गजनवी—किस्सए पद्मावत (फारसी काव्य)

२. राय गोविन्द मुशी—तुकफतुल कुलूब (फारसी गद्य)

३. मीर जियाउद्दीन तथा गुलाम अली—उर्दू शेरो में लिखा।

अस्तु, अब हम यह कहेगे कि पूर्वार्द्ध की कथा काल्पनिक होते हुए भी ऐतिहासिक सम्भावनाओ से युक्त है।

यह तो हुई कथा की इति वृत्तात्मकता की चाँच-पड़ताल। अब यह देखना है कि कवि ने सम्बन्ध निर्वाह तथा रसात्मकता की रक्षा करने मे कहाँ तक सफलता प्राप्त की है।

सम्बन्ध निर्वाह को ध्यान मे रखने से हमें निम्नलिखित बातो का पता चलता है।

१—सम्बन्ध निर्वाह अच्छा है। एक प्रसग से दूसरे प्रसग की शृङ्खला बराबर लगी हुई है। यद्यपि बीच-बीच में विराम हैं और वे कही-कही अनावश्यक भी लगते हैं किन्तु उनमे विवरण का लोप नही हुआ। इसलिए प्रवाह अखण्ड बना रह गया है।

२—पद्मावत के प्रासगिक वृत्त—यथा हीरामन तोता खरीदने वाले ब्राह्मण का वृत्तान्त, राघव चेतन का हाल, बादल का प्रसग—अधिकारिक वस्तु-स्रोत का मार्ग निर्धारित करते हैं। देवपाल का वृत्त भी इसी प्रकार का है। उसने अलाउद्दीन के पुन चित्तौड पहुँचने से पूर्व ही रत्नसेन का अन्त हो जाता है। इस प्रकार इस प्रसग में भी आधिकारिक कथावस्तु को दिशा मिलती है।

३—पद्मावत की आधिकारिक कथावस्तु घटना प्रधान है। घटना प्रधान प्रबन्ध काव्य में एक 'कार्य्य' होता है। जिसके लिए ही समस्त घटनाओ का आयोजन होता है। पद्मावत मे वह 'कार्य्य' पद्मावती का सती होना है। राघवचेतन का प्रसग प्रमुख कथा को कार्य्य की ओर अग्रसर करता है। रत्नसेन के लौटने में समुद्र मार्ग के तूफान वाली घटना यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कथा को गति तो नहीं देती है किन्तु परोक्ष रूप मे वह सहायक सिद्ध होती है क्योंकि

समुद्र मे रत्नसेन को जो पाँच रत्न मिले थे, अलाउद्दीन से सन्धि करने के हेतु बनते हैं। बादशाह गढ में प्रवेश करता है और फिर रत्नसेन का बंधन होता है। इस प्रकार यहाँ कवि ने बडे कौशल से सूक्ष्म सम्बन्ध सूत्र रखा है। देवपाल की दूती वाली घटना से पद्मावती के सतीत्व गौरव की अपूर्व व्यजना का अवकाश मिल जाता है और वही रत्नसेन की मृत्यु का हेतु बनती है जो कि प्रमुख 'कार्य्य' का (पद्मावती के सती होने का) कारण है।

४ **'कार्यान्वय'** के अन्तर्गत कथावस्तु के आदि, मध्य और अन्त तीनो को स्फुट होना चाहिए। पद्मावती की कथा में हम तीनो को अलग-अलग बता सकते हैं।

१ **आदि**—पद्मावती के जन्म से लेकर रत्नसेन के सिंहलगढ घेरने तक।

२. **मध्य**—विवाह से लेकर सिंहलदीप से प्रस्थान तक।

३ **अन्त**—राघवचेतन के देश निर्वासन से पद्मिनी के सती होने तक **"आदि अश की सब घटनायें मध्य अर्थात् विवाह की ओर उन्मुख हैं। विवाह के उपरात जो उत्सव समागम और सुख भोग आदि का वर्णन है उसे मध्य का विराम समझिए। उसके उपरात राघवचेतन के निर्वासन से घटनाओं का प्रवाह 'कार्य्य' की ओर मुडता है।"**—(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

५ कथा में कुछ अनावश्यक विरामो का भी जायसी ने समावेश किया है जिससे काव्य के सौन्दर्य को धक्का पहुँचा है, और पाठको को ऐसे स्थलो से अरुचि भी हो जाती है। किन्तु पूरे काव्य पर विहगम दृष्टि डालने से यह अपराध क्षम्य कहा जा सकता है।

जहाँ तक काव्य की रसात्मकता का प्रश्न है कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कवि का वस्तु वर्णन, और पात्रो द्वारा भाव-व्यजना दोनो बहुत अच्छे बन पडे हैं। वस्तु वर्णन के अन्तर्गत निम्न वर्णन दर्शनीय है।

१ सिंहलदीप वर्णन।

२ जलक्रीडा वर्णन।

३. सिंहलदीप यात्रा वर्णन।

४ समुद्र वर्णन ।

५. विवाह वर्णन ।

६. युद्ध यात्रा वर्णन ।

७. युद्ध वर्णन .

८. वादशाह भोज वर्णन ।

९ चित्तौड गढ वर्णन ।

१०. पटऋतु, वारह मास वर्णन ।

११. रूप-सौन्दर्य वर्णन ।

पात्रो द्वारा भाव-व्यजना मे दो वातो का ध्यान रखना पडता है।

(१) कितने भावो और गूढ मानसिक विकारो तक कवि की दृष्टि पहुँची है ?

(२) कोई भाव कितने उत्कर्ष तक पहुँचा है ?

जहाँ तक पहले विन्दु की वात है जायसी में मनुष्य हृदय की अधिक अवस्थाओ का सन्निवेश नही मिलता। भावो के भीतर सचारियो का भी सन्निवेश कम ही मिलता है पद्मावत मे रति भाव की प्रधानता है ।

दूसरे विन्दु में जायसी वहुत वढे चढे हैं। विशेपत. विप्रलभ पक्ष अधिक पुष्ट है। सयोग पक्ष में भी आकर्पण और सौन्दर्य है पर अपेक्षाकृत कम । एक स्थल देखिए—रत्नसेन से विवाह हो जाने पर पद्मावती अपनी काम दशा का वर्णन कैसे सीधे सादे पर भावगर्भित वचनो द्वारा करती है—

कौन मोहिनी दहुँ हुति तोहीं। जो तोहि विया सो उतनी मोही ॥
विनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातक भइउँ कहत 'पीउ-पीऊ" ॥
जरिउँ विरह जस दीपक-वाती। पथ जोहत भइँ सीत सेवाती ॥
भइउँ विरह दहि कोइल कारी। डारि-डारि जिमि कूक पुकारी ॥
कौन सो दिन जव पिउ मिलै, यह मन राता जासु।
वह दुख देखै मोर सव, हौं दुख देखौं जासु ॥

दोहे में 'अभिलाषा' का कैसा सच्चा प्रकृत स्वरूप है। वर्णन वड़ा ही हृदयग्राही और सरस है ।

वर्णन की सरसता का एक और उदाहरण लीजिए। पद्मावती के सिंहल छोडने के समय सिंहल के प्रति उसके स्वाभाविक प्रेम की कैसी गम्भीर व्यजना इन पक्तियो में है—

गहवर नैन आए भरि आँसू। छाँड़व यह सिहल कैलासू॥
छाँडिउँ नैहर, चलिउ विछोई। एहि रे दिवस कहँ हौ तव रोई॥
छाँडिउँ आपनि सखी सहेली। दूरि गवन तजि चलिउ अकेली॥
नैहर आइ काह सुख देखा। जनु होइगा सपने का लेखा॥
मिलहु सखी हम तहवाँ जाहीं। जहाँ जाइ पुनि आउव नाहीं॥
हम तुम मिलि एकै सग खेला। अन्त विछोह आनि गिउ मेला॥

इसी प्रकार दूती और पद्मावती के सवाद में पातिव्रत की बडी ही विशद् व्यजना हुई है। यथा स्थल अन्य रसो के वर्णन भी बडे मार्मिक हैं।

नागमती का वियोग वर्णन तो पद्मावत का प्राण विन्दु ही है। उसकी व्यापकता और महानता में जो कुछ भी कहा जाय अपर्याप्त होगा।

साराश यह कि जायसी का पद्मावत सरसता से भरपूर है। कथा वडी ही मनमोहक और हृदयग्राही है। पाठको का ध्यान अपनी ओर खीचने में सब प्रकार से समर्थ है। यही कारण है कि पूर्णत इतिवृत्तात्मक होते हुए भी पद्मावत में रस की अजस्र धार वह रही है। प्रेम का जो दिव्य स्वरूप इसमें उदघाटित हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अस्तु अब हम नि सकोच रूप से यह कह सकते हैं कि पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुए भी रसात्मक है।

प्रश्न १३—जायसी की रचनाओं मे प्रकृति की वडी मनोहर झाकी देखने को मिलती है। उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए।

प्रकृति अनादिकाल से ही मानव की सहचरी रही है। उसके जीवन की अनुभूतियां प्रकृति की क्रोड मे ही विकास की विविध शाखाओ से अपना स्नेह-सम्वन्ध जोड सकी है। प्रकृति की गतिविधि में मानव का गतिविधि, और मानव की गतिविधि में प्रकृति की गतिविधि प्रारम्भ से ही डोलती आई है।

दोनो में एक-प्राण, दो-देह का सम्बन्ध है। तात्पर्य यह कि मानव और प्रकृति का सयोग पुरातन सयोग है। दोनों जन्म से ही एक दूसरे पर मुग्ध हैं।

कविता-कामिनी के शृङ्गार में प्रकृति ने अपना सर्वाधिक योग प्रदान किया है। देश और काल से प्रभावित होते हुए कवियो ने विविध रूपो में प्रकृति को निहारा है, जिनमे आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, रहस्यात्मक सकेत, अलकारिक रूप, उपदेश ग्रहण रूप तथा पूर्व पीठिका आदि रूप प्रमुख हैं।

भावुक जायसी के हृदय ने भी प्रकृति के साथ नाना क्रीडाएँ की हैं। उनके काव्य में प्रकृति के अनेक सुन्दर और हृदयग्राही स्थल हैं जिनसे उनके सूक्ष्म निरीक्षण और अनुभव शक्ति का पता चलता है। स्थूल रूप में जायसी के प्रकृति चित्रण को निम्न दृष्टि विन्दुओ से देखा जा सकता है —

१—अलकारिक रूप।
२—उद्दीपन रूप।
३—भावात्मक रूप।
४—रहस्यात्मक रूप।
५—उपदेशात्मक रूप।
६—प्रतीकात्मक रूप।
७—वस्तु परिगणन रूप
८—स्वतन्त्र रूप।

१—अलंकारिक रूप—अलकारिक वर्णनो मे अन्य कवियो की भांति जायसी ने भी प्रकृति को अमोघ अस्त्र के रूप मे अपनाया है और उनकी सहायता से अपनी अलकार योजना में प्राण फूंका है। प्रकृति-प्रागण में लहराते उपमानो के मनोहर उपवन से उन्होंने मनचाहे पुष्प चुने हैं देखिए तोता, राजा रत्नसेन से पद्मावती की श्यामल केश राशि के बीच निकली सेंदुररहित मांग का वर्णन करते समय किन प्रकृति से उपमान लेता है—

बरनौ मांग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढा तेहि नाहीं॥
बिनु सेंदुर अस जानहु दिया। उजियर पंथ रैन महं किया॥

कचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनी परगसी ॥
सुरुज किरिनि जस गगन विसेखी। जमुना माँझ सरसुती देखी ॥

× × ×

इसी प्रकार क्रमश ललाट तथा नेत्रो का वर्णन देखिए।

कहौं लिलाट दुइजि कै जोती। दुइजिहिं जोति कहा जग ओती ॥

× × ×

नैन चतुर वै रूप चितेरे। कंवल पत्र पर मधुकर घेरे ॥
समुद तरग उठहिं जनु राते। डोलहिं तस घूमहिं जनु माते ॥
सरद चद महँ खजन जोरी। फिरि-फिरि लरहिं अहोरि-बहोरी ॥

× × ×

सिंहलदीप से पद्मिनी को साथ ले रत्नसेन जब चित्तौड वापिस पहुँचा है और रात में नागमती के शयन-कक्ष में गया है तो उस समय नागमती की भाव-व्यजना प्रकृति के योग से कितनी मनोहर हो उठी है नीचे की पक्तियों में देखते ही बनती है —

काह हँसौ पिय मोंसो, किएउ और सो नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख बरसै मेह ॥

× × ×

प्रकृति के सहारे जायसी ने दशा व्यजना जो प्रस्तुत की है वह भी कम आकर्षक और प्रभावोत्पादक नही —

सरग सीस धर धरती, हिया सो प्रेम समुंद।
नैन कौडिया होइ रहे,, लेइ लेइ उठहिं सो बुद ॥
गगन सरोवर ससि कंवल, कुसुम तराइन्ह पास।
तू रवि ऊआ भौंर होइ, पौन मिला लेइ वास ॥
कमल जो विगसा मानसर, विनु जल गएउ सुखाइ।
अबहुं वेलि पुनि पलुहै, जो पिउ सीचै आइ ॥

× × ×

पद्मावती का प्रकृति के उपमानो के सहारे धाय से कथन देखिए —

जोवन चाँद उआ जस, विरह भएउ संग राहु ।
घटति घटत अति खीनभा, कहै न पावौं काहु ॥

X X X

समासोक्ति के सहारे कवि ने प्रकृति का चित्रण अनेक स्थानो पर किया है । कथा के प्रारम्भ में सिहलदीप का वर्णन करता हुआ वह वृक्षो की छाया का प्रसग आते ही अप्रस्तुत की ओर सकेत करता है । स्थल दर्शनीय है :—

घन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
तरिवर सबै मलयगिरि लाई । भइ जग छांह रैन होइ आई ॥
मलय समीर सुहावन छांहा । जेठ जाड़ लागै तिहि मांहा ॥
ओही छांह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास देखावै ॥
पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू । दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू ॥
जेइ वह पाई छांह अनूपा । फिरि नहिं आइ सहै वह धूपा ॥
अस अमराउ सघन घन, बरनि न पारौ अन्त ।
फूलै छहों ऋतु, जानहु सदा वसन्त ॥

२—उद्दीपन रूपः—इस रूप में जायसी ने दो प्रकार का चित्रण किया है:—

(अ) सुखद रूप उद्दीपन ।
(ब) दुखद रूप उद्दीपन ।

सुखद रूप उद्दीपन—पद्मावती परिणय के उपरात षटऋतु वर्णन की भूमिका में, मानसरोवर तथा बसत वर्णन में सुखद उद्दीपन के चित्र हैं । कतिपय स्थलो द्वारा वर्णन—मनोहरता का आस्वादन कीजिए । राजा रत्नसेन के साथ सयोग होने पर पद्मावती को पर्वत की शोभा का कैसा अनुभव हो रहा है :—

पद्मावति चाहत ऋतु पाई । गगन सोहावन भूमि सोहाई ॥
चमकि बीजु, बरसै जल सोना । दादुर मोर सबद सुठि लोना ॥

रँग राती पीतम सँग जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी॥
शीतल बूँद ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाइ ससारा॥
हरियर भूमि, कुसभी चोला। औ धनि पिउ सग रचा हिंडोला॥

नागमती को जो बूँदे विरह दशा में बाण की तरह लगती हैं पद्मावती को सयोग दशा में वे ही बूँदे कौंधे की चमक में सोने की सी लगती हैं।

शरद् ऋतु का आनन्द देखिए —

आइ शरद् ऋतु अधिक पियारी। नौ कुवार कातिक उजियारी॥
पद्मावति भै पूनिउँ-कला। चौदह चाँद उइ सिंहला॥
सोरह-कला सिंगार बनावा। नखत-भरा सूरज-ससि पावा॥
भा निरमल सब धरति अकासू। सेज सँवारि कीन्ह फुल-वासू॥
सेज बिछावन औ उजियारी। हँसि-हँसि मिलहि पुरुष औ नारी॥
सोन-फूल भइ पुहुमी फूली। पिय धनि सौं, धनि पिय सौं भूली॥
चख अजन देइ खजन देखावा। होइ सारस जोरी रस पावा॥

एहि ऋतु कता पास जेहि, सुख तेहि के हिय माँह।
धनि हँसि लागै पिउ गरै, धनि गर पिउ के बाँह॥

हेमन्त और वसत के बिना तो यह वर्णन अधूरा ही रह जायगा अत उसे भी देखिए —

ऋतु हेमत सग पियउ पियाला। अगहन पूस शीतल सुख-काला॥
धनि औ पिउ मँह सीउ सोहागा। दुहुँक अग एक मिलि लागा॥
मन सौं मन, तन सौं तन गहा। हिय सौं हिय, बिच हार न रहा॥
जानहु चदन लागउ अंगा। चदन रहै न पावै सगा॥
भोग करहि सुख राजा रानी। उन लेखे सब सिस्टि जुड़ानी॥
जूझ दुवौ जोवन सौं लागा। बिच हुत सीउ जीउ लेइ भागा॥
दुइ घट मिलि एकै होइ जाहीं। ऐस मिलहिं, तवहूँ न अघाहीं॥

हंसा केलि करहिं जिमि, खूंदहिं कुरलहिं दोउ ।
सीउ पुकारि कै पार भा, जस चकई क विछोउ ।।

× × ×

प्रथम वसंत नवल ऋतु आई । सुरितु चैत वैसाख सोहाई ।।
चन्दन चोर पहिरि धनि अंगा । सेंदुर दीन्ह विहँसि भरि मगा ।।
कुसुम हार औ परिमल वासू । मलयागिरि छिरका कवि लासू ।।
सौर सुपेती फूलन्ह डासी । धनि औ कन्त मिले सुख वासी ।।
पिउ संजोग धनि जोवन जारी । भंवर पुहुप संग करहि धमारी ।।
होइ फागु भलि चांचरि जोरी । विरह जराइ दीन्ह जस होरी ।।
धनि ससि सियरि तपै पिउ सूरू । नखत सिंगार होहि सब चूरू ।।

जेहि घर कन्ता ऋतु भली, आउ वसन्ता नित्तु ।
सुख वहरावै देव हरै, दुक्ख न जानहि किन्तु ।।

× × ×

दुखद उद्दीपन रूप—नागमती प्रियतम के विरह मे झुलस रही है । उसे प्रकृति का विकास अच्छा नहीं लगता अपितु और भी दुख वढ रहा है । जिधर ही उसकी दृष्टि जाती है, उधर ही उसे अपने विरह को उद्दीप्त करने वाली सामग्री दिखाई देती है, असाढ के घिरते हुए वादल उसके हृदय मे हर्ष का संचार न कर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो उसे मदन की सेना घेरती आ रही हो ।

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा । साजा विरह दुंद दल साजा ।।
धूम साम धौरे घन धाए । सेत धजा वग पाँति देखाये ।।
खड़ग वीजु चमकै चहुँ ओरा । वुंद-वान वरसहिं घन घोरा ।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी । कन्त ! उवारु मदन हौं घेरी ।।
दादुर मोर कोकिला, पीऊ । गिरै वीजु, घट रहै न जीउ ।।

× × ×

इसी तरह कातिक मे शरद ऋतु का शशि उसके विरह को कई गुना वढ़ा देता है ।

कातिक सरद चन्द उजियारी । जग शीतल, हौं विरहै जारी ॥
चौदह करा चांद परगासा । जनहुँ जरै सब धरति अकासा ॥
तन मन सेज करै अगि दाहू । सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू ॥

× × ×

फागुन का दृश्य देखिए—

फागुन पवन झकोरा वहा । चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा ॥
तन जस पियर पात भा मोरा । तेहि पर विरह देइ झकझोरा ॥
तरिवर झरहिं-झरहिं वन ढाखा । भइ ओनत फूल फरि शाखा ॥
करहिं वनस्पति हिए उलासू । मो कहँ भा जग दून उदासू ॥
फागु करहि सब चाँचरि चोरी । मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी ॥

ऐसे ही बारहो महीनो में प्रकृति का विकास नागमती के विरह को उद्दीप्त करता रहता है । पद्मावती के विरह में भी कवि ने यथा स्थल प्रकृति के उद्दीपन रूप का सहारा लिया है ।

३ भावात्मक रूप—इस शैली मे कवि ने प्रकृति को अपने भावुक हृदय की आँखो से देखा है । भावुकतावश वर्णन अतिरंजित हो गया है, किन्तु प्रकृति का सत्य पूर्ण वेग से उदघाटित हुआ है । यह तो सभी जानते हैं कि समुद्र का वर्णन करके जायसी ने हिन्दी काव्य-साहित्य में एक बडा ही मनोहारी और नवीन अध्याय जोडा है । उन्होंने सात समुद्रो की कल्पना की है । उसमें से किलकिला समुद्र का वर्णन हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं । देखिए कल्पना-प्रसूत अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी कितना भावात्मक और सशक्त है ।

भा किलकिला अस उठै हिलोरा । जनु अकास टूटै चहुँ ओरा ॥
उठे लहर परवत की नाईं । फिर आवै जोजन सो ताईं ॥
धरती लेइ सरग लेहि वाढा । सकल समुद्र जनहुँ भा ठाढ़ा ॥
नीर होय तर ऊपर सोई । माथे रग समुद्र जस होई ॥
फिर समुद्र जोजन सो ताका । जैसे भवै कोहार को चाका ॥

सागर की भयानकता, बडी-बडी गम्भीर लहरो, हिलोरो आदि का कितना

सजीव चित्रण है। भँवरो के वर्णन में उसने और भी मनोहरता ला दी है। इसी प्रकार भावात्मक शैली का एक दूसरा उदाहरण लीजिए :—

ताल तलाव वरनि नहिं जाहीं। सूझै वार पार किछु नाहीं॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। माना हुए गगन महँ तारे॥
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी। चमकहिं मच्छ विजु कै बानी॥

४. रहस्यात्मक रूप—इस शैली में जायसी ने प्रकृति का अत्यन्त व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रकृति का कण-कण उस परम प्रियतम के अनन्त सौंदर्य से परिवेष्टित देखा है। सर्वत्र उसकी छाया का आभास प्राप्त किया है। देखिए उस परोक्ष ज्योति और सौंदर्य सत्ता की ओर लौकिक दीप्ति और सौंदर्य के द्वारा जायसी कितना सुन्दर संकेत करते हैं :—

बहुतै जोति-जोति ओहि भई।
रवि शशि नखत दियहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥
जह विहसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नगहीर॥

प्रकृति के बीच दिखाई देने वाली सारी दीप्ति उसी से है। इस बात का आभास हमें पद्मावती के प्रति कहे गए रत्नसेन के वाक्य से मिलता है।

अनु धनि ! तू निसिअर निसि मांहा। हौं दिनिअर जेहि कै तू छांहा॥
चांदहि कहा जोति औ करा। सुरुज के जोति चांद निरमरा॥

मानस के भीतर प्रियतम के सामीप्य से उत्पन्न उस अपरिमित विश्व व्यापी आनन्द की व्यंजना में प्रकृति का रहस्यात्मक रूप ही चित्रित हुआ है। देखिए वर्णन कितना हृदयग्राही है —

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥
गा अँधियार रैन-मसि छूटी। भा भिनसार, किरन रवि फूटी॥
कँवल विगस तह विहँसी देहीं। भवर दसन-होइ कै लेहीं॥

५ उपदेशात्मक रूप—प्रकृति का यह रूप कवि की लेखनी से बहुत कम स्थलो पर चित्रित हुआ है। वैसे जहाँ-जहाँ ऐसे स्थल आए हैं। कवि ने उपदेशक रूप में प्रकृति के अनेक पदार्थों द्वारा अपने तात्विक सिद्धान्त प्रकट कराये हैं —

(१) 'पिव-पिव' कर लाग पपीहा।
तुही-तुही कर गडुरी जोहा॥ (सिंहलद्वीप खण्ड)

(२) जावत पछी जगत के भरि बैठे अमराऊ।
आपनि-आपनि भाषा, लेहि दई कर नाउँ॥

कही-कही दृष्टान्त की व्यजना भी मिलती है —

मुहमद वाजी प्रेम की ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि के सग ज्यो, होइ फुलाहल तेल॥

एक स्थान पर कवि लोभ को पाप की नदी बताते हुए लिखता है—

लोभ पाप कै नदी अकोरा।
सत्त न रहै हाथ जौ बोरा॥

× × ×

६ प्रतीकात्मक रूप—यह शैली बहुत कुछ अशो में रहस्यात्मक शैली के अतर्गत ही आ जाती है। किन्तु कही-कही इसका स्वतन्त्र चित्रण भी मिलता है। नीचे की पक्तियो में देखिए उस प्रियतम पुरुप के प्रेम से प्रकृति कैसी विद्ध दिखाई दे रही है—

उन बानन्ह अस को जो न मारा ? वेधि रहा सगरौ ससारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने। वे सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ देहि सब साखी॥
रोव-रोव मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सूत वेद अस गाढे॥
बरुनि चाप अस ओपहं, वेधे रन वन ढाख।
सोजहि तन सब रोआं, पखहि तन सब पाख॥

प्रकृति की ये सभी वस्तुएँ उस व्यापक ब्रह्म के प्रेम बाणों के प्रतीक रूप में चित्रित हैं।

सिंहल गढ को कवि ने परलोक का प्रतीक माना है। वही पर आतंकित होकर चन्द्र सूर्य, तथा नक्षत्र-तारे आदि परिभ्रमण करते हैं—

विजुरी चक्र फिरै चहुं फेरी।
औ जमकात फिरै जम केरी॥
धाइ जो वाजा कै मन साधा।
मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥
चांद सुरुज औ नखत तराई।
तेहि डर अंतरिख फिरहिं सवाई॥

७. वस्तु परिगणन रूप—जायसी द्वारा चित्रित प्रकृति का यही रूप सर्वाधिक नीरस सिद्ध हुआ है। कवि को अपनी वहुज्ञता प्रदर्शन की धुन मे वस्तुओ के नाम गिनाने के अतिरिक्त प्रकृति के सौन्दर्य की ओर देखने का ध्यान ही नही रह जाता। सिंहलद्वीप का वर्णन देखिए उसमें इस प्रकार के परिगणन का वाहुल्य है। लगता है जैसे कवि ने अपनी भावुक आखो से इन्हे नही देखा है।

फरे आंव अति सघन सोहाये। औ जस फरे अधिक सिरनाए॥
कटहर डार पींड सन पाके। वडहर, सो अनूप अति ताके॥
खिरनी पाकि खांड़ अस मीठी। जामुन पाकि भँवर अति डीठी॥
नरियर फरे, फरी फरहरी। फुरै जानु इन्द्रासन पुरी॥
पुनि महुवा चुअ अधिक मिठासू। मधु जस मीठ, पुहुप जस वासू॥
और खजहजा अनवन नाऊँ। देखा सव राउन अमराऊँ॥
लवँग, सुपारी, जायफल, सव फर फरे अपूर।
आस पास घन इमिली, औ घन तार खजूर॥

आस पास वहु अमृत वारी। फरी अपूर होइ रखवारी।
नारंग नीवू सुरँग जंभीरा। औ वदाम वहु भेद अँजीरा॥
गलगल तुँरज सदाफर फरे। नारग अति राते रस भरे॥
किसमिस सेव फरे नौ पाता। दारिउ दाख देखि मन राता॥
लागि सुहाई हार फर्‌यौरी। उनै रही केरा कै घौरी॥

फरे तूत कमरख औ न्योजी। राय करौंदा बर चिरौंजी॥
सगतरा व छुहारा दीठे। और खजहजा खारे मीठे॥
पानि देहि खँडवानी, कुवहि खाँड बहुमेल।
लागी घरी रहट कै, सींचहि अमृत बेल॥

इसी प्रकार के अनेक स्थल जायसी के काव्य में भरे पडे हैं जिसने उनके साहित्य की मनोहरता और सरसता में विशेष विघ्न उत्पन्न किया है और कहीं कहीं तो इससे कथाक्रम में भी व्याघात पहुँचा है। वर्णन बडा ही नीरस बन पडा है।

८—स्वतन्त्र रूप—वस्तु परिगणन की तृष्णा ने कवि को प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण से भी लगभग वंचित ही रखा है। उस क्रम में कवि प्रकृति के सौन्दर्यशाली रूप को जैसे भुला बैठा हो। कुछ थोडे से स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँ कवि अपनी परिगणन शैली का चित्रण करते हुए सहसा भावुक हो उठा है। ऐसे क्षणो में उसकी लेखनी से प्रकृति के स्वतन्त्र सौन्दर्य का भी कुछ उद्घाटन हो गया है। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे स्थल बहुत कम हैं। उदाहरण के लिए मानसरोदक—सरोवर का एक दृश्य यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

मानसरोदक बरनौ काहा। भरा समुद्र अस अति अवगाहा॥
पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुवासू॥
लंक दीप कै सिला अनाई। बाधा सरवर घाट बनाई॥
खण्ड-खण्ड सीढी भईं गरेरी। उतरहि चढ़हि लोग चहुँ फेरी॥
फूला कमल रहा होइ राता। सहस सहस पखुरिन कर छाता॥
उलथहि सीप, मोति उतराहीं। चुगहि हंस, औ केलि कराहीं॥

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जायसी के प्रकृति चित्रण मे विभिन्न शैलियो का समावेश अवश्य है किन्तु उसमें प्रकृति का वह स्वतन्त्र भव्य-सौन्दर्यशाली रूप नही उदघाटित हो सका है जिसकी हम जायसी ऐसे महाकवि से अपेक्षा करते थे। कवि की दृष्टि अपने आध्यात्मिक सौन्दर्य को ढूंढने मे इतनी व्यस्त थी उसे प्रकृति के स्वतन्त्र सौन्दर्य की ओर देखने का अवकाश ही नही मिल सका। चित्तौड से सिंहल गढ तक का विस्तृत

प्रदेश प्रकृति के सौन्दर्य का आगार था किन्तु कवि उस विशद-सौन्दर्य को अपनी कल्पना में आत्मसात करने मे समर्थ नही हो सका। उसने मनुष्य के आनन्द या दुख के रग मे रगी हुई प्रकृति को ही देखा। कवि के ऐसे वर्णनो में तात्विक विवेचन के प्रमुख और प्रकृति को द्वितीय स्थान मिला जिससे उसके कांव्य मे वह मधुरता, सरलता और मनोहारी छवि न आ सकी जो प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण से आती।

किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी हम यह नही कह सकते कि कवि की आँखे प्रकृति सौंदर्य की ओर से एक दम विमुख रही हैं। प्रकृति ही तो उसके प्रियतम की अनन्त छवि का प्रतिविम्व प्रस्तुत करती है, फिर वह कवि द्वारा उपेक्षित कैसे हो सकती थी। मनुष्य के सुख दुख के साथ कवि ने प्रकृति का जो सौंदर्य उपस्यित किया है वह वडा ही आकर्षक वन पड़ा है। प्रकृति के माध्यम से उस अलौकिक दिव्य-सौंदर्य की जो झांकी उसने प्रस्तुत की है वह प्रशसनीय है। प्रेम और प्रकृति को एक रग मे रंग कर कवि ने अपने काव्य मे नया ही आकर्षण उत्पन्न किया है और यही उसके प्रकृति चित्रण की विशेषता है।

अस्तु अव हमें यह कहने मे कोई संकोच नही कि जायसी की रचनाओ में प्रकृति की वडी ही मनोहारी झांकी देखने को मिलती है।

प्रश्न १४—पद्मावत के रस और अलंकार योजना पर एक संक्षिप्त निवन्ध प्रस्तुत कीजिए।

रस काव्य की आत्मा और अलकार उसका शृङ्गार है। जिस काव्य मे रस का परिपाक जितना ही होता है, वह काव्य उतना ही उत्तम कोटि का होता है। पद्मावत जायसी का महाकाव्य है। ऐसी दशा में उसमे महाकाव्य के अनुकूल समस्त रसो का समावेश आवश्यक है। किन्तु यहाँ हमें यह न भूलना चाहिए कि पद्मावत महाकाव्य होते हुए भी एक शृङ्गार प्रधान प्रेम-काव्य है। कवि का प्रमुख ध्यान प्रेम तत्व को शृङ्गारिक आवरण में व्यक्त करने की ओर ही अधिक रहा है। इससे अपेक्षाकृत अन्य रसो के चित्रण की ओर उसकी दृष्टि कम जा सकी है। वैसे इस सत्य को अस्वीकार भी नही किया जा सकता

कि पद्मावत में लगभग सभी रसो का समावेश है। अब हम कतिपय उद्धरण द्वारा इस तथ्य का निरूपण करेंगे।

शृङ्गार रस—शृङ्गार के दो पक्ष होते हैं—सयोग शृङ्गार और वियोग शृङ्गार। वियोग शृङ्गार की विस्तृत भूमिका में ही विप्रलम्भ शृङ्गार का भी समावेश होता है। पद्मावत में शृङ्गार रस के इन दोनो पक्षो का उद्घाटन किया गया है। हां यह अवश्य है कि इन दोनो में प्रमुखता वियोग शृङ्गार की है। इसी नाते पद्मावत को विरह काव्य भी कहा जाता है। वियोग शृङ्गार का जैसा भव्य उद्घाटन जायसी करने में समर्थ हुए हैं, वैसा सयोग शृङ्गार का नहीं। अब एक एक को अलग-अलग लीजिए।

सयोग शृङ्गार—इस शृङ्गार पर इसी ग्रथ में एक भिन्न स्थान पर हम विस्तार मे विचार कर चुक हैं, इसलिए यहाँ हम सकेत मात्र करेंगे।

पद्मावत में सयोग के केवल निम्न स्थल आते हैं। १—वसन्त खण्ड में २—विवाह तथा पद्मावती-रत्नसेन भेंट खण्ड में ३—षटऋतु वर्णन में और ४—नागमती-रत्नसेन भेंट के अवसर पर।

वसन्त खण्ड में पद्मावती के अपूर्व सौंदर्य को देखते ही रत्नसेन मूछित हो जाता है। इस नाते सयोग का वह वातावरण ही विनष्ट हो जाता है जिसके बीच उसका परिपाक होता। विवाह खण्ड मे भी मिलन सुख की स्मृति मात्र से पद्मावती के अग-अग हुलसने लगते हैं।

अग अग सब हुलसे, कोइ कतहू न समाइ।
ठांवहि ढांव विमोही, गई मुरछा तनु आई॥

परन्तु यहाँ नायक रत्नसेन के न होने से नायिका पक्ष मे उन सचारियो का समावेश न हो सका जिनके माध्यम से स्थायी भाव रस अवस्था को प्राप्त होता। अस्तु शुद्ध रस की दृष्टि से यह स्थल भी अपने मे सर्वांगीण रूप से पूर्ण नही कहा जा सकता। वैसे चित्रण बडा ही मनोहारी और आकर्षक है।

पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में सयोग शृङ्गार का पूर्ण परिपाक हुआ है। नायक और नायिका जी खोल कर मिले हैं। बीच मे अन्य कोई व्यवधान नहीं उपस्थित हो सका है जो रस विरोध उत्पन्न करता।

पट ऋतु वर्णन पद्मावती के पक्ष मे सयोग शृङ्गार का उद्दीपन वन कर आया है। वही ऋतुएँ जो नागमती को पति वियोग से दुख दायिनी प्रतीत होती हैं पद्मावती के सयोगावस्था मे मुखप्रदायिनी हो जाती हैं।

नागमती और रत्नसेन के वीच सयोग शृङ्गार का केवल एक स्थल आया है जव कि रत्नसेन सिंहल मे लौटकर नागमती के पास जाता है। किन्तु उस समय के वर्णन को भी हम पूर्ण सयोग नही कह सकते क्योकि उसमें भी अधिकाश नागमती द्वारा मान-प्रदर्शन और सपत्नी पद्मावती के प्रति ईर्ष्या भाव ही व्यक्त हुआ है। कवि चाहता तो सयोग शृङ्गार का भव्य चित्रण कर सकता था क्योकि यहाँ उसके पास समस्त सामग्री थी, परन्तु न जाने क्यो उसने वैसा नही किया।

वियोग-शृङ्गार—पद्मावत में वियोग शृङ्गार भी नागमती-रत्नसेन और पद्मावती-रत्नसेन के आश्रय से चित्रित हुआ है। विशेष नागमती का वियोग वर्णन तो कवि की लेखनी से अद्वितीय ही वन पड़ा है। नागमती के वियोग की व्यापकता तथा और गम्भीरता और मार्मिकता वड़ी ही उत्कृष्ट कोटि की है। वारहमासे का वर्णन कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार के उद्दीपन के लिए किया है। यह वारहमासा उसके वियोग को उत्कर्ष प्रदान करता है। प्रत्येक मास की प्रकृति उसकी वियोगाग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित करती है। सयोगावस्था के सभी चित्र उसे तीक्ष्ण वाण से लगते हैं। वह विरह विदग्धा पख हीन पछी की भाँति तडपती रहती है।

उसे कुछ सूझ नही पड़ता। वह वावली सी जगल में घूमने लगती है। उसे यही चिन्ता है कि किसी प्रकार उसके विरह की यह कथा उसके प्रियतम को मालूम हो जाय। उसे विश्वास है कि उसकी इस दशा को सुनते ही प्रियतम अवश्य लौट आयगा। अस्तु वह वन के पक्षियो से अपनी यह व्यथा-कथा कहती है किन्तु उनके शरीर से विरह की इतनी तेज लपटें निकल रही है कि—

जेहि पंखी के नियर होई, कहै विरह कै वात।
सोइ पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

वियोग का विस्तार जड चेतन सब में परिव्याप्त हो रहा है। विरह की मार्मिकता मे प्रकृति भी दुखी है।

तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूडि उठे होइ राते।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। पखर पाक फाट हिय गोहूँ॥

कवि ने नागमती के विरह में वियोग की अनेक दशाओ का चित्रण किया है। कुछ चित्र देखिए—

उन्माद—पिउ सों कहेउ सदेसडा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुँआ हाह लाग।

अभिलाषा—राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कत बस तोरे।

प्रलाप—हाड भये सब कीगरी, नसैं भईं सब तांति।
रोंव-रोंव ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भांति॥

चिन्ता—पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मन्दिर को छावा?

⊠ × ⊠

बथ नाहि औ कथ न कोई। बात न आव कहौं का रोई॥
साठि नाठि, जग बात को पूछा। बिनु जिउ फिरै मूज तनु छूछा॥
भई बहेली टेक बिहूनी। थांभ नाहि उठि सकै न थूनी॥
कोरौ कहा ठाट नव साजा। तुम बिनु कत न छाज न छाजा॥

इसी प्रकार अन्य कई दशाओ के चित्र स्पष्ट रूप में मिलते हैं। अब हम एक उद्धरण पद्मावती वियोग से देकर शृङ्गार रस का प्रसग समाप्त करेंगे—

लक्ष्मी समुद्र-खण्ड मे पद्मावती जब रत्नसेन से बिछड जाती है उस समय की उसकी दशा देखिए—

खन चेते, खन होइ बेकरारा। भा चन्दन बन्दन सब छारा॥
बाउर होइ परी पुनि पाटा। देहु बहाइ कत जेहि घाटा॥
को मोंहि आगी देइ रचि होरी। जियत न बिछुरै सारस जोरी॥

इसी प्रकार रत्नसेन के मानस में भी विरह का सचार होता है—

तपि कै पावा मिलि कै फूला । पुनि तेहि खोइ सोइ पथ भूला ॥
कहँ अस नारि जग उजियाराही । कहँ अस जीवन कै सुख छाँही ॥
कहँ अस रहस भोग अव करना । ऐसे जिए चाहि भल मरना ॥

जायसी के हृदय की पीर नागमती के विरह वर्णन में पूर्ण उत्कर्ष के साथ यक्त हुई है । वियोग का सच्चा चित्र नागमती वियोग मे ही मिलता है। फारसी भाव से कही-कही वीभत्सता तथा अतिशयोक्ति से अस्वाभाविकता भी आ ई है, किन्तु उमकी व्यापकता और मार्मिकता के सम्मुख ये दोप नगण्य हो ाते हैं । जायमी का विरह वर्णन परम्परा युक्त होते हुए भी मानसिक दशाओ था विभाव अनुभव से परिपूर्ण है । जिससे रस परिपाक में पर्याप्त सहायता मली है ।

करुण रस—शृङ्गार के उपरान्त जायसी का कवि सर्वाधिक करुण में ी रमा है । करुण रस का प्रथम दृश्य वहाँ आता है जब रत्नसेन जोगी होकर नकलने लगता है और उसकी माता तथा पत्नी आदि विलाप करती हुई सम-ाने का प्रयत्न करती हैं —

रोवत माय न वहुरत वारा । रतन चला, घर भा अँधियारा ॥
वार मोर जो राजहि रता । सो लै चला सुआ परवता ॥
रोवहिं रानी तजहि पराना । नोचहिं वार, करहि खरिहाना ॥
चूरहिं गिउ अभरन, उर-हारा । अब कापर हम करव सिंगारा ॥
जाकहँ कहहि रहसि कै पीऊ । सोइ चला, काकर यह जीऊ ॥
मरै चहहि पै मरै न पावहि । उठे आगि, सब लोग वुझावहि ॥

× × ×

घरी एक सुठि भयउ अँदोरा । पुनि पाछे बीता होइ रोरा ।
टूटे मन नौ मोती, फूटे मन दस काँच ।
लीन्ह समेट सब अभरन, होइगा दुख कर नाच ॥

× × ×

दूसरा दृश्य वहाँ है जब पद्मावती सिंहल से विदा हो रही है ।

रोवति मातु पिता औ भाई । कोउ न टेक जो कंत चलाई ।।
रोवहि सब नैहर सिंहला । लेइ बजाइ कै राजा चला ।।
तजा राज रावन का केहू । छांडा लंक बिभीषन लेहू ।।
भरी सखी सब भेंटत फेरा । अंत कंत सौं भएउ गुरेरा ।।

× × ×

कोउ काहू कर नाहि नियाना । मया मोह बांधा अरुझाना ।।
कंचन कया सो रानी, रहा न तोला मांसु ।
कंत कसौटी घालि कै, चूरा गढ़ै कि हांसु ।।

× × ×

जब पहुँचाई फिरा सब कोऊ । चला साथ गुन-अवगुन दोऊ ।।

राजा रत्नसेन की मृत्यु पर भी कवि ने करुण परिस्थिति का दृश्य दिखाया है । स्थल पठनीय है ।

वात्सल्य—वात्सल्य का निरूपण वहाँ पर हुआ है जब रत्नसेन के योगी होकर निकलने की सूचना पाकर उसकी माँ का हृदय पुत्र-प्रेम से विह्वल हो पड़ता है ।

कैसे धूप सहब बिनु छाहा । कैसे नींद परिहि भुइ मांहां ।।
कैसे ओढ़ब काथरि कथा । कैसे पांव चलब तुम पन्था ।।
कैसे सहब खिनहि खिन भूखा । कैसे खाब कुरकुट रूखा ।।

ऐसे ही बादल की माँ भी बादल को युद्ध में जाने से रोकती हुई कहती है—

बादल केरि जसोवै माया । आइ गहोसि बादल करि पाया ।।
बादल राय ! मोर तुइ बारा । का जानसि कस होइ जुझारा ।।
जहाँ दलपती दल मरहिं, तहाँ तोर का काज ।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज ।।

इस प्रकार वात्सल्य के दृश्य पद्मावत मे आये तो है पर वे हृदय में करुणा ही अधिक उत्पन्न करते हैं । ऐसा कोई भी पूर्ण वर्णन नही जिससे माँ का हृदय पुलक उठे ।

भयानक और अद्भुत रस—इन रसो के वर्णन हमें सात समुद्र खण्ड में मिलते हैं :—

भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटे चहुँ ओरा॥
उठहि लहर परवत कै नाइँ। फिरि आवहि जोजन सौ ताईं॥
धरती लेइ सरग लहि बाढा। सकल समुद जानहु भा ठाढ़ा॥
नीर होई तर ऊपर सोई। माथे रम्भ समुद जस होइ॥

वीर रस—पद्मावत मे वीर रस के चित्रण के, मूल मे दो बातें हैं एक तो वीरगाथा काल की परम्परा और दूसरे पद्मावत की कथा का ऐतिहासिक झुकाव। राजा रत्नसेन और राजा गधर्वसेन के युद्ध वर्णन मे, अलाउद्दीन के साथ युद्ध वर्णन में तथा गोरा बादल की वीरता के प्रसग में ही वीर रस का प्रस्फुटन हुआ है। अलाउद्दीन के साथ वाले युद्ध में वीर रस का उत्कृष्ट स्वरूप सामने आता है।

ओनइ आइ दूनौ दल साजे। हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे॥
दुऔ समुद दधि उदधि अपारा। दूनौ मेरु खिखिंद पहारा॥
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले। औ हस्त-हस्ती सहुँ पेले॥
आंकुस चमक बीजु अस बाजहि। गरजहि हस्ति मेघ जनु गाजहि॥
धरती सरग एक भा, जूहहि ऊपर जूह।
कोइ टरै न टारे, दूनौ वज्र समूह॥
हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहि। जनु पर्वत-पर्वत सो बाजहि॥

× × ×

कोइ हस्ती असवारहि लेहीं। सूंडि समेटि पाम तर देहीं॥

× × ×

कोइ, मैमंत संभारहि नाहीं। तब जानहि जब गुद सिरजाहीं॥
गगन रुहिर जस बरसै, धरती बहै मिलाइ।
सिर धर टूटि बिलाहि तस, पानी पक बिलाइ॥

× × ×

इसी प्रकार युद्धोत्साह में गोरा कहता है—

हौं कहिए धौलागिरि गोरा। टरौं न टारि, अग ना मोरा॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं। मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं॥
सहसौ ससि सेस सम लेखौं। सहसौ नैन इन्द्रसम देखौं॥

⊠ ⊠ ⊠

होइ नल नील आजु हौं, देहुँ समुद मँह मेंड।
कटक साह कर टेकौं, होइ सुमेरु रन बेंड॥

तात्पर्य यह कि वीर रस के चित्रण में जायसी को पर्याप्त सफलता मिली है।

वीभत्स रस—गोरा-बादल व अलाउद्दीन की सेना में युद्ध होते समय तथा नागमती के रुदन में, तथा पद्मावती की लाल उँगलियो के सौंदर्य वर्णन आदि में हमें वीभत्स रस के दर्शन होते है।

नागमती का रुदन देखिए —

गिरि-गिरि परै करत कै आंसू। विरह सरागन्हि भूजै मांसू॥

× × ×

इसी प्रकार पद्मावती की लाल उँगलियो के सौंदर्य वर्णन में देखिए—

हिया काढि जनु लीन्हेसि हाथा। रुहिर भरी अँगुरी तेहि साथा॥

रौद्र, शांत तथा हास्य रस—रौद्र रस का वर्णन उस समय आया है जब अलाउद्दीन का पत्र रत्नसेन को मिलता है। किन्तु गहराई में उतरने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ रस का परिपाक नहीं हो पाया है। केवल भाव-मात्र की सृष्टि हुई है।

शात रस के दृश्य यत्र तत्र कई स्थानो पर आये हैं जैसे जीवन की व्याख्या करता हुआ कवि कहता है —

मुहम्मद जीवन जल भरन, रहत घरी कै रीति।
घरी जो आइ ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीत॥

पद्मावत का अंत शांत रस में ही हुआ है।

राती पिउ के नेह गई, सरग भएउ रतनार।
. जोरे उवा सो अथवा, रहा न कोई ससार॥

जहाँ तक हास्य रस का प्रश्न है उसे नगण्य स्थान मिला है। गम्भीर आध्यात्मिक भावों से भरे होने के कारण पद्मावत में हास्य का कोई उल्लेखनीय स्थल ही नही आया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मावत मे शृङ्गार, वीर और करुण का ही परिपाक हुआ है शेष रस पूर्ण परिपक्वता को नही प्राप्त हुए हैं। रसराज शृङ्गार का ही पद्मावत मे प्रमुख स्थान है।

अलंकार-योजना—जायसी ने अधिकतर सादृश्य मूलक अलकारो का प्रयोग किया है। सादृश्य मूलक अलकारो से स्वरूप का बोध कराने तथा भावो का उत्कर्ष प्रकट करने मे पर्याप्त सहायता मिलती है। सादृश्य मूलक के अन्तर्गत उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की बहुलता रहती है। इनमें से भी जायसी को हेतूत्प्रेक्षा सर्वाधिक प्रिय थी। इसके सहारे उन्होने अपनी कल्पना का विस्तार खूब किया है। रूप वर्णन में अलकारो की भरमार हो गई है। पद्मावती के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन करने मे कवि ने अपनी कलम तोड दी है। नीचे अब हम कुछ प्रमुख अलकारो के उद्धरण प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम जायसी का प्रिय अलकार उत्प्रेक्षा ही लीजिए—

कंचन-रेख कसौटी कसी। जनु घन मँह दामिनी परगसी॥
सुरुज किरन जनु गगन बिसेखी। जमुना मांह सुरसती देखी॥
—वस्तूत्प्रेक्षा

आँख की बरुनियो का वर्णन देखिए —

बरुनी का बरनौ इमि बनी। साधे बान जान दुइ हनी॥
जुरी राम रावन कै सेना। बीच समुद भये दुइ नैना॥
—वस्तूत्प्रेक्षा

कटि की सूक्ष्मता देखिए —

मानहु नाल खंड दुइ भए। दुहु बिच लंक तार रहि गए॥
—वस्तूत्प्रेक्षा

× × ×

क्रियोत्प्रेक्षा—

अस वे नयन चक्र दुइ, भँवर समुद उलथाहिं।
जनु जिउ घालिहि डोल महँ, लेइ आवहिं, लेइ जाँहि॥

हेतूत्प्रेक्षा—

सहस किरिन जो सुरुज दिखाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई।

× × ×

दारिउ सरि जो न कै सका। फाटेउ हिया दरक्कि।

फलोत्प्रेक्षा—

पुहुप सुगंध करहि एहि आसा। मकु हिरकाई लेइ हम पासा।

× × ×

करवत तपा लेहि होइ चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू॥

व्यतिरेक—

का सरवरि तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी, वह निकलंकू॥
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह विनु राहु सदा परगासा॥
सुआ सो नाक कठोर पंवारी। वह कोमल तिल-पुहुप सँवारी॥

× × ×

वह पदमिनि चितउर जो आनी। काया कुंदन द्वादस वानी॥
कुंदन कनक ताहि नहिं वासा। वह सुगंध जस कंवल विगासा॥
कुंदन कनक कठोर सो अंगा। वह कोमल रंग पुहुप सुरंगा॥

रूपकातिशयोक्ति—

राते कंवल करहि अलि भँवा। घूमहिं मानि चहहि अपसवाँ।

× × ×

कँवल कली तू पदमिनि! गइ निसि भयऊ विहानु॥
अबहुँ न सपुट खोलसि, जब रे उवा जग भानु॥
भानु नांव सुनि कँवल विगासा। फिरि कै भँवर लीन्ह मधुवासा॥

× × ×

सन्देह अलकार—

मनहुँ चढ़ी भौरन्ह कै पाँती । चन्दन-खांभ बास कै माती ॥
की कालिन्दी विरह सताई । चलि पयाग अरइल विच आई ॥

अनुप्रास—

सिथिल न चचल बडा न छोटा । तरुन न बूढ़ा लटा न मोटा ॥
बहुर न थोरा सजा न फूटा । मिला न विछुरा जुरा न टूटा ॥

उपमा अलकार—

कया कपूर हाड जनु मोती । तेहि ते अधिक दीन्ह विधि जोती ।
× × ×
सुरुज कान्ति करा जसि, निरमल नीर सरीर ।
× × ×

उपर्युक्त कुछ थोडे से अलकारो के उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने अलकारो का प्रयोग अर्थ विस्तार और भावो के उत्कर्ष के लिए बडे ही सुन्दर ढग से और अधिक सख्या में किया है। किन्तु हमें यहाँ यह न भूलना चाहिए कि उन्होंने परम्परा पालन का ध्यान भी बहुत रक्खा है। इससे कही-कही भद्दी परम्परा का चित्र भी आ गया है। नीचे हम दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे इस तथ्य का उद्‌घाटन वडी ही सरलता से हो जाता है। प्रथम उदाहरण मे सामग्री वीर रस की है और उसमें उन्होने शृङ्गार का आरोप किया है। दूसरे उदाहरण में सामग्री शृङ्गार-रस की है, उसमें उन्होने वीर रस का आरोप किया है। प्रथम उदाहरण स्त्री के रूपक में तोप का वर्णन लीजिए—

कहौं सिगार जैसि वे नारी । दारू पियहिं जैसी मतवारी ॥
सेन्दुर आगि सीस उपराहीं । पहिया तरबिन चमकत जाहीं ॥
कुच गोला दुई हिरदय लाई । अचल धुजा रहे छिटकाई ॥
रसना लूक रहहि मुख खोले । लका जरै सो उनके बोले ॥
अलक जंजीर बहुत गिउ वांधे । खींचहि हस्ती, टूटहि कांधे ॥
वीर सिगार दोउ ऐके ठाऊँ । सत्रु-साल गढ़-भंजन नाऊँ ॥

नीचे का दूसरा उदाहरण परिणाम अलकार का है। बादल युद्ध क्षेत्र मे जाने के लिए तैयार है, ऐसे अवसर पर उसकी नवागता पत्नी उससे वाद-विवाद करते हुए कहती है—

जौ तुम चहहु जूझि, प्रिय ! कीन्ह सिंगार जूझ मैं साजा ॥
जोवन आई सौंह होई रोपा। पिघला विरह कालदल कीपा ॥
भौंहि धनुष नयन सर सांधे। वरुनि बीच काजर विष बांधे ॥
अलक फांस गिउ मेलि असूझा। अवर अवर सो चाहहि जूझा ॥
कुंभस्थल कुच दोऊ मैमता। पेलौं सौंह सँभारहु कंता ॥

× × ×

उपर्युक्त दोनो वर्णन कितने रस विरोधी हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि फारसी प्रभाव और परम्परा मोह ने ही जायसी के अलकारिक वर्णन मे वीभत्सता उत्पन्न की है। जहाँ इससे विरक्त रह कर स्वतन्त्र रूप से उन्होने अलकारो का वर्णन किया है वहाँ उन्हे पर्याप्त सफलता मिली है और उससे उनके काव्य की श्री वृद्धि हुई है।

प्रश्न १५—"पद्मिनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौंदर्य की लोकोत्तर भावना मे मग्न करने वाला है।" जायसी के रूप वर्णन की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए।

पद्मिनी जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' की नायिका और उनके सूफी धर्मानुसार ब्रह्म की लौकिक प्रतीक है। उनके सौन्दर्य वर्णन के माध्यम से उन्होंने उस चिरतन महाज्योति के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन किया है। वस्तुतः रूप सौन्दर्य वर्णन ही पद्मावत की कथा का मूलाधार है। अस्तु जायसी ने पद्मावती के रूप का बहुत ही विशद वर्णन उपस्थित किया है। अब हमें यह देखना है कि उनके रूप वर्णन के वे कौन-कौन से आकर्षण-बिन्दु हैं जिन्हे देखते ही पाठक की दृष्टि सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना मे मग्न हो जाती है।

'पद्मावत' में रूप-सौन्दर्य वर्णन की योजना आठ स्थलो पर की गई है। उनमें से भी दो स्थलो पर अलौकिक सौन्दर्य समन्वित, पद्मावती के स्त्री रूप का वर्णन विशेष उल्लास और उत्साह से किया गया है। वे दोनो प्रमुख स्थल निम्न हैं :

१—तोते द्वारा राजा रत्नसेन के सम्मुख।

२—राघव चेतन द्वारा बादशाह अलाउद्दीन के सम्मुख।

दोनो वर्णन नखशिख प्रणाली पर हैं (यद्यपि फारसी शैली से प्रभावित होने के नाते जायसी ने उसे शिख-नख रूप में उपस्थित किया)। अग-प्रत्यगो के वर्णन के लिए प्रमुखत सादृश्य मूलक उपमानो का विधान किया गया है। अधिकतर उपमान परम्परा प्रचलित ही है। हाँ कुछ उपमान फारसी साहित्य के प्रभाव से भी आ गए हैं और कुछ लोक गृहीत तथा कुछ नवीन मौलिक उपमान हैं।

पद्मिनी के सौन्दर्य को कवि ने दिव्य-सौन्दर्य के रूप में देखा है। इसी नाते गर्भ-काल से ही उस अलौकिक-सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत करने में वह सतर्क है। कवि का सकेत देखिए —

प्रथम सो जोति गगन निरमई।
पुनि सो पिता माथे मनि भई॥
पुनि वह ज्योति मातु घट आई।
तेहि ओदर आदर बहु पाई॥
जस औधान पूर होइ तासू।
दिन-दिन हिए होइ परगासू॥
जस कचल भीने मँह दीया।
तस उजियार दिखावै हीया॥

—जन्म खण्ड

दिव्य-सौन्दर्य शालिनी का जन्म हो गया —

भए दस मास पूरि भै घरी। पद्मावति कन्या औतरी॥
जानहु सुरुज किरन हुति काढी। सूरज करा घाटि वह बाढ़ी॥

भा निसि मांह दिन कै परगासू । सब उजियार भएउ कवि लासू ॥
अते रूप भइ कन्या, जेहि सरि पूज न कोई ।

अलौकिक-रूपा पद्मावती के रूप-वर्णन के निम्नलिखित आकर्षण-विन्दु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

(अ) पद्मावती का पारस रूप ।

(ब) रूप सौन्दर्य का सृष्टि-व्यापी प्रभाव तथा लोकोत्तर-कल्पना ।

(स) अप्रस्तुत-विधान ।

(द) यौवन-भार-भरिता पद्मिनी का नख-शिख ।

(य) रूप-सौन्दर्य के उपमान ।

(फ) उपमान-रूपो का सौन्दर्य ।

(अ) पद्मावती रूप को कवि ने पारस-रूप की सज्ञा दी है । उस पारस-रूप की चर्चा 'पद्मावत' में स्थान-स्थान पर आई है । मानसरोवर खण्ड की अन्तिम पक्तियो मे पद्मावती के पारस-रूप की व्यजना देखिए :—

कहा मानसर चाह सो पाई । पारस-रूप इहाँ लगि आई ।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे । पावा रूप, रूप के दरसे ॥
मलय समीर वास तन आई । भा शीतल गै तपनि बुझाई ॥
विगसे कुमुद देखि ससि रेखा । भै तेहि रूप जहाँ जो देखा ॥
पाए रूप, रूप जस चहा । शशि मुख सब दरपन होइ रहा ॥
नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर ॥

"पद्मावती के हँसते ही चन्द्र किरण सी आभा फूटी, इससे सरोवर के कुमुद खिल उठे । यहाँ तक नहीं, उसके चन्द्रमुख के सामने वह सारा सरोवर दर्पण सा हो उठा अर्थात् उसमे जो-जो सुन्दर वस्तुएँ दिखाई पडती थीं वे सब मानो उसी के अगों की छाया थीं । सरोवर मे चारों ओर जो कमल दिखाई पड़ रहे थे वे उसके नेत्रों के प्रतिविम्ब थे; जल जो इतना स्वच्छ दिखाई पड़ रहा था यह उसके स्वच्छ निर्मल शरीर के प्रतिविम्ब के कारण । उसके हास की

शुभ्र कांति की छाया वे हंस थे जो इधर-उधर दिखाई पड़ते थे और उस सरोवर मे (जिसे जायसी ने एक झील या छोटा समुद्र माना है) जो हीरे थे वे उसके दशनो की उज्ज्वल दीप्ति से उत्पन्न हो गए थे। पद्मावती का रूप वर्णन करते-करते किस सौंदर्य सत्ता की ओर कवि की दृष्टि जा पडी है। जिसकी भावना ससार के सारे रूपो को भेदती हुई उस मूल सौंदर्य सत्ता का कुछ आभास पा चुकी है वह सृष्टि के सारे सुन्दर पदार्थों में उसी का प्रतिबिम्ब देखता है।" —आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

जायसी की इन्ही पक्तियो की प्रशसा करते हुए प्रो० शिवसहाय पाठक लिखते हैं "यह है पद्मावती के पारस रूप का लोकोत्तर-सृष्टि व्यापी प्रभाव। जिस प्रकार पारस-पत्थर के स्पर्शमात्र से कुधातु स्वर्ण बन जाती है उसी प्रकार पद्मावती का 'पारस रूप' समस्त सृष्टि को अपने रँग में रँग सकता है। उसी के आलोक से समग्र ससृति आलोकित है। पारस रूप वाली पद्मावती सरोवर के पास तक चली आई, तब सरोवर उन चरणो के स्पर्श करने से निरमल हो गया। 'पावा रूप-रूप के परसे' उस पारस रूप के दर्शन मात्र से सरोवर रूपवान् हो गया। उसकी चन्द्रकला को देखकर कुमुद विकस गए आदि।

इसी प्रकार कवि ने राजा-सुआ सवाद खण्ड में भी पद्मावती के 'पारस रूप' के सृष्टि व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना की है।

सुनि रवि नाव रतन भा राता। पडित फेरि उहै कहु बाता॥
तीन लोक चौदह खड सबहिं परै मोंहि सूझि।
प्रेम छाँडि नहिं लोन किछु जो देखा मन बूझि॥

नीचे की पक्तियो मे, लिलाट काति के माध्यम से लोकोत्तर तथा सृष्टि व्यापी ज्योति का वर्णन देखिए —

पारस जोति लिलाटहिं ओती। दृष्टि जो करै होय तेहि जोती॥
ससि और सूर जो निरमल, तेहि लिलाट के ओप।
निसि दिन दौरि न पूजहिं, पुनि-पुनि होंहि अलोप॥

अलाउद्दीन जैसे अधम पात्र को भी दर्पण द्वारा उस पारस रूप का प्रतिभास हो जाता है —

विहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह दरपन महँ देखी ॥
होतहि दरस, परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना ॥

(घ) रूप सौन्दर्य के उपमान—अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की भांति जायसी ने भी अपनी काव्य-नायिका के चरम-सौन्दर्य का उद्घाटन किया है और उसके लिए उन्होने सुन्दरतम उपमान ढूंढे हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पद्मावती के रूप वर्णन की विशेषताओं पर विचार करते हुए लिखा है "केशो की दीर्घता, सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार केवल सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उसके लोक व्यापी प्रभाव की ओर संकेत किया है।" इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भी मत कुछ इसी प्रकार का है "केशो की दीर्घता सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उनके प्रभाव की उद्भावना की है। इस छाया और अन्धकार मे माधुर्य और शीतलता है, भीषणता नहीं।" वस्तुत जहां कही जायसी को अवसर मिला है वे तुरन्त श्लेष समासोक्ति आदि के माध्यम से सृष्टि व्यापी सुन्दर सत्ता की ओर इगित करने से नही चूकते —

सरवरि-तीर पद्मिनी आई। खोपा छोरि केस मुकलाई ॥
ओनई घटा परी जग छांहा। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहा ॥
बेनी छोरि छार जौ बारा। सरग पतार होइ अँधियारा ॥

इसी प्रकार पद्मावती के पुतली फेरने से उत्पन्न रस समुद्र को देखिए —

जग डोलै डोलत नैनाहां। उलटि अड़ार जाहि पल मांहा ॥
जबहि फिराहि गगन गहि बोरा। अस वे भँवर चक्र कै डोरा ॥
पवन झकोरहि देहि हिलोरा। सरग लाइ भुंह लाइ बहोरा ॥

मद मृदु हास का विशद चमत्कारिक प्रभाव तो पारस रूप के अन्तर्गत देख ही चुके हैं। अब भौहो का वर्णन देखिए :—

भौंहें स्याम धनुक जनु ताना। जासहुँ फेर हनै विष बाना
उहै धनुक किरसुन पर अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा
ओहि धनुक रावन संघारा। ओहि धनुक कंसासुर मारा
(पदमावती के भृकुटि विलास का सृष्टि व्यापी प्रभाव)

वरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जान दुइ अनी ।।

"वरुनी को बाणों का रूप देकर संसार के रोम-रोम में उसका अस्तित्व घोषित करना वास्तव में उच्चकोटि का संकेत है। यह कवि की प्रतिभा की महानता है।"

—डा०रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४५८

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा ।।
गगन नखत जो जाहि न गने। वे सब बान ओहि के हने ।।
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ देहिं सब साखी ।।
रवि ससि नखत दियहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ।।
'बेनी छोरि झार जो बारा।' 'रैनि होइ जग दीपक लेसा' ।।

"ऊपर की चौपाइयों से स्पष्ट है कि पद्मावती के रूप वर्णन में जायसी ने सौंदर्य के स्पष्ट व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना की है। लगता है कि जायसी की भावना संसार के समस्त रूपों को भेदती हुई उस अप्रीतम अनन्त मूल सुन्दर सत्ता का कुछ प्रातिभासिक ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी। अत वे सृष्टि के नाना पदार्थों मे उसी का प्रतिबिम्ब प्रोद्भासित रूप मे देखते हैं।" प्रो० शिवसहाय पाठक, पद्मावत का काव्य सौंदर्य पृष्ठ ६४।

(स) अप्रस्तुत विधान (उपमान रूप)—पद्मावत में प्रयुक्त उपमानो को स्थूल रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है —

(१) नखशिख वर्णन के उपमान

(२) अन्य विषयो के वर्णनो से सम्बन्धित उपमान।

इन दोनो वर्गों पर प्रकाश डालते हुए प्रो० पाठक लिखते हैं कि "इन दो कोटियों के अन्तर्गत जायसी द्वारा गृहित साहित्यिक परम्परा के रूढ़िगत उपमान, जायसी द्वारा गृहित लोक-परम्परा और लोक-जीवन के उपमान तथा

जायसी के नवीन मौलिक उपमान सम्मिलित हैं। इसी अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत जायसी द्वारा प्रयुक्त भाव वर्णन के उपमान, नखशिख वर्णन के उपमान, तथा वस्तु वर्णन के उपमान भी आ जाते हैं। जायसी ने उत्कृष्ट कोटि के अप्रस्तुत विधान द्वारा पद्मावत के काव्य-सौंदर्य को अपेक्षाकृत अधिक तीव्र बताया है।"

(ढ) यौवन भार भरिता पद्मावती का नखशिख—जन्म खण्ड में ही जायसी ने पद्मावती के संक्षिप्त नखशिख का बड़ा ही मनमोहक और ललित वर्णन किया है। वर्णन का आकर्षण देखिए :—

भै उनन्त पद्मावत बारी। रचि-रचि विधि सब कला सँवारी ॥
जग बेधा तेहि अंग सुवासा। भँवर आइ लुब्धे चहुँ पासा ॥
बेनी नाग मलयागिरि पैठी। ससि माथे होइ दूइज बैठी ॥
भौंह धनुष साधे सर फेरें। नयन कुरंग भूलि जनु हेरें ॥
नासिक कीर कँवल मुख सोहा। पद्मिनी रूप देखि जग मोहा ॥
मानिक अधर, दसन जनु हीरा। हिय हुलसे कुच कनक गँभीरा ॥
केहरि लंक, गवन गज हारे। सुर नर देखि माथ भुंह धारे ॥
जग कोइ दीठि न आवे, आछहिं नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी, तप साधहिं तेहि आस ॥

इसमें अप्रस्तुत उपमानो के द्वारा पद्मावती के अप्रतिम रूप का वर्णन किया गया है। कवि ने श्लेष का सहारा लेकर दो-दो अर्थों की निष्पत्ति की है। एक तो इसमें पद्मावती रूपी बाग का चित्रण किया गया है और दूसरे यौवन भार से झुकी कुमारी पद्मावती के अंग-प्रत्यगों का रूप वर्णन। यहाँ 'बारी' शब्द श्लिष्ट है। बारी का अर्थ बाग भी होता है और बालिका अथवा कुमारी भी।

(य) रूप-सौंदर्य के उपमान—पद्मावत में आठ स्थलों पर नखशिख वर्णन मिलते हैं —

(१) सिंहल की वेश्याओं का अव्यवस्थित नखशिख।

(२) यौवन भार भरिता पद्मावती का नखशिख (रूप वर्णन)

(३) मानसरोवर में स्नान के लिए उद्यत पद्मावती के केश खोलते समय का सक्षिप्त व्यजनात्मक नखशिख।

(४) हीरामन शुक द्वारा रत्नसेन से कथित पद्मावती का नखशिख (रूप वर्णन)।

(५) लक्ष्मी-समुद्र खण्ड में व्यथित, मुरझाई और क्लांत पद्मावती का नखशिख।

(६) नागमती और पद्मावती के वादविवाद में आत्मप्रशसा रूप में वर्णित नखशिख।

(७) पद्मावती का नागमती से आत्मश्लाघारूप में वर्णित सौंदर्य।

(८) अलाउद्दीन से राघव चेतन द्वारा कथित पद्मावती का नखशिख।

इनमें से प्रथम को छोड शेष सभी पद्मावत से सम्बन्धित हैं। इन सभी स्थानो पर जायसी ने शरीर के विभिन्न अगो उपागो के लिए जिन उपमानो के प्रयोग किए हैं वे समष्टि रूप में निम्नलिखित हैं।

(१) केशराशि—जिसके लिए नाग, नागिन, कस्तूरी, प्रेम जजीर, भ्रमर तथा राहु आदि प्रयुक्त हुए हैं।

(२) मस्तक (मांग)—यमुना में सरस्वती, वीरबहूटी, विद्युत, आरक्त अस्ति कचन रेखा, सूर्यकिरण, वग पक्ति, राग रजित मधु ऋतु आदि।

(३) ललाट—सूर्यकिरण, द्वितीया का चन्द्र, पारस ज्योति आदि।

(४) भौंह—धनुप, आदि।

(५) नेत्र—रक्त कमल, खजन, तुशा, तरग मानिकमय सरोवर, आदि

(६) बरुनी—राम रावण की सेना, सधान किया गया वाण।

(७) नासिका—शुक, सेतु वध, आर्स, तिल पुष्प आदि।

(८) अधर—दुपहरिया फूल, विद्रुम, माणिक्य, सूर्य (प्रात कालीन रक्त रजित आर्स।

(९) दाँत—हीरा, दाडिम, विद्युत, श्याम, मकोय आदि।

(१०) रसना—अमृत कौंप, सरसुती की जीभ आदि।

(११) कपोल—खाँड के लड्डू, कमल, गेंद नारंग, नारंग आदि ।

(१२) तिल—घुंघुची का काला मुंह, भ्रमर, विरह की स्फुलिंग तथा अग्निवाण व ध्रुव आदि ।

(१३) श्रवण—नक्षत्र खचित चन्द्र, सूर्य, सीप आदि ।

(१४) मुख—चन्द्र तथा पद्मनाल आदि ।

(१५) ग्रीवा—कम्बु, सुराही, मयूर, घिरिन परेवा, तमचुर आदि ।

(१६) भुजा—कनक दण्ड, कदली गात, पद्मनाल, चंदन खंभ आदि ।

(१७) हथेली—कमल ।

(१८) स्तनद्वय (उरोज)—कंचन लड्डू, कनक कचौड़ी, कंचन बेल, नारंगी, जंभीर, श्रीफल, अग्निवाण, तुरंग, लट्टू आदि ।

(१९) कुचाग्र भाग—श्याम छत्र ।

(२०) रोमावलि—श्याम सर्पिणी ।

(२१) कटि—भृंग, कमल नाल के रेशे, केहरिलंक ।

(२२) नाभि—सागर भँवर ।

(२३) पीठ—मलयगिरि ।

(२४) उर—कदली स्तम्भ ।

(२५) जाँघ—केरा खँभ ।

(२६) चरण—कमल ।

(२७) गति—गजगति, हंसगति ।

उपमान रूपों का सौन्दर्य—उपर्युक्त समस्त बातों की चर्चा करते हुए ०० पाठक लिखते हैं कि "संक्षेप में नखशिख और रूप वर्णन में प्रयुक्त हुए पमाओं की दो कोटियां हैं (१) प्रकृति से गृहीत उपमान (२) अन्य सांसारिक स्तुओं से सम्बन्धित उपमान । उक्त नखशिख वर्णन में अधिकांशत. उपमान कृति से गृहीत हैं । कमल भ्रमर, चन्द्र, सूर्य प्रकृति उपमान प्रकृति क्षेत्र से हीत हैं, खंभ प्रभृति उपमान अन्य सांसारिक वस्तुओं से गृहीत उपमानों की ोटि में आते हैं । अन्य सांसारिक वस्तुओं से गृहीत उपमानों की संख्या

(३) मानसरोवर में स्नान के लिए उद्यत पद्मावती के केश खोलते समय का सक्षिप्त व्यजनात्मक नखशिख ।

(४) हीरामन शुक द्वारा रत्नसेन से कथित पद्मावती का नखशिख (रूप वर्णन) ।

(५) लक्ष्मी-समुद्र खण्ड में व्यथित, मुरझाई और क्लांत पद्मावती का नखशिख ।

(६) नागमती और पद्मावती के वादविवाद में आत्मप्रशसा रूप में वर्णित नखशिख ।

(७) पद्मावती का नागमती से आत्मश्लाघारूप में वर्णित सौदर्य ।

(८) अलाउद्दीन से राघव चेतन द्वारा कथित पद्मावती का नखशिख ।

इनमें से प्रथम को छोड शेष सभी पद्मावत से सम्बन्धित हैं । इन सभी स्थानो पर जायसी ने शरीर के विभिन्न अगो उपागो के लिए जिन उपमानों के प्रयोग किए हैं वे समष्टि रूप में निम्नलिखित हैं ।

(१) केशराशि—जिसके लिए नाग, नागिन, कस्तूरी, प्रेम जजीर, भ्रमर तथा राहु आदि प्रयुक्त हुए हैं ।

(२) मस्तक (मांग)—यमुना में सरस्वती, वीरबहूटी, विद्युत, आरक्त अस्ति कचन रेखा, सूर्यकिरण, बग पक्ति, राग रजित मधु ऋतु आदि ।

(३) ललाट—सूर्यकिरण, द्वितीया का चन्द्र, पारस ज्योति आदि ।

(४) भौंह—धनुष, आदि ।

(५) नेत्र—रक्त कमल, खजन, तुशा, तरग मानिकमय सरोवर, आदि ।

(६) वरुनी—राम रावण की सेना, सधान किया गया वाण ।

(७) नासिका—शुक, सेतु बध, आर्स, तिल पुष्प आदि ।

(८) अधर—दुपहरिया फूल, विद्रुम, माणिक्य, सूर्य (प्रात कालीन) रक्त रजित आर्भ ।

(९) दॉत—हीरा, दाडिम, विद्युत, श्याम, मकोय आदि ।

(१०) रसना—अमृत कौंप, सरसुती की जीभ आदि ।

(११) कपोल—खाँड के लड्डू, कमल, गेद नारग, नारग आदि।

(१२) तिल—घुंघुची का काला मुंह, भ्रमर, विरह की स्फुलिग तथा अग्निवाण व ध्रुव आदि।

(१३) श्रवण—नक्षत्र खचित चन्द्र, सूर्य, सीप आदि।

(१४) मुख—चन्द्र तथा पद्मनाल आदि।

(१५) ग्रीवा—कम्बु, सुराही, मयूर, घिरिन परेवा, तमचुर आदि।

(१६) भुजा—कनक दण्ड, कदली गात, पद्मनाल, चदन खभ आदि।

(१७) हथेली—कमल।

(१८) स्तनद्वय (उरोज)—कचन लड्डू, कनक कचौडी, कचन वेल, नारगी, जभीर, श्रीफल, अग्निवाण, तुरग, लट्टू आदि।

(१९) कुचाग्र भाग—श्याम छत्र।

(२०) रोमावलि—श्याम सर्पिणी।

(२१) कटि—भृग, कमल नाल के रेशे, केहरिलक।

(२२) नाभि—सागर भँवर।

(२३) पीठ—मलयगिरि।

(२४) उर—कदली स्तम्भ।

(२५) जाँघ—केरा खँभ।

(२६) चरण—कमल।

(२७) गति—गजगति, हसगति।

उपमान रूपों का सौन्दर्य—उपर्युक्त समस्त बातो की चर्चा करते हुए प्रो० पाठक लिखते हैं कि "संक्षेप में नखशिख और रूप वर्णन में प्रयुक्त हुए उपमाओ की दो कोटियां हैं (१) प्रकृति से गृहीत उपमान (२) अन्य सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्धित उपमान। उक्त नखशिख वर्णन में अधिकांशतः उपमान प्रकृति से गृहीत हैं। कमल भ्रमर, चन्द्र, सूर्य प्रकृति उपमान प्रकृति क्षेत्र से गृहीत हैं; खभ प्रभृति उपमान अन्य सांसारिक वस्तुओ से गृहीत उपमानों की कोटि मे आते हैं। अन्य सांसारिक वस्तुओ से गृहीत उपमानों की सख्या

अपेक्षाकृत कम है। माग के लिए आर्सवार, नासिका के लिए १ सेतुवध और २ तलवार एव उरोज के लिए क्रमश कमल के लड्डू और लट्टू।

उपमानों के चयन मे कतिपय स्थलों पर जायसी की मौलिकता तथा स्वतन्त्र उन्मुक्त नवीन कल्पना शक्ति ने सौन्दर्य को जीवत रूप प्रदान किया है। मौलिक उपमानों के आनयन में जायसी परम्परागत उपमानों की सीमित परिधि से ऊपर उठे हुए तथा मुक्त हैं। जायसी के मौलिक उपमान प्रधानतः प्रकृति से गृहीत न होकर अन्य सांसारिक पदार्थों से गृहीत हैं।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन बडे ही मनोयोग से किया है। वह पाठको को सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना मे मग्न करने वाला है। अपूर्व सुन्दरी पद्मिनी का सौन्दर्य जायसी की तूलिका से बहुत सुन्दर और उचित रूप में आका गया है। कही-कही वर्णन में अतिशयोक्ति अवश्य आ गई है पर वहाँ भावात्मक दृष्टि अथवा अनुभूति-पक्ष की प्रधानता है। इस प्रकार जायसी का रूप वर्णन उक्त दोष से वच जाता है। पद्मिनी का आकर्षण लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि में पूर्ण समर्थ है।

प्रश्न १६—'जायसी का पद्मावत एक विरह-काव्य है।' इस कथन की तर्क सगत विवेचना करते हुए बताइए कि उनकी आध्यात्मिकता ने इसे कुरूप तो नहीं वनाया !

जायसी एक सूफी कवि हैं। प्रत्येक भारतीय सूफी कवि ने अपनी कविता को, सूफी धर्म के सिद्धान्तो को जनता तक पहुँचाने का माध्यम बनाया है। सूफी साधना में अखिल सृष्टि एव प्रकृति को उस परम प्रियतम की प्राप्ति के लिए उत्कठित और व्यथित रूप मे चित्रित किया गया है। सारी प्रकृति उसके विरह में दुखी है क्योंकि वह उस प्रियतम का अभिन्न अश थी और पता नही किस कारणवश उसका उससे विछोह हो गया।

"घरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह विछोहू,' ॥

—जायसी

चूंकि सारी सूफी साधना उस परम प्रियतम के विरह की साधना है, इसलिए सम्पूर्ण सूफी साहित्य में उसी का स्वर प्रधान है। पद्मावत काव्य का सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूरे काव्य मे विरह तत्व ही प्रमुख होकर बोल रहा है। रत्नसेन रूपी जीवात्मा पदमावती रूपी ब्रह्म अथवा बुद्धि के विरह में तडपती हुई चित्रित की गई है। गुरु रूपी सुआ के द्वारा उस के विरह यज्ञ मे ज्ञान की आहुति पडती है जिससे तडपन-शिखा प्रज्वलित होती है। पदमावती को प्राप्त कर लेने के उपरात रत्नसेन उसके सयोग का पूर्ण सुखोपभोग भी नहीं कर पाता कि तब तक कवि नागमती से अगाध विरह-सागर की गाथा छेड बैठता है। फलत विवश होकर रत्नसेन को पदमावती सहित सचिन्त मस्तिक से चित्तौड लौटना पडता है। सिंहलगढ से चित्तौड लौटते समय मार्ग में रत्नसेन का जहाज राक्षस द्वारा तूफान मे डाल दिया जाता है जहाँ पद्मावती और रत्नसेन का विछोह हो जाता है। जहाज नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। बडी कठिनाइयो के उपरात समुद्र की कन्या लक्ष्मी की कथा के साथ कवि दोनो का पुनर्मिलन कराता है। समुद्र से पाँच रत्न प्राप्त कर रत्नसेन और पदमावती चित्तौड़ पहुँचते हैं। वहाँ कुछ दिनो के उपरान्त ही राघवचेतन का निकाला होता है, वह अलाउद्दीन के दरबार में जाकर पदमावती के अपूर्व सौन्दर्य का बखान करता है। रूप का लोभी अलाउद्दीन उसके उकसाने से चित्तौड पर आक्रमण कर देता है। काफी लम्बा सघर्ष चलता है। रत्नसेन बन्दी होता है, पदमावती तथा गोरा बादल के बुद्धि-कौशल से वह पुन. छूटता है। अन्त में देवपाल से युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु होती है और दोनो रानियाँ उसकी शव के साथ सती हो जाती हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण कथा को पढने के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

१—पद्मावती रूपी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए सभी बेचैन है। समस्त जड-चेतन की विरह-व्यथा मे रत्नसेन के वियोग को कवि ने प्रखरता प्रदान की है। रत्नसेन और पद्मावती ही इन विस्तृत विरह कथा के केन्द्र बिन्दु हैं।

२—नागमती के विरह के आँसुओं से पद्मावत की आत्मा भीगी हुई है।

३—भारतीय सास्कृतिक विन्दु जो नागमती के माध्यम से काव्य में चित्रित हुआ है, विरह की स्याही से ही लिखा गया है ।

४—प्रकृति का विरह व्यथित रूप ही काव्य में प्रमुख रूप से चित्रित हुआ है। सयोगकालीन प्रकृति उतने व्यापक, विशद तथा सजीव रूप में चित्रित नही हुई है जितने विशद रूप में विरहकालीन प्रकृति ।

५—काव्य के अत्यत मार्मिक और अधिकाधिक सवेदनशील स्थल विरह के प्रसग ही हैं जिनके द्वारा काव्य में प्राण-प्रतिष्ठा हुई है ।

६—पद्मावत के शब्द-शब्द, प्रत्येक घटना और वर्णन में जायसी का विरहाकुल हृदय डोलता नजर आता है यही कारण है कि सयोग के स्थल बहुत कम हैं और जो हैं भी उनमें कवि का हृदय पूर्णत नही रम सका है ।

७—विरह के वर्णन जायसी ने बडी ही सावधानी, लगन और एक निष्ठा के साथ किये हैं ।

८—पद्मावत की मूल कथा का आरम्भ विरह से होता है और उत्कर्ष तथा अन्त भी विरह में ही हुआ है ।

९—पद्मावत में वियोग शृ गार की प्रधानता है और इसी का काव्य में पूर्ण परिपाक भी हुआ है। अस्तु काव्य का मूल रस वियोग शृ गार (विरह) ही कहा जायगा ।

१०—सम्पूर्ण काव्य को पढने के वाद एक ऐसी शान्ति का अनुभव होता है जो दर्द, तडप तथा टीस और आकुलता आदि उपकरणो से निर्मित हुई है। एक वाक्य में इसे यो कहा जा सकता है कि पद्मावत काव्य विरह-काव्य है ।

इतना स्पष्ट हो जाने के उपरात अब हमें यह देखना है कि पद्मावत के विरही-स्वरूप (विरह-तत्व) को उसकी आध्यात्मिकता ने कही विकृत तो नहीं किया है ।

इस दृष्टि से पद्मावत पर जब हम विचार करते हैं तो हमें यह कहना पडता है कि पद्मावत की आध्यात्मिकता ने उसके विरही स्वरूप (अर्थात् शुद्ध विरह-काव्य-तत्व) को निश्चय ही विकृत कर दिया है। यदि कवि ने

पद्मावत को अपनी आध्यात्मिकता के प्रचार का माध्यम न बनाया होता तो काव्य का स्वरूप और भी निखरा होता, सरसता बढी होती और काव्य-सिद्धांतो की अधिकाधिक रक्षा हुई होती। परन्तु दुख है कि कवि ने वैसा नही किया (करता भी कैसे, क्योकि उसके काव्य-प्रणयन का प्रमुख उद्देश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार था)। परिणाम स्वरूप काव्य के प्रवाह मे बडा विघ्न पड़ा है, उसकी प्रगति और विकास में व्याघात पहुँचा है। कथा बोझिल सी लगती है, अभिव्यक्ति मे शैथिल्य आ गया है और साथ ही साथ स्वाभाविकता को भी भारी चोट पहुँची है। अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ काव्य के साथ कवि की आध्यात्मिकता का मेल नही हो सका है जिससे कथा प्रवाह मे जो बाधा पड़ी है वह तो पडी ही है, काव्य-सौन्दर्य मे पर्याप्त विकृति आ गई है। वहाँ कला का रूप निखर नही सका है। पाठक ऐसे स्थलो पर एक विचित्र खीझ और नीरसता का अनुभव करता है। योग और रसायन के वर्णनो में तो यह स्थिति प्राय. सभी स्थानो पर आई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि की आध्यात्मिकता के दुराग्रह से उसके कवित्व को भारी क्षति पहुँची है। धर्मान्धता ने भले ही कवि को अपनी इस कमजोरी की ओर ध्यान न देने दिया हो परन्तु सामान्य पाठक तथा जिज्ञासुओ को यह कमी सदैव खटकेगी।

अन्त में निष्कर्ष और सारांश रूप मे अब हम यह कहेंगे कि पद्मावत एक विरह काव्य है परन्तु उसके प्रणेता के अध्यात्मिक दुराग्रह ने काव्य सौन्दर्य को भारी क्षति पहुँचाई है, उसका वास्तविक स्वरूप विकृत हो गया है।

प्रश्न १७—लौकिक प्रेम के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक-प्रेम की गंभीर-व्यंजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य है—स्पष्ट कीजिए।

जायसी ने अपने पद्मावत के अन्त में लिखा है—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह कछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट मांहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ?॥

बीतेगी। सास ननद के कटु वचन से तात्पर्य यह है कि वहाँ कर्मों की गणना होगी और जीवन के गुणो अवगुणो की ही आलोचना होगी। मुसलमानो के मत से पुनर्जन्म नही होना, इसी से जायसी लिखते हैं **"दारुण-ससुर न आवैं देहीं।"** अन्तिम दोहे में अपने प्रेम-पथ की झलक भी उन्होने एक ही शब्द **"पिउ पियार"** मे दे दी है। सूफी प्रेम में सुख और आनन्द की उतनी कल्पना नही है जितनी पीडा की, इसलिए वे कहते हैं कि सबसे अधिक तो प्रियतम का प्यार है जिसकी उलझनें और आशकाएँ अनुमानित नही हो सकती। कबीर ने भी इस लोक को नैहर और परलोक को ससुराल कहा है। —डा० गौतम

खेलि लेइ नैहर दिन चारी।
पहिली पठौनी तीनि जन आये, नाऊ, ब्राह्मण बारी॥
दुसरी पठौनी पिय आपुहि आये, डोली, बाँस, कहारी॥
धरि बहियाँ डुलियाँ बैठावें, कोउ न लगत मोहारी॥
अब कर जाना बहुरि न अवना, इहै भेंट अकवारी॥
—कबीर

तालाब-तट पर खडी पद्मावती का सौन्दर्य देखिए—

सरवर तीर पद्मिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई॥
ससि मुख अंग मलयगिरि वासा। नागिनि झापि लीन्ह चहुँपासा॥
ओनई छटा परी जग छाँहाँ। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ॥
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चांद परगसा॥
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा मेंह चंद देखावा॥
दसन दामिनी कोकिल भाखी। भौंहैं धनुष गगन लेइ राखी॥
नैन खंजन दुइ केलि करेंही। कुच-नारग मधुकर रस लेंही।
सरवर रूप विमोहा, हिए हिलोरहिं लेइ।
पाव छुवै मकु पावौं, एहि मिस लहरहिं देइ॥

सरवर का रूप-विमुग्ध हो हिय में हिलोरे लेना देख सूर के वसुदेव द्वारा कृष्ण को ले जाते समय यमुना का उन पावन-चरणो के स्पर्श के लिए तरगाकुल होना याद आ जाता है।

सखियो सहित स्नान करते समय पद्मावती—

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन-जोति नग-हीर॥

तोते द्वारा पद्मावती के रूप वर्णन (नख-शिख) की एक झाँकी देखिए—

भँवर केस वह मालति रानी। विसहर लुरहि लेहिं अरघानी॥
वेनी छोरि झारु जौ वारा। सरग पतार होइ अँधियारा॥
कोवल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअँग विसारे॥
वेधे जानि मलयगिरि वासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँपासा॥
घरवारि अलकें विष भरी। सिकरीं पेम चहैं गिउ परी॥
अस फँदवारे केस वै, परा सीस गिउ फांद॥
अस्तौ कुरी नाग सव, अरुझ केस कै बाध॥

× × ×

वरुनी का वरनौ इमि वनी। साधे वान जानु दुइ हनी॥
उन वानन्ह अस को जो न मारा? वेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जांहि न गने। वै सव वान ओहि के हने॥
धरती वान वेधि सव राखी। साखी ठाढ देहिं सव साखी॥
रोंव रोंव मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सूत वेध अस गाढ़े॥
वरुनि-वान अस ओपेंह, वेधे रन-वन-ढांख।
सौजहिं तन सव रोवां, पंखिहि तन सव पांख॥

× × ×

जेहि विन दसन जोति निरमई। वहुतन्ह जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।
जेंह जेंह विहँसि सुभावहि हँसी। तेंह-तेंह छिटकि जोति परगसी॥
दामिनि दमक न सरवर पूजा। पुनि वह जोति और को दूजा॥
विहँसत हसत दसन तस चमके, पाहन उठे झरक्कि।
दारिवं सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि॥

गगन गरजि बरसै ग्रमी, बादल गहर गम्भीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर।।

उसी उल्लासमय स्थिति का निरुपण जायसी ने उक्त पद में किया है।

—डा० मनमोहन गौतम

रत्नसेन को यही छोड दीजिए ग्रौर ग्राइए ग्रब पद्मावती के पास चलें—

राजा के योग का ग्रप्रत्यक्ष प्रभाव पद्मावती पर पड रहा है। वह उसके प्रेमवश हो गयी ग्रौर उसे वियोग सताने लगा। रात्रि में उसे नीद नही लगती, शय्या काटने दौडती है। शीतलता प्रदायक चन्द्रमा, चदन ग्रादि उसे ग्रगार से लगते हैं। वह उसके गभीर विरह में जलने लगती है। रात, कल्प के समान बडी मालूम पडती है। क्षण-क्षण का समय युग-युग के समान बडी कठिनाई से कटता है। जब रात नहीं कटती तो वीणा ले लेती है कि शायद सगीत मे रांत कट जाय, पर वीणा का स्वर सुनकर चन्द्रमा का वाहन मृग स्वर पर मुग्ध होकर ठहर जाता है इस प्रकार रात का बीतना ग्रौर कठिन हो जाता है—

गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि बाहन तब रहै ग्रोनाई।।
पुनि धनि सिह उरे है लागै। ऐसी बिथा रैनि सब जागै।।
कहा सो भँवर कँवल रस लेवा। ग्राइ परहु होइ घिरिन परेवा।।
सो धनि बिरह पतग होइ, जरा चाह तेहि दीप।
कत न ग्रावहु भृङ्गि होइ, को चदन तन लीप।।

सूरदास ने भी इसी प्रकार राधा की ग्राकुलता के वर्णन क्रम मे लिखा है—

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हांक्यो, नाहिन होत चद को हरिबो।।

पद्मावती की यह ग्रवस्था देख उसकी धाय समझाती है—

जब लगि पिउ न मिलै तोहि, साधु पेम कै पीर।
जैसे सीप सेवाति कँह, तपै समुद मँझ नीर।।

(यहां जायसी ने सूफी मतानुसार प्रिय मिलन से पूर्व प्रेम की पीर का सकेत किया है।)

इसा बीच सुआ पहुँच जाता है और उसके प्रति रत्नसेन की गम्भीर आसक्ति का विशद वर्णन करता है। रत्नसेन की अनुरक्ति और उसके सकटो का विवरण सुन पद्मावती का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और वह उसके प्रेम में विभोर हो उठती है।

सुनि कै विरह चिनगि ओहि परी। रतन पाव जौं कंचन करी॥

× × ×

हीरामन जौं कही रस वाता। सुनि कै रतन पदारथ राता॥

पद्मावती को सब समझा बुझा हीरामन पुन रत्नसेन के पास लौटता है—

आवा सुआ बैठ जँह जोगी। मारग नैन, वियोग वियोगी॥
आइ पेम रस कहा सँदेसू। गोरख मिला, मिला उपदेसू॥
तुम्ह कँह गुरु मया वहु कीन्हा। लीन्ह अदेस, आदि कँह दीन्हा॥
सवद एक होइ कहा अकेला। गुरु जस भृङ्गि, फनिग जस चेला॥
भृङ्गि ओहि पंखिहि पै लेई। एकहि वार छुए जिउ देई॥
ताकँह गुरू करै असि माया। नव अवतार देइ, नै काया॥
होइ अमर अस मरि कै जीया। भँवर कमल मिलि कै मधु पीया॥
आवै रितु वसंत जव, तव मधुकर तव वासु।
जोगी जोग जो इमि करहिं, सिद्धि समापति तासु॥

इस प्रकार कथा आगे वढती है। अनेक लडाई झगडे और वादविवाद के उपरान्त दोनो का विवाह होता है और फिर वंधन मुक्त हो दोनो मिलते हैं। देखिए प्रथम समागम के अवसर पर पद्मावती के मुंह से कैसे व्यंग गर्भित वाक्य जायसी ने कहलवाये हैं—

मानचिन्ह पिउ कापौं मन माँहा। का मै कहव, गहव जौ वाहाँ॥
वारि वैस गहै प्रीति न जानी। तरुनि भई मैमत भुलानी॥
जोवन गरव न किछु मैं चेता। नेह न जानौं साम कि सेता॥
अव सो कंत जो पूछिहि वाता। कस मुख होइहि, पीत कि राता॥

इसी प्रकार पद्मावती के विदाई के समय का दृश्य देखिए—

हौं रे पथिक पखेरू, जेहि वन मोर निवाहु।
खेलि चला तेहि वन कँह, तुम अपने घर जाहु ॥

× × ×

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा॥
गा अंधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि छूटी॥
'अस्ति-अस्ति' सब साथी बोले। अब जो अहे, नैन निज खोले॥

× × ×

ओहि मिलान जो पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई॥
है आगे परवत कै बाटा। विसय हार, अगम सुठि घाटा॥
विच-विच नदी खोह औ नारा। ठांवहि ठांव बैठ बटमारा॥

× × ×

गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया। पुरुष देखु ओही कै छाया॥
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे। जेइ पावा तेहि आपुहि चीन्हे॥
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तँह फिरहि पांच कोतवारा॥
दसंव दुआर गुपत एक ताका। अगम चढ़ाव, बाट सुठि बाका॥
भेदै जाइ कोइ वह घाटी। जो लह भेद चढ़ै होइ चांटी॥
गढ तर कुंड सुरग तेहि मांहा। तह वह पथ, कहौं तोहि पांहा॥
दसंव दुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा॥

× × ×

अन्तिम उद्धरण सिंहल की हाट का देखिए—

जिन्ह एहि हाट न लीन्ह वेसाहा। ता कँह आन हाट कित लाहा ?
कोई करै वेसाहनी, काहू केर विकाइ।
कोइ चलै लाभ सों, कोइ मूर गँवाइ॥

निष्कर्ष रूप में अब हम यह कहेंगे कि लौकिक प्रेम के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की गभीर-व्यजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्न १८—'नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य में एक अद्वितीय कृति है।' समझाइये।

रत्नसेन की प्रथम परिणीता श्यामांगी नागमती का विरह-वर्णन पद्मावत का प्राण-विन्दु है। जायसी का भावुक हृदय इस भारतीय हिन्दू रमणी के पवित्र-आँसुओं में डूब कर अपनी सुध-बुध खो बैठा है। विरह-विदग्ध हृदय की संवेदनशीलता के इस चरम उत्कर्ष को देख ऐसा लगता है जैसे प्रेम के चतुर चितेरे कवि ने नागमती को स्वय में साकार कर लिया हो और उसके हृदय की व्यथा के रूप में अपने ही हृदय की व्यथा को उँडेलने लगा हो। परम प्रियतम के चिरंतन-वियोगी सूफी-भक्त-कवि का हृदय, अश्रु का जलजात बन गया है। नागमती के विरह-वर्णन में नागमती नहीं व्यथा स्वय बोलती है।

निर्मोही प्रियतम के प्रवास से ही इस विरहिणी की विरह-कथा का प्रारम्भ होता है। उसके एकनिष्ठ प्रेम और अपूर्व सौन्दर्य की अवहेलना करके किसी अज्ञात रूपसि के प्रणय मे उन्मत्त हो उसका पति चला गया। उसके व्यवहार-विश्वास, पूजना-अर्चना तथा धर्म और सेवा को पति की निर्मम अवहेलना की ठेस लगी। वह विचलित हो गई। स्त्री का ऐसा अपमान, जिसमें उसका रूप कुरूप घोषित कर दिया जाय, उसकी यौवन-अभिलाषा को दुत्कार दिया जाय, विश्वास के स्वाभिमान को ठुकरा दिया जाय—और वह भी अपने ही पति द्वारा—नागमती को मिला था। जिस पति ने उसके साथ अनेक वर्षों तक यौवन की कलकेलियाँ कीं, जीवन की इन्द्रधनुषी कल्पनाओं के मधुमय ताने-वाने बुने, उसमें इतनी भी श्रद्धा शेष न रह गई कि मोह-तन्तु को एक झटके से तोड किसी कथित स्त्री की रूप-शिखा का शलभ बन प्रवासी हो गया, निवेदन तक न सुना। कितना निठुर व्यवहार था। कितनी हृदय-विदारक क्रिया थी। ऐसी दशा में कठोराघात से व्याकुल हो मानिनी नारी के लिए एक ही मार्ग रहता है कि या तो वह जीवन से वैराग्य ले उस जगत प्रभु के चरणों में अपने को समर्पित कर दे अथवा सदैव के लिए इस जीवन लीला का क्रूर-विसर्जन कर दे। अपमान और तिरस्कार की अग्नि में तिल-तिल जलना किसी भी रूप और प्रेम गर्विता को मान्य नहीं। किन्तु प्रणय-सागर के कुशल नाविक जायसी ने

अपनी नागमती को इनमें से किसी भी पथ की पथिनी नही वनाया, अपितु उसके नारित्व और सतीत्व को एक दिव्य आभा प्रदान की, महाशक्ति दी। कठिन परीक्षा ली और अंत में उसके कुदन से खरे रमणीत्व को प्रकट कर सहृदय पाठको को चकित कर दिया।

नागमती का पति-प्रेम विरहावस्था मे प्रगाढतर हो चला। सयोगकालीन सुखद-केलियो की भांति यह विरह भी उसके पति ने ही दिया था, इसलिए उसने उसका हँसकर अभिनन्दन किया और इस काल में भी पूर्ण मनोयोग से पति की अराधना की। पथ पर, उसके प्रत्यागमन की आशा से पलकें बिछाये रही, किन्तु जव पूरा वर्ष बीत गया और निर्मोही न लौटा, तो पति परायण का हृदय डोल गया, विकलता रोम-रोम से विद्रोह करने लगी। मन को शका हो चली कि यह प्रवास कही आजीवन प्रवास तो नही वन जायगा। वेदना की ज्वाला में हृदय-तन्तु टूट-टूट भस्म होने लगे और सुधि की आँधी प्रवल वेग गामिनी वनी।

"नागमती चितउर-पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ॥
नागर काहु नारि वस परा। तेइ मोर पिउ मोसों हरा ॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात वरु जीऊ ॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि वियाधा लीन्ह ?
झुरि-झुरि पींजर हौं भई, विरह-काल मोंहि दीन्ह ॥"

विरह व्यथिता राजमहिषी को राजधानी की वर विलास-सज्जा के प्रति रचमात्र भी आकर्षण न रह गया, समस्त ससार उसे भयावह प्रतीत होने लगा। प्रकृति की सौन्दर्य स्निग्ध कमनीयता, मलयज मोहकता और वासती कौमार्य आदि सभी कष्टदायक वन गये और जव प्रकृति षट ऋतु बार-वार अपना परिधान वदलती हुई सौन्दर्य-सुषमा से होड करने लगी तो नागमती की वेदना त्रिजटा के समान विशाल देह हो गई।

पिउ वियोग अस वाउर जीऊ। पपिहा नित वोले पिऊ-पीऊ ॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुआ गएउ पिउ नामा ॥
विरह-वन तन लाग न डोली। रकत पसीज भीज गई चोली ॥

सूखा हिया हार भा भारी। हरे हरे प्रान तर्जाहि सब नारी ॥
खन एक आव पेट मँह सांसा। खनहिं जाइ जिउ होइ निरासा ॥
पवन डोलार्वाहि सींचहिं चोला। पहर एक समुर्झाहि मुख वोला ॥
प्रान पयान होत को राखा। को सुनाव पीतम कै भाखा ॥

आहि जो मारै विरह कै, आगि उठे तेहि लागि।
हंस जो रहा शरीर मँह, पांख जरा गा भागि ॥

आकाश मे पावस के मेघ चढ आए; पृथ्वी की तप्त छाती शीतल हो चली। झुलसी हुई प्रकृति हरी-भरी—हो गई। वृक्ष, लता और पुष्प सबकी काया मिलन-आंसुओ से धुल-धुल एक अपूर्व सौन्दर्य विखेरने लगी। जड़-चेतन उल्लसित हो उठे; पर हाय रे भाग्य ! नागमती का प्रियतम नही लौटा। जग को सुखदायक लगने वाले पावस-कण उसके लिए वाण वन गए—"खडग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुन्द-बान वरसहि घनघोरा ॥" विकल नागमती कातर स्वरो में पति को पुकार-पुकार उससे विनय करने लगी—"कन्त उवारु, मदन हौं घेरी।"

श्रावण में मेघो ने मरुथल मे भी झीलें वना दी। उन्माद के साथ वर्षा का प्रादुर्भाव हुआ। हृदय में हिलोरें आई, पवन के साथ झूलते हुए वादलो को देखकर सखियो ने हिंडोला सजा दिया किन्तु नागमती का हृदय हिंडोले के समान झूलकर भी विरह के हाथ मे था —

हिय हिंडोल अस डोलै मोरा।
विरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥

वर्षा के जल ने जल-थल एक कर दिया—वेदना के आंसू भी उतना ही विस्तृत और महान समुद्र भर रहे थे···दोनो को पार करने के लिए पल अथवा परो की आवश्यकता थी। नागमती ने कहा—

"परवत समुद अगम विच, वीहड घन वन ढांख।
किमि कै भेंटों कंत तुम्ह, ना मोहि पांव न पांख ॥"

रत्नसेन वहां अपने पैरो से गया था, और हीरामन पखो से—नागमती

स्त्री है, उसके पास न तो पाँव हैं और न पख "वह प्रियतम तक कैसे पहुँच सकती है।

वर्षा समाप्त हो गई और निरभ्र नीलाकाश में शरद का चन्द्रमा शुभ्र क्रीडा करने लगा। हस, सारस, और खजन लौट आए किन्तु कन्त न फिरे, "विदेसहि भूले'। विरह के कारण नागमती को चन्द्रमा में अजस्र दाह, राहू का सा डसन और कृष्णपक्ष का सा अधकार दिखाई पड़ने लगा। प्रिय के बिना आने वाली दीपावली भी उसके मन में आलोक न भर सकी और उसका प्रागण दीप शिखा के बिना ही सूना रह गया। उसे रत्नसेन के अभाव का कष्ट था। और 'सवति दुख दूजा' के कारण वह और व्याकुल थी। इसलिए अपने दुख की अवधि उसे दीर्घतम प्रतीत होती थी। यदि सवति न होती तो रत्नसेन को नागमती की स्मृति स्वभावत आती किन्तु स्त्री का प्रेम उसे पद्मावती से प्राप्त हो रहा था। इसलिए अपनी स्मृति जागृत कराने के लिए भौंरे और काग से उसने अपना सदेश इस प्रकार कहलाया—

प्रिय सो कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुँआ हम लाग॥"

फागुनी उल्लास ने भू-नभ सब में नवजीवन भर दिया। चतुर्दिक केलि-क्रीडायें होने लगी पर नागमती की दशा और ही थी।

तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहिं-झरहिं वन ढाखा। भइ ओनत फूल फरि साखा॥
करहि वनस्पति हिये उलासू। मो कँह भा जग दून उदासू॥
फागु करहिं सब चाँचरि चोरी। मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कत अब तोरे॥

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उडि परै, कत धरै जँह पाँव।

कितनी गहरी व्यथा और पति प्रेम की एक निष्ठा है। इसी प्रकार बारहो मास रानी के दुख की उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहे। धीरे-धीरे वह दशा भी आ पहुँची जब वह राजमहल छोड़ वन-उपवन मे भटकने लगी। पति वियोग

२. बावली रानी नागमती को अपने रानीपन की सुधि न रही और वह सामान्य विरहिणी नारी की भाँति विलख-विलख अपना तन मन भस्म करने लगी। जगत माता सीता के खो जाने पर जिस प्रकार भगवान राम एक सामान्य मानव की भाँति बावले हो वन के खग-मृग और मधुकरस्रेनी से उनका पता पूछते फिरे थे (हे खग, मृग, हे मधुकरस्रेनी ! तुम देखी सीता मृगनयनी ?) उसी प्रकार नागमती पति-वियोग में बावली हो वन के सभी पशु-पक्षियो और जीव-जंतुओ से अपना विरह-निवेदन करती फिरने लगी। सारी सृष्टि उसके आँसुओ से भीग गई और हर एक पशु-पक्षी का हृदय उसकी व्यथा से द्रवित हो उठा। वियोगाग्नि की भीषणता का अन्त न था :—

जेहि पंखी के निअर होइ, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

आकाश को कपा देने वाले उसके विलाप से घोसलो के बैठे हुए पक्षियो की नींद हराम हो गई—

फिरि-फिरि रोव, कोइ नहिं डोला। आधी रात विहंगम बोला॥
तू फिरि-फिरि दाहै पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी॥

दुर्भाग्य की निविड-निशा में, पक्षी द्वारा दया और सहानुभूति के इन शब्दो को सुन नागमती ने अपनत्व के भाव से कहा :—

चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न संदेसा टेक।
कहौं विरह-दुख आपन, बैठि सुनहु दंड एक॥

पक्षी सदेसा ले जाने को तैयार हो जाता है। अब मान, गर्व आदि से रहित, सुख भोग की लालसा से अलग और नम्र, शीतल तथा विशुद्ध प्रेम के प्रतिविम्ब से आलोकित पति-परायणा का सदेश सुनिए :—

पद्मावति सौं कहेउ, विहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कहँ हिए दुंद दुख-पूरा॥
हमहुँ वियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर-जीऊ॥
मोंहि भोग सो काज न, बारी। सौंह दिस्टि कै चाहन हारी॥

कितनी मृत भावना है और साथ ही कितने सरल उद्गार हैं। एक स्त्री के हृदय की व्यथा को दूसरी स्त्री ही समझ सकती है इसीलिए नागमती ने पद्मावती के पास संदेश भेजा। रत्नसेन को अपना संदेश तथा दुःख का एक शब्द भी नहीं भेजा। हाँ, रत्नसेन की माता की व्यथा अवश्य उस पक्षी से कही। यहाँ हम देखते हैं कि उसके दृढ़ प्रेम और गहरी आस्था के साथ-साथ स्त्री जन्य मान का अभिमान भी कवि ने सुरक्षित रक्खा है दग्ध होकर भी नागमती प्रिय को अपनी अवस्था से दुःखी नहीं करना चाहती। पति की सुख शान्ति की भावना के लिए एक भारतीय आदर्श हिन्दू रमणी की सी उसमें पवित्रता है।

नागमती का विरह भारतीय नारी का विरह है। इसीलिए उसमें उपेक्षित गाम्भीर्य है जहाँ कहीं कवि पर फारसी प्रभाव अधिक आ पड़ा है वहाँ कुछ वीभत्सता अवश्य आ गयी है पर उससे नागमती के मूल-विरह-प्रसंग पर कोई आघात नहीं पहुँचता। नागमती की व्यथा का जो विशद और सजीव चित्र कवि ने उपस्थित किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। नारी की संवेदना अपनी सीमा छू रही है और हृदय के वेग की व्यंजना उत्कर्ष पर है।

प्रकृति के परिवर्तन में मानवीय भावनाओं का आरोपकर कवि ने उसके प्रति अपनी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि का परिचय दिया है। बारहमासे के वर्णन में उसकी इस विलक्षण प्रतिभा का स्पष्ट बोध होता है। उसमें विरह-ताप के वेदनात्मक स्वरूप की अत्यन्त विशद व्यंजना को प्रकट करने में कवि को अधिकाधिक सफलता मिली है। विरह वर्णन में कवि का सदैव यह प्रयत्न रहा है कि विरह-ताप की मात्रा को न प्रकट कर वह संवेदना ही अधिक प्रकट करे। कवि के इस प्रयत्न ने ही उसके वर्णन को अतिशयोक्ति और ऊहात्मकता के भारी अपराध से बहुत कुछ मुक्ति दिला दी है।

नागमती के विरह-वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता "नागमती का अपने रानीपन को भूल सामान्य नारी की भाँति विरह-व्यथित हो अपने हृदयोद्गारों को प्रकट करना है। रानी के इस स्वरूप को प्रस्तुत करने में कवि की भावुकता अपनी चरम-सीमा का स्पर्श करती है और उसकी काव्य-कला में एक

नवीन आकर्षण आता है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि "जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिन्दू गृहिणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलभ शृंगार के अत्यन्त समुज्जवल रूप का विकास दिखाया है।" नागमती के विरह-व्यथित वाक्य प्रत्येक पाठक के हृदय को वेध जाते हैं। उसकी व्यथा के प्रति मानव ही नही सभी पशु-पक्षियो तथा जीव-जन्तुओ के भी हृदय मे करुणा का अपार समुद्र उमड आता है। सारी सृष्टि ही उसके आँसुओ से भीग उठती है। यह सामान्य लेखक के वश की वात नही, जायसी ऐसे भावुक और महाकवि की सशक्त लेखनी से ही ऐसे स्थल प्रादुर्भूत हो सके।

यही सब विशेषतायें हैं जिनके कारण नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय वन गया है। पद्मावत का तो वह प्राण-विन्दु ही है। जायसी के हृदय की कोमलता और चरम-सवेदन शक्ति का सच्चा परिचय हमे नही मिल पाता यदि उन्होने नागमती के इस अद्वितीय विरह-वर्णन का सृजन न किया होता।

प्रश्न १६—हिन्दी सूफी प्रेमगाथा काव्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए जायसी के काव्य के आधार पर यह सिद्ध कीजिए कि सूफी कवि अपनी रचनाओं को भारतीय सांचे में ढालते समय भी अपना मूल उद्देश्य कभी नहीं भूले।

हिन्दी साहित्य में सूफियो के प्रेमगाथा काव्य की परम्परा के वर्णन-क्रम मे प्रो० द्वारिकाप्रसाद शर्मा 'द्वारिकेश' ने हिन्दी प्रेमगाथा काव्य की निम्नलिखित विशेषताओ का उल्लेख किया है।

१—ये गाथायें भारतीय काव्य की चरित्र-वद्ध शैली में न होकर फारसी मसनवी शैली में हैं। इनमे मसनवी शैली के अनुसार प्रारम्भ में ईश्वर वदना, मुहम्मद साहव की स्तुति तथा तत्कालीन वादशाह की स्तुति है।

२—प्रेमगाथाओ के रचयिता प्राय सभी मुसलमान कवि हैं। इन्हे हिन्दुओ के धार्मिक सिद्धान्तो, आचार-विचारो, रहन-सहन आदि का भी सामान्य-ज्ञान था जिसका प्रमाण इन ग्रन्थो में मिलता है।

३—इनमें अधिकाश हिन्दुओ की कथाएँ हैं। परम्परा से प्रचलित इन कहानियो को अपना आधार बनाकर इन कवियो ने इतिहास और कल्पना के अद्‌भुत मिश्रण से सुन्दर प्रेमगाथाओ का सृजन किया है। इतिहास की रक्षा वही तक है जहाँ तक वह उनके साध्य अलौकिक की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार इन्होने हिन्दुओ के घरो की प्रेमगाथाओ को लेकर अपने धार्मिक सिद्धान्तो को व्यक्त किया है।

४—इन कथाओ में लौकिक आख्यानो द्वारा अलौकिक की व्यजना की गई है। इसका कारण इसलाम का धार्मिक प्रतिवन्ध था। सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है और आत्मा उसी का अश है। इन गाथाओ के अलौकिक प्रेम में जीवात्मा का परमात्मा के लिए तीव्र प्रेम और साधक के मार्ग की कठिनाइयो का चित्रण है। आत्मा परमात्मा के इस मिलन में शैतान बाधक है। गुरु की सहायता से उसे दूर कर साधक ईश्वर की प्राप्ति करता है। इन कथाओ का प्रतिपाद्य विषय यही प्रयत्न और प्राप्ति का वर्णन है।

५—इन कवियो का केन्द्र अवध प्रात था। इसीलिए इनकी भाषा भी अवधी है। किन्तु इसमें तुलसीदास की-सी अवधी की साहित्यिकता का अभाव है। कथानक मे रूढियो का व्यवहार किया गया है जो परम्परा से भारतीय कथाओ में व्यवहृत होती आई है, जैसे चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन, सुकसारिका द्वारा नायिका का वर्णन सुनकर आसक्त होना, पशु पक्षियो के वार्तालाप से भावी घटनाओ की सूचना, मन्दिर या चित्रशाला में मिलन आदि।

६—सभी ने प्राय दोहा और चौपाई छदों में ही अपने काव्य की रचना की है। जायसी एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में इन छदो के प्रवर्तक ही माने जाते हैं।

(प्रो० द्वारिकेश के इस कथन से मैं सहमत नही क्योकि इन छदो की परम्परा पहले से ही चली आ रही थी। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक देखें)—दानबहादुर पाठक।

७—इनके प्रेम के चित्रण में विदेशीपन के साथ-साथ भारतीय शैली की भी छाप है। इसी से जायसी ने प्रारम्भ में नायक को प्रियतमा (ईश्वर) की प्राप्ति में प्रयत्नशील दिखाकर बाद में नायिका (प्रियतमा) के प्रेमोत्कर्ष का भी प्रदर्शन किया है। पद्मावत में उन्होने पद्मावती के सतीत्व तथा उत्कृष्ट पति प्रेम आदि के दृश्य दिखाकर भारतीय पद्धति का परिचय दिया है।

८—इन कवियो ने किसी विशेष सम्प्रदाय का खडन-मडन नही किया। उन्होने सरल भाषा और साधारण शैली में केवल अपने साम्प्रदायिक भावो की अभिव्यक्ति को ही प्रधानता दी है। इसी से उनकी अभिव्यक्ति में आडवर का प्रदर्शन नहीं है।

९—इन्होने अधिकतर प्रबन्ध काव्य लिखे हैं। उनमें कथा की रमणीयता के साथ सुव्यवस्थित सम्बन्ध निर्वाह भी है। परन्तु उन्होने वस्तु वर्णन या कथा-प्रवाह को वही तक महत्व दिया है जहां तक वह उनके उस अलौकिक प्रेम के अभिव्यंजन में सहायक है।

१०—इनकी भाव व्यजना अपना विशेष महत्व रखती है। इन्होने मानव हृदय के अत्यन्त सूक्ष्म भावो में बैठकर रति और शोक आदि के अत्यन्त भाव-पूर्ण अर्थात् मार्मिक वर्णन किए हैं।

११—ये सभी कवि यद्यपि मुसलमान थे किन्तु इन पर भारतीय अद्वैतवाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। इन्होने वैष्णवो से अहिंसा की भावना ली। उपनिषदो के 'प्रतिविम्बवाद' की झलक जायसी में कई स्थानों पर मिलती है। संतों के समान उन्होने हठयोग की क्रिया को भी उसी रूप में ग्रहण किया।

१२—आचार्य शुक्ल के शब्दो में सूफियो के काव्य में रहस्यवाद की बड़ी सुन्दर और सरल व्याख्या हुई है। उसमे संतो के रहस्यवाद की-सी नीरसता और शुष्कता नही है। सूफियो ने प्रेम द्वारा अव्यक्त सत्ता को प्रकट किया है।

सक्षेप में प्रेमगाथाओ की सामान्य विशेषताएं यही हैं। परन्तु स्पष्ट रूप से इस काव्य की ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि ने सब से बडी विशेषता यह है कि इसने हिन्दू और मुस्लिम सस्कृति का समन्वय कराने का आशिक रूप से सफल प्रयास किया है। जहाँ तक जायसी के काव्य-विशेष की बात है

३—इनमें अधिकाश हिन्दुओ की कथाएँ हैं। परम्परा से प्रचलित इन कहानियो को अपना आधार बनाकर इन कवियो ने इतिहास और कल्पना के अद्‌भुत मिश्रण से सुन्दर प्रेमगाथाओ का सृजन किया है। इतिहास की रक्षा वही तक है जहाँ तक वह उनके साध्य अलौकिक की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार इन्होने हिन्दुओ के घरो की प्रेमगाथाओ को लेकर अपने धार्मिक सिद्धान्तो को व्यक्त किया है।

४—इन कथाओ में लौकिक आख्यानो द्वारा अलौकिक की व्यजना की गई है। इसका कारण इसलाम का धार्मिक प्रतिबन्ध था। सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है और आत्मा उसी का अश है। इन गाथाओ के अलौकिक प्रेम में जीवात्मा का परमात्मा के लिए तीव्र प्रेम और साधक के मार्ग की कठिनाइयो का चित्रण है। आत्मा परमात्मा के इस मिलन में शैतान बाधक है। गुरु की सहायता से उसे दूर कर साधक ईश्वर की प्राप्ति करता है। इन कथाओ का प्रतिपाद्य विषय यही प्रयत्न और प्राप्ति का वर्णन है।

५—इन कवियो का केन्द्र अवध प्रात था। इसीलिए इनकी भाषा भी अवधी है। किन्तु इसमें तुलसीदास की-सी अवधी की साहित्यिकता का अभाव है। कथानक मे रूढियो का व्यवहार किया गया है जो परम्परा से भारतीय कथाओ में व्यवहृत होती आई हैं, जैसे चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन, सुकसारिका द्वारा नायिका का वर्णन सुनकर आसक्त होना, पशु पक्षियो के वार्तालाप से भावी घटनाओ की सूचना, मन्दिर या चित्रशाला में मिलन आदि।

६—सभी ने प्राय दोहा और चौपाई छदो में ही अपने काव्य की रचना की है। जायसी एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में इन छदो के प्रवर्तक ही माने जाते हैं।

(प्रो० द्वारिकेश के इस कथन से मैं सहमत नही क्योकि इन छदो की परम्परा पहले से ही चली आ रही थी। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक देखें)—दानबहादुर पाठक।

७—इनके प्रेम के चित्रण में विदेशीपन के साथ-साथ भारतीय शैली की भी छाप है। इसी से जायसी ने प्रारम्भ में नायक को प्रियतमा (ईश्वर) की प्राप्ति में प्रयत्नशील दिखाकर बाद में नायिका (प्रियतमा) के प्रेमोत्कर्ष का भी प्रदर्शन किया है। पद्मावत में उन्होने पद्मावती के सतीत्व तथा उत्कृष्ट पति प्रेम आदि के दृश्य दिखाकर भारतीय पद्धति का परिचय दिया है।

८—इन कवियो ने किसी विशेप सम्प्रदाय का खडन-मडन नही किया। उन्होंने सरल भापा और साधारण शैली में केवल अपने साम्प्रदायिक भावो की अभिव्यक्ति को ही प्रधानता दी है। इसी से उनकी अभिव्यक्ति में आडवर का प्रदर्शन नही है।

९—इन्होंने अधिकतर प्रवन्ध काव्य लिखे हैं। उनमे कथा की रमणीयता के साथ सुव्यवस्थित सम्वन्ध निर्वाह भी है। परन्तु उन्होने वस्तु वर्णन या कथा-प्रवाह को वही तक महत्व दिया है जहां तक वह उनके उस अलौकिक प्रेम के अभिव्यजन में सहायक है।

१०—इनकी भाव व्यजना अपना विशेप महत्व रखती है। इन्होंने मानव हृदय के अत्यन्त सूक्ष्म भावो में वैठकर रति और शोक आदि के अत्यन्त भाव-पूर्ण अर्थात् मार्मिक वर्णन किए हैं।

११—ये सभी कवि यद्यपि मुसलमान थे किन्तु इन पर भारतीय अद्वैतवाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। इन्होंने वैप्णवो से अहिंसा की भावना ली। उप-निपदो के 'प्रतिविम्ववाद' की झलक जायसी में कई स्थानो पर मिलती है। सतों के समान उन्होने हठयोग की क्रिया को भी उसी रूप में ग्रहण किया।

१२—आचार्य शुक्ल के शव्दो में सूफियो के काव्य में रहस्यवाद की वडी सुन्दर और सरल व्याख्या हुई है। उसमें सतो के रहस्यवाद की-सी नीरसता और शुष्कता नही है। सूफियो ने प्रेम द्वारा अव्यक्त सत्ता को प्रकट किया है।

सक्षेप में प्रेमगाथाओ की सामान्य विशेपताएँ यही हैं। परन्तु स्पप्ट रूप से इस काव्य की ऐतिहासिक और साहित्यिक दृप्टि से सव से वडी विशेपता यह है कि इसने हिन्दू और मुस्लिम सस्कृति का समन्वय कराने का आंशिक रूप से सफल प्रयास किया है। जहां तक जायसी के काव्य-विशेप की वात है

ये सभी विशेषताएँ उनके काव्य में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। सच्चे अर्थों में इन सभी विशेषताओ का प्रतिनिधित्व उन्ही का काव्य करता है।

सूफी कवियो का दृष्टिकोण काफी उदार था, यही कारण था कि अनेक हिन्दु मुसलमानो की ओर आकर्षित हुए और उनसे प्रेम भाव रखने लगे। इन कवियो ने भारत में जन्म लिया था, यहाँ की रीति-नीति, रहन-सहन तथा सामाजिक और धार्मिक वातावरण से परिचित थे। ऐसी दशा में यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि सूफी काव्य पर भारतीयता की स्पष्ट छाप पडती। सूफी काव्यों की आत्मा भले ही विदेशी रही हो परन्तु कलेवर बहुत कुछ भारतीय था, इसमें दो मत नही। अपने इस कथन के प्रमाण में मै निम्नलिखित बातें कहना चाहूँगा —

१—रचना का विषय भारतीय था, जिसमें हिन्दू घरानो की लोक प्रचलित कथाओं को अपनाया गया।

२—भारतीय हिन्दू घरानों की इन कथाओ को प्रस्तुत करने के लिए इन कवियो ने भारतीय अवधी भाषा का ही प्रयोग किया। (लिपि भले ही फारसी रही हो)। वह भाषा उस समय की लोक प्रचलित ठेठ बोल चाल की भाषा थी।

३—प्राय सभी काव्य दोहे-चौपाई छदो में लिखे गए जो भारतीय छद हैं।

४—भारतीय साहित्य के प्रभाव के साथ-साथ इनमें भारतीय दर्शन तथा हठयोग आदि की क्रियाओ का भी समावेश है।

५—इन काव्यो में भारतीय समाज की अनेक मान्यताओ का बडा ही मर्मस्पर्शी और हृदय ग्राही वर्णन हुआ है। विशेषत जायसी तो इस कला में दक्ष ही हैं।

पद्मावत के अमर प्रणेता जायसी ने अपना कथानक भारतीय हिन्दू परिवारों से लिया। रत्नसेन पद्मावती और नागमती का परिचय हिन्दू चरित्रों का प्रतिनिधित्व करता है।

पद्मावत की भाषा तो अवधी है ही जिसका माधुर्य अपनी समकक्षता में अन्य किसी को नही ठहरने देता। तुलसी की भाषा में साहित्यिक परिनिष्ठता भले ही है परन्तु जायसी की-सी मधुरता नही।

सम्पूर्ण पद्मावत दोहे और चौपाई छंदो मे लिखा गया है। अखरावट में एक छद सोरठे का प्रयोग अधिक है। जायसी के काव्य पर भारतीय दर्शन और हठयोग का पूरा-पूरा प्रभाव है। नीचे की पक्ति में देखिए अद्वैतवाद की कैसी स्पष्ट झलक है :—

हौं-हौं कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहि आहि सब कोई ॥

—पद्मावत

इसी प्रकार आखिरी कलाम की यह पक्ति देखिये :—

सबै जगत दरपन कर लेखा। आपन दरसन आपहि देखा ॥

अद्वैतवाद की अनेक बातो का स्पष्ट उल्लेख जायसी के काव्य मे हमें मिलता है।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है सभी सूफी कवि हृदय से उदार थे, जायसी में वह तत्व चरम उत्कर्ष पर था। उनके हृदय की संवेदनशीलता और उदारता सर्वथा सराहनीय है। इसी से वे तत्वत उस ब्रह्म तक पहुँचने वाले अनेक मार्गों की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु जन्म और सस्कारो से मुसलमान होने के कारण उनकी आस्था सर्वाधिक अश में इस्लाम धर्म पर ही रही। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उनका उदार हृदय सभी मार्गो की उपयोगिता तो स्वीकार करता था किन्तु इस्लाम अथवा सूफी धर्म के प्रचार का मुख्य उद्देश्य रखने के कारण इस्लाम के प्रति ही अपनी सर्वाधिक आस्था व्यक्त करने के लिए विवश हुआ नीचे की पक्तियो मे इस कथन का स्पष्ट उल्लेख है—

विधना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवां जेते ॥
जेइ हेरा तेइ तहँ वै पावा। भा संतोष समुझि मन गावा ॥
तेहि मँह पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनो जग छाज बड़ाई ॥
सो बड पंथ मुहम्मद केरा। है निरमत्त कविलास बसेरा ॥
लिखि पुरान विधि पठवा सांचा। भा परमान दुवौ जग वांचा ॥
सुनत ताहि नारद उठि भागै। छूटै पाप पुन्नि सुनि लागै ॥

पद्मावत में जायसी ने भारतीय समाज का जो मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया वह उनके काव्य की विशेषता ही कही जायगी। नागमती में भारतीय

हिन्दू रमणी का आदर्श रूप और पद्मावती में पति-प्रेम की एक निष्ठता एव सतीत्व की भव्य-आभा का दिग्दर्शन करा जायसी ने अपने विशाल हृदय और उसकी चरम सवेदनशीलता का परिचय दिया है। भारतीय समाज की अनेक रीति-नीतियो, एव परम्पराओं का वडा सफल चित्रण पद्मावत में हुआ है।

यह सब कुछ होने पर भी यह नही कहा जा सकता कि जायसी अथवा उनकी परम्परा के अन्य प्रेमगाथाकारो का काव्य भारतीय आदर्श एव सास्कृतिक व धार्मिक उद्देश्यों को लेकर लिखा गया था। इस सम्वन्ध में डा० रामकुमार वर्मा के शब्दो में स्पष्ट रूप से हमें भी यह कहना पडेगा कि 'समस्थ कथा में सूफी सिद्धान्त बादल में पानी की बूंद की भाँति छिपे हुए हैं।' सूफी साधक की चारो अवस्थाओ (१) शरीरत (२) तरीकत (३) हकीकत और (४) मारिफत का वडा स्पष्ट और सैद्धान्तिक विवेचन पद्मावत मे हुआ है। साधक के मार्ग के जो सात मुकाम होते हैं उनका भी स्पष्ट उल्लेख है। रत्नसेन जीवात्मा का प्रतीक और पद्मावती बुद्धि एव ब्रह्म की प्रतिमूर्ति है। ग्रथ के अन्त में कवि ने *'तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिहल बुधि पदमिन चीन्हा'* के कथन द्वारा अपने मूल उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है। जिसके पढ लेने के उपरात हमारी सारी शकाएँ निर्मूल हो जाती हैं और यह भावना दृढ हो जाती है कि पद्मावत के द्वारा कवि ने सूफी साधना का प्रचार किया है। उसे इससे अधिक प्रभावशाली और सरलमार्ग दूसरा नही मिला, इस नाते भारतीय काव्यात्मक ढाँचे में अपनी सूफी आत्मा को वडे मनहर और आकर्षक रूप में उसने पिरोया। हिन्दू धर्म एव देवी देवता सब ही जो यथा स्थान उल्लेख में आये वे कोई विशेष महत्त्व नही रखते। यो ही आ गए हैं। भारतीय समाज का चित्र आना स्वाभाविक था क्योकि विना उसके वे अपने उद्देश्य को हिन्दू पाठको के हृदय में उतारने में सफल नही होते। महान प्रतिभा-शाली और मेधावी होने के नाते जायसी के काव्य मे दृष्टिकोण की उतनी सकुचितता नहीं जितनी अन्य कवियों में है। आखिरी कलाम और अखरावट में उनका धार्मिक रूप स्पष्टतया उनके मूल उद्देश्य की ओर सकेत करता है।

जायसी के अतिरिक्त अन्य सभी सूफी प्रेम गाथाकारो—कुतुवन, मझन,

उसमान तथा नूरमुहम्मद आदि—ने यही कार्य किया। भारतीय काव्यात्मक ढाँचे में वे अपने धर्म और साहित्यिक विशेषताओ को पिरोते रहे। अपने इस मूल उद्देश्य को वे कभी नही भूले। सब ने सूफी एव इस्लाम धर्म और साधना की स्पष्ट विवेचना की। कथानक भारतीय था इस नाते चरित्रो मे भारतीयता का पुट आये बिना न रहा। हमारी श्रद्धा स्वाभावतः उनके प्रति इसी कारण उमड पडती है।

अस्तु उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचन के आधार पर हमे यह कहने मे अब कोई सकोच नही है कि (हिन्दी सूफी कवि अपनी रचनाओ को भारतीय साँचे में ढालते समय भी अपना मूल उद्देश्य कभी नही भूले)

प्रश्न २०—रत्नसेन, अलाउद्दीन तथा पद्मावती और नागमती का संक्षिप्त चरित्र चित्रण कीजिए।

रत्नसेन—जबूदीप के चितौड देश के चौहान वशी महाराज चित्रसेन का पुत्र और पद्मावत-महाकाव्य का धीरोदात्त दक्षिण नायक है। उसके बाल्यकालीन जीवन की कोई भी झाँकी पद्मावत में नही मिलती। हीरामन को अत्यधिक मूल्य में भी खरीद सर्व-प्रथम वह अपने चरित्र के कलाप्रेमी एव गुणग्राहक स्वरूप का परिचय देता है। तदुपरि उसके द्वारा पद्मावती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुन वह पद्मावती पर मुग्ध हो जाता है। स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि वह तोते के निर्देशन में पद्मावती की प्राप्ति हेतु योगी बन जाता है। पद्मावती को प्राप्ति हेतु योगी बन घर से निकल पडना उसके प्रेम की दृढता और महान् सकल्प का द्योतक है। बीहड मार्ग के अनेक सकटो और आपत्तियो को सहन करते हुए वह सिंहलगढ पहुँच दुर्ग मे प्रवेश करता है और काफी सघर्षो एवं परीक्षाओ के उपरान्त अतत पद्मावती को प्राप्त कर लेता है। इन सभी विषम-परिस्थितियो में समरस भाव से अपने लक्ष्य की ओर गतिशील रहना उसके चरित्र की उज्ज्वलता का प्रमाण है।

वह एक आदर्श-प्रेमी है। उसके प्रेम मे पर्याप्त गम्भीरता, एकनिष्ठता तथा गहराई और सच्चाई है। वह पद्मावती की प्राप्ति हेतु प्राणोत्सर्ग के लिए भी उद्यत हो जाता है और अतत सूली पर चढने की स्थिति भी आ जाती है।

इस क्रिया में उसके अनेक गुण यथा साहसिकता, धीरता (कष्ट-सहिष्णुता) अहिंसा (विनय, सौजन्य, कोमलता), सत्याग्रह और उत्सर्ग (त्याग तथा बलिदान) आदि प्रस्फुटित हुए हैं। हर प्रकार के अवरोधो का सामना करते हुए भी अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर लेना उसके चरित्र पर भव्य प्रकाश डालता है।

उसे अपनी साधना के प्रति अडिग-विश्वास है, इस नाते वह लोक-धर्म या रीति-नीति की मिथ्या-परवाह नही करता। वह अपनी धुन का पक्का है। पद्मावती के अतिरिक्त अन्य किसी की भी उसे चाह नही है। इसी से पार्वती आदि की परीक्षाओ में वह ससम्मान उत्तीर्ण होता है, उसे आशातीत सफलता मिलती है।

पवित्र-प्रणय का एकनिष्ठ पुजारी होने के नाते प्रबल-प्रेम के आवेग मे उसने जो कुछ भी करणीय-अकरणीय किया है उसका विचार साधारण धर्म-नीति पर करना न्यायसगत न होगा। अपेक्षाकृत लोकनीति की दृष्टि से देखने से उसे, भावोत्कर्ष की दृष्टि से देखना ही अधिक समीचीन होगा। प्रसिद्ध भाववेत्ता मनोविज्ञानी सैण्ड (Shand) ने भी कहा है "Every Sentiment tends to acquire the virtues and vices that are required by the system

These virtues and vices reaccounted such from the different points of view, first from the point of view of society, Secondly, from the point of view of the sentiment itself according to a standard which itself furnishes"—Foundations of Character (प्रत्येक भाव-रति शोक, जुगुप्सा आदि के कुछ अपने निज के गुण होते हैं जिनमें से लोक नीति के अनुसार कुछ सदगुण कहे जाते हैं और कुछ दुर्गुण जो उस भाव की लक्ष्य पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं।)

तोते द्वारा पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन सुन उसके लिए समस्त राजपाट तथा अपनी प्राणप्रिया नागमती की प्रीति का कुछ भी विचार न कर उसे छोड, योगी हो निकल पडना और सिंहलगढ में चोरो की भाँति प्रवेश करना लोकनीति की दृष्टि से निंद्य कहा जायगा, परन्तु उसके ये कार्य मूल लक्ष्य की प्राप्ति मे सहायक हैं। वह अपने आदर्श प्रेम से च्युत नही होता,

इसलिए हम उसके इन कार्यों को अनैतिक तथा निंद्य मानने को तैयार नही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन से मै पूर्ण सहमत हूँ कि—"प्रेम के साधन-काल मे जो साहस, कष्ट सहिष्णुता, नम्रता कोमलता त्याग आदि गुण तथा अधीरता, दुराग्रह और चौर्य आदि दुर्गुण दिखाई पड़ते हैं वे प्रेमजन्य हैं, वे स्वतन्त्र गुण या दोष नहीं माने जा सकते। यदि ये बातें प्रेमपन्थ के अतिरिक्त जीवन के अन्य व्यवहारों में भी दिखाई गई होतीं तो इन्हें हम रत्नसेन के व्यक्तिगत स्वभाव के अन्तर्गत ले सकते थे।" इसके अतिरिक्त मूल बात तो यह है कि इन सभी कार्यों में कवि ने आध्यात्मिक सकेत प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थ चोरी से गढ मे घुसना लौकिक अर्थ मे ही बुरा है, साकेतिक अर्थ मे वह यौगिक क्रियाओ की अभिव्यजना करता है।

सिहल से लौटते समय कवि ने रत्नसेन का जो अर्थ लोभ दिखाया है उसे भी हम सामान्य व्यक्ति के लोभ की श्रेणी में रखने को तैयार नही। आचार्य शुक्ल के कथनानुसार "किसी विशेष अवसर पर असाधारण सामग्री के प्रति लोभ प्रकट करते देख हम किसी को लोभी नहीं कह सकते।"

गोरा बादल के चेताने पर भी अलाउद्दीन के छल को छल न समझना और उसके साथ गढ के बाहर तक चला जाना राजनीति की दृष्टि से एक राजा द्वारा अपनी सुरक्षा का ध्यान न रखने की अदूरदर्शिता प्रकट करता है किन्तु वैयक्तिक विशेषता के रूप में उससे राजा के हृदय की उदारता और सरलता ही प्रकट होती है।

क्षत्रिय होने के नाते रत्नसेन में जातिगत स्वभाव की स्पष्ट झाँकी हमें देखने को मिलती है। दिल्ली से छूटकर जिन दिन वह चित्तौड आता है उसी दिन रात को पद्मिनी से देवपाल की दुष्टता का हाल सुनकर क्रोध से भर जाता है और प्रभात होते ही बिना किसी पूर्व तैयारी के देवपाल को बाँधने की प्रतिज्ञा से कुम्भलनेर पर आक्रमण कर देता है। प्रतिकार की यह प्रबल-वासना रत्नसेन में राजपूतो के जातिगत लक्षण के कारण ही आई है। इसी प्रकार इससे पूर्व अलाउद्दीन के दूत को, रत्नसेन ने, जो उत्तर दिया है उसके द्वारा भी रत्नसेन के चरित्र की विशेषता का स्पष्ट बोध होता है—

"का मोहिं सिंघ दिखावसि आई । कहौं तो सारदूल धरि खाई ।।
हौं रन थमउर नाह हमीरू । कलपि माथ जेहि दीन्ह सरीरू ।।
तुरुक जाई कहु मरै न धाई । होइसि इसकन्दर की नाईं ।।
कालि होइ जो आगमन, सो चलि आवै आज ।"

दो शब्दों में हम यह कहेंगे कि 'रत्नसेन एक आदर्श उच्चाति उच्च कोटि का प्रेमी, गुणग्राहक, कलाप्रिय, साहसी, उदार व्यक्ति और पद्मावती-महाकाव्य का सर्वगुण समान्वित धीरोदात्त दक्षिण नायक है । यद्यपि उसके चरित्र में कुछ दुर्बलताएँ भी हैं और कुछ स्थलों पर जायसी उसके उदात्त चरित्र तथा नायकत्व की पूर्ण रक्षा नहीं कर सके हैं तथापि उसके गुणों की अपार प्रभावान राशि इन दुर्गुणों और दुर्बलताओं को नगण्य बनाती हुई उसके चरित्र पर भव्य-प्रकाश डालती है ।

अलाउद्दीन—अलाउद्दीन पद्मावत-काव्य के प्रतिनायक के रूप में हमारे सामने आता है । रत्नसेन की भाँति ही वह भी पद्मावती के प्रेम में अनुरक्त दिखाई देता है, फिर भी उसके प्रेम को पाठको द्वारा वह सम्मान नहीं प्राप्त होता जो रत्नसेन के प्रेम को प्राप्त होता है । अलाउद्दीन का प्रेम रत्नसेन के प्रेम की समकक्षता में हेय कहा जाता है । उसे एकनिष्ठ आदर्श प्रेमी के स्थान पर लोभी लम्पट के रूप में देखा जाता है । आइए इस तथ्य के मूलाधार को समझ लें तभी उसके चरित्र का मूल्यांकन करने में हम समर्थ हो सकेंगे ।

अलाउद्दीन के विपक्ष में दो बातें प्रस्तुत की जाती हैं—प्रथम तो यह कि पद्मावती दूसरे अर्थात् रत्नसेन की विवाहिता पत्नी है जिससे अलाउद्दीन का उसको प्राप्त करने का दुस्साहस भारतीय समाज की नैतिक दृष्टि में अक्षम्य अपराध है । दूसरी बात यह कि अलाउद्दीन के प्रयत्न उग्र हैं और वासना की गंध से दूषित हैं । उनमे शुद्ध एवं पवित्र प्रेम की सुगन्धि का अभाव है । काव्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने के उपरांत प्रत्येक व्यक्ति इसी निष्कर्ष पर आता है । उपर्युक्त दोनो बातें अलाउद्दीन के लिए बिल्कुल ठीक-ठीक बैठ जाती हैं । इसके विपरीत रत्नसेन के प्रेम में पर्याप्त धीरता, अहिंसा और उत्सर्ग की

भावना का रोमांचकारी समावेश है। अलाउद्दीन के प्रेम में अधीरता, उग्रता और उच्छृंखलता तथा आतंक की प्रखरता है जिससे पवित्र प्रेम की गरिमा विनष्ट हो जाती है।

अलाउद्दीन रूप लोभी है क्योंकि राघव द्वारा पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य की विशद प्रशंसा सुन वह रत्नसेन के पास अपने दूत द्वारा इस आशय का सन्देशा भेजता है कि वह पद्मावती को उसके हरम में भेज दे और बदले में जितना राज्य चाहे उतना ले ले, परन्तु रत्नसेन द्वारा आशा के विपरीत उत्तर पाने पर वह चित्तौड़ पर चढ़ाई कर देता है और आठ वर्ष तक उसके चतुर्दिक घेरा डाले रखता है।

कवि ने अलाउद्दीन को शूरवीर के रूप में भी चित्रित किया है। उसके हृदय में वीरों और उनकी वीरता के प्रति उचित सम्मान है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण उस घटना से होता है कि जब अलाउद्दीन के सन्धि-प्रस्ताव को रत्नसेन ने स्वीकार कर लिया तो सरजा ने अलाउद्दीन की चाटुकारिता अर्थात् चापलूसी में राजपूतों को 'काग' की संज्ञा से सम्बोधित किया। इस पर अलाउद्दीन ने उसे बहुत फटकारा और कहा कि काग वे नहीं वरन् तुम हो— जो धूर्तता करते हो और इधर की बात उधर तथा उधर की बात इधर किया करते हो। 'काग' धनुष पर चढ़े हुए बाण को देखकर भाग जाते हैं परन्तु राजपूत उसे देखते ही शत्रु को युद्ध के लिए ललकार कर खड़े हो जाते हैं। जायसी ने अलाउद्दीन के मुख से ऐसी बात कहलवाकर अपनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

समग्रत: अलाउद्दीन को उदार एवं सरल हृदय हम नहीं कह सकते। वह छली, विश्वासघाती, आक्रामक और जिद्दी है। महान् शासक के अनुरूप गम्भीरता का उसमें अभाव है, यही कारण है कि वीर होते हुए भी वह पाठकों की विरक्ति और घृणा का पात्र बनता है।

सबसे बड़ी बात यह कि आध्यात्मिक संकेत में वह माया (असत) का प्रतीक है, फलस्वरूप पाठकों की सहानुभूति, करुणा तथा आदर और प्रेम के द्वार उनके लिए बन्द हैं। यद्यपि जायसी ने कहीं भी उसके साथ पक्षपात या

अन्याय नही किया और यथास्थान परिस्थितियो के अनुकूल उसके मनोभावों एव आचरण का प्रदर्शन किया है, तथापि अलाउद्दीन का चरित्र पूर्णतया नही निखर सका है। साँगोपाँग चारित्रिक विवेचन के अभाव में कुछ स्फुट गुण-दोषो के आधार पर हम किसी के प्रति सच्चा न्याय नही कर सकते। पद्मावत के प्रतिनायक अलाउद्दीन की ठीक यही स्थिति है।

पद्मावती—काव्य की नायिका पद्मावती प्रथम रत्नसेन की प्रेयसी और बाद में उसकी पत्नी के रूप में चित्रित हुई है। उसका चरित्र भी नायक रत्नसेन की भाँति आदर्शोन्मुख है। सिंहल के आवासकालीन जीवन में उसका स्वरूप एक सच्ची प्रेमिका का है। इस तथ्य का उद्घाटन कवि ने कई वार किया है। प्रमुख रूप से उस समय तो यह अत्यन्त ही स्पष्ट हो जाता है जब रत्नसेन को शूली की आज्ञा होती है देखिए पद्मावती क्या कहती है —

काढ़ि प्रान वैठों लेइ हाथा। मरे तो मरों जिश्रों एक साथा॥

सिंहल से चित्तौड लौटते समय मार्ग में ही उसके आदर्श गृहणीत्व का स्वरूप प्रकट होने लगता है। पुरी में पहुँचने पर राजा रत्नसेन के पास हस, शार्दूल आदि पाँच वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य कुछ भी पाथेय शेष न रहा तव पद्मावती ने झट उन रत्नो को बेचने के लिए प्रस्तुत किया जो विदा के समय लक्ष्मी द्वारा उसे छिपाकर दिए गए थे। यहाँ पर वह सचय बुद्धिशीला आदर्श गृहणी के स्वभाविक रूप में उपस्थित होती है।

पद्मावती में व्यक्तिगत दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता भी है। इस वात का पता हमें दो स्थलो से विशेपरूप से चलता है। प्रथम स्थल तो वह है जब रत्नसेन ने पडितो के कहने में आकर राघवचेतन को देश निकाला की आज्ञा दी। पद्मावती को राजा का यह कार्य अच्छा और राज्य के पक्ष में हितकारी न लगा —

ज्ञान-दिस्टि धनि अगम विचारा।
भल न कीन्ह अस गुनी निकारा॥

अस्तु वह अपने हाथ के कगन-दान से राघवचेतन को सतुष्ट करने का प्रयत्न

करती है। एक महारानी के रूप में पद्मावती ने यहाँ वडी ही दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

द्वितीय स्थल, जिससे रानी की बुद्धिमत्ता एव साहसिक उद्योग का पता चलता है, वह यह है कि जब रत्नसेन दिल्ली में कैद हो जाता है और रत्नसेन से रूठे हुए गोरा-बादल को मनाने वह स्वय पैदल उनके द्वार पर जाती है। राजा के सच्चे हितैषी और वीरवर उन दोनो योद्धाओं को पहचानने मे उसने वडी सावधानी से काम लिया।

उसमें जातिगत स्वभावानुसार प्रेमवर्ग और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या का भाव भी पाया जाता है। वह रूपगर्विता तथा प्रेमगर्विता दोनो है। जैसे ही उसे यह पता चलता है कि प्रियतम नागमती के प्रमद-कानन मे विहार कर रहा है, वह तत्काल वहाँ पहुँचती है—और स्त्री सुलभ दुर्वलता के अनुकूल वादविवाद छेड वैठती है। विद्वानो ने इस प्रकार के गर्व मान तथा ईर्ष्या और प्रेम को स्त्री जाति के सामान्य स्वभाव के अन्तर्गत लिया है।

पद्मावती पतिपरायणा, एक निष्ठ प्रेमिका एव पत्नी है। उसकी समस्त कामनाएँ और आशायें रत्नसेन में निहित हैं। उसके प्रेम का जो महान् और सतीत्व का भव्य-रूप पद्मावत मे जायसी ने प्रस्तुत किया है वह सर्वथा सराहनीय है। दूती सवाद में पद्मावती के पवित्र और एकनिष्ठ प्रेम की स्पष्ट झाँकी हमें देखने को मिलती है। प्रियतम की मृत्यु का समाचार पाते ही वह सपत्नी नागमती के सग चिता पर प्रियतम की शव से लिपट सती हो जाती है। यहाँ पर कवि ने हिन्दू नारी के चरित्र का चरम उत्कर्ष प्रकट किया है।

पद्मावती दिव्य और पावन-प्रेम की साक्षात प्रति मूर्ति है। उसमें एक आदर्श प्रेमिका, पत्नी और राज्य की रानी के समस्त आवश्यक गुणो का उचित समावेश है। कवि ने उसके रूप और शील का वडा ही भव्य एव मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। वह सम्पूर्ण प्रेम-कथा की केन्द्र विन्दु है।

नागमती—अत्यन्त सुन्दरी श्यामवर्णा नागमती राजा रत्नसेन की प्रथम पत्नी और काव्य की प्रतिनायिका है। कवि ने सर्वप्रथम उसे रूपगर्विता के रूप मे प्रस्तुत किया है।

नागमती रूपवती रानी । सब रनिवास पाट-परधानी ॥
कै सिंगार कर दरपन लीन्हा । दरसन देखि गरब जिन् कीन्हा ॥
बोलहु सुग्रा पियारे-नाहाँ । मोरे रूप कोई जग माहाँ ? ॥
हँसत सुग्रा पँह ग्राइ सो नारी । दीन्ह कसौटी ग्रोपनिवारी ॥
सुग्रा बानि कसि कहु कस सोना । सिंहलदीप तोर कस लोना ? ॥
कौन रूप तोरी रूपमनी । दहुँ हौं लोनि, कि वै पदमिनी ? ॥
जो न कहसि सत सुग्रटा, तोहि राजा कै ग्रान ।
है कोई एहि जगत मँह, मोरे रूप-समान ? ॥

× × × × ×

सुमिरि रूप पदमावति केरा । हँसा सुग्रा, रानी मुख हेरा ॥
जेहि सरवर मँह हस न ग्रावा । बगुला तेहि सर हस कहावा ॥
लोनि बिलोनि तहाँ को कहै । लोनी सोई कत जहि चहै ॥
का पूछहु सिंहल कै नारी । दिनहि न पूजै निसि-ग्रँधियारी ॥

इस पर रानी को चिंता हो जाती है कि —

जौ यह सुग्रा मदिर मँह ग्रहई । कबहुँ बात राजा सौं कहई ॥
सुनि राजा पुनि होइ बियोगी । छाँड़ै राज, चलै होइ जोगी ॥

इसलिये उस विषय को नष्ट कर देने के लिए धाय को शीघ्रातिशीघ्र बुलाकर मारने का ग्रादेश देती है जो स्त्री स्वभाव सुलभ ईर्ष्या तथा ग्राशका से परिपूर्ण है ।

पंखि न राखिय होइ कुभाखी । लेइ तहँ-मारु जहाँ नहिं साखी ॥

परन्तु विधना विधान कुछ ऐसा था कि सुग्रा बच जाता है ।

नागमती में एक ग्रादर्श भारतीय गृहिणी की समस्त भावनाग्रो का कवि ने समावेश कर रखा है । देखिये पद्मावती के प्रेम मे योगी बन कर घर छोडकर जाते हुए पति रत्नसेन के प्रति उसका निवेदन किस प्रकार उसके सतीत्व की ग्रोर इगित करता है —

ग्रब को हमहिं करहि भोगिनी । हमहूँ साथ होब जोगिनी ॥
की हम्ह लावहु ग्रपने साथा । की ग्रब मारि चलहु एहि हाथा ॥

तुम्ह अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहँवा राम तहाँ संग सीता॥
जौ लहि जिउ सँग छांड न काया। करिहौं सेव पखरिहौं पाया॥

—जोगी खंड

नागमती के चरित्र की सब से उज्ज्वल झांकी हमे उस समय मिलती है, जब रत्नसेन नवपरिणीता वधू पद्मावती के साथ सिंहल में भोग-विलास में रत था, और नागमती यहाँ चित्तौड मे उसकी अविकल-प्रतीक्षा मे विरह-विदग्ध हो रही थी। उसके वियोग-चित्रण मे जायसी की लेखनी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। दूसरे शब्दो मे इसे हम यो कहेगे कि नागमती के आँसुओं मे डूब कर जायसी की लेखनी ने उसकी वियोग-दशा का वर्णन किया है। नागमती को कवि ने एक आदर्श भारतीय हिन्दू रमणी के रूप मे देखा है, और उसके विशाल हृदय की पवित्रता एव सवेदनशीलता का वडा ही मर्म स्पर्शी चित्रण किया है। देखिए नागमती की जोड़ी विछुड गई है, जिनके वियोग में सूखकर वह पिंजर मात्र रह गई है। इस तथ्य को कवि ने कितने कुशल और प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया है:—

सारस जोरी कौन हरि, मारि वियाधा लीन्ह ?
झुरि-झुरि पींजर हौं भई, विरह-काल मोहि दीन्ह।

वेदना की असीमता देखिए:—

खन एक आव पेट महँ सांसा। खनहि जाइ जिउ होइ निरासा॥
पवन डोलावहि सींचहि चोला। 'पहर एक समुझहि मुउ-बोला'॥

फारसी शैली से प्रभावित होने के नाते वर्णन कहीं-कहीं ऊहात्मक अवश्य हो गया है परन्तु उसमें भी व्यजना की एकरूपता है। कुछ उद्धरण लीजिए—

(१) जेहि पंखी के नियर होइ, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥

(२) जेंह-जेंह ठाढ़ि होई वनवासी। तेंह तेंह होइ घुघुचि कै रासी॥
बूंद-बूंद महँ जानहु जीऊ। गुंजा गूंजि करै 'पिउ-पीऊ'॥

(३) तेहि दुख भये परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
जानहु अगिनि के उठहि पहारा। औ सब लागहि अंग अगारा॥

(४) जरत वजागिनि करु पिउ छाँहा । आइ बुझाउ, अँगारन माँहां ।।
लागिउ जरै-जरै नस भारू। फिरि-फिरि भूजेसि तजिऊ न वारू।।

उसके करुण क्रन्दन को सुनकर पक्षी विह्वल हो गए अन्त में एक पक्षी पूछ ही बैठा —

इस पर नागमती उससे अपनी विरह व्यथा का निवेदन करती हुई निम्न-सदेशा पद्मावती तक पहुँचाने की याचना करती है —

पदमावति सों कहेउ विहगम । कत लोभाय रही करि सगम ।।
हमहूँ बियाही सग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर—जीऊ ।।
अबहु मया करु करु जिउ फेरा । मोंहि जियाउ कत देइ मोरा ।।
मोंहि भोग सों काज न बारी । सौंह दीठि कै चाहन हारी ।।
सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कत जेहि हाथ ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ ।।

इस अस्थिर मन दशा मे भी कितने उद्‌गार व्यक्त हुए हैं । यहाँ नागमती का चरित्र अपनी उज्ज्वलता के चरम उत्कर्ष पर पहुँचा है । इस स्थल पर एक-निष्ठ आदर्श पतिप्राणा भारतीय गृहिणी का चरित्र-कमल अपना पूरा परिमल विखेर रहा है । उसकी वियोग दशा द्वारा पति के प्रति उसके गूढ गभीर प्रेम की व्यजना हुई है ।

"पति-परायणा नागमती जीवन-काल मे अपनी प्रेम-ज्योति से गृह को आलोकित करके अन्त में सती की दिगंत व्यापिनी प्रभा से दमक कर इस लोक से अदृश्य हो जाती है ।"—आचार्य शुक्ल

नागमती के चरित्र के माध्यम से ही जायसी ने भारतीय और फारसी शैली का समन्वय किया है जो उनके साहित्य की अपनी विशेषता है ।

प्रश्न २१—महाकवि जायसी और तुलसी की विराट प्रतिभा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए ।

महाकाव्यकार जायसी और तुलसी दोनो भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवि हैं । जायसी ने निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा का प्रतिनिधित्व किया और तुलसी

ने सगुण भक्ति की राममार्गी शाखा का। मुसलमान के घर मे जन्म लेने के कारण जायसी मे मुस्लिम सस्कार थे, और हिन्दू (ब्राह्मण) घर में जन्म लेने के नाते तुलसी मे आर्य जाति के सस्कार विद्यमान थे। दोनो कवियो ने अपने-अपने धर्म, भक्ति और विचारो के प्रतिपादन के साथ-साथ हिन्दी को अनुपम काव्य-ग्रथ भेंट किए जिनसे भारती के भडार मे स्थायी वृद्धि हुई। दोनो का युग परिस्थितियो की दृष्टि से एक ही था किन्तु जायसी, तुलसी के पूर्ववर्ती और तुलसी, जायसी, के परवर्ती थे। इन दोनो के व्यक्तित्व तथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हम अपनी सुविधानुसार निम्नलिखित विन्दु निश्चित करते हैं —

(अ) युग और आविर्भावकालीन परिस्थितियाँ।
(ब) बाल्यकाल तथा शिक्षा-दीक्षा।
(स) प्रणीत काव्य-ग्रथ और उनके विषय।
(द) ग्रथो का समग्रत साहित्यिक मूल्याकन।
(य) समाज, धर्म और राजनीति विषयक विचार।
(फ) विशिष्टताएँ और परम्परा में स्थान।

युग की दृष्टि से वह भक्ति युग था। राजनीतिक-वातावरण शान्त हो चुका था। विजयी मुसलमानो ने हिन्दुओ के उत्साह की कमर तोड दी थी, अब उनमे मुसलमानो से लोहा लेने का साहस नही रह गया था। विजेता मुस्लिम जाति को यहाँ आए अब काफी दिन हो गए थे और हिन्दुओ को उनके साथ रहने का अब अभ्यास हो चला था। फलस्वरूप दोनो एक दूसरे के आचार-विचार, रहन-सहन, तथा व्यक्तित्व और धर्म आदि से परिचित हो चले थे। सघर्षो से दोनो ऊब गए थे और अब वे शान्ति, तथा निर्विघ्न जीवन के लिए लालायित थे। परस्पर समझौते की भावना बढती जा रही थी, परन्तु दोनो के मूल सस्कारो की भिन्नता ज्यो की त्यो थी। धार्मिक क्षेत्र मे दोनो जातियो के बीच काफी कोलाहल था। अनेक सप्रदाय और विविध प्रकार के धार्मिक विचारो का प्रतिनिधित्व करने वाले नेता अपनी-अपनी करामाते दिखा रहे थे जिससे शान्ति का प्यासा जन-हृदय एक विचित्र मृग-मरीचिका में उलझा

दुसह व्यथा का अनुभव कर रहा था। प्रतिभाशाली, स्पष्ट विचारो और समरस भाव से आकुल जन-हृदय को शान्ति प्रदान करने वाले नेताओ की आवश्यकता थी। सामाजिक दुर्व्यवस्था का चित्र तो अवर्णनीय है। उसकी विशृङ्खलना को एक सूत्र में पिरोने वाले नायक का अभाव था। ऊँच-नीच और छोटे-बडे आदि की भावना प्रवलतर रूप धारण किए समाज को विकृत करने में सलग्न थी। साहित्य का स्वरूप भी अनस्थिर ही था। उसे सुनिश्चित् दिशा देने वाले मेधावी कलाकारो की अपेक्षा थी। उस युग की इन्ही विषय-परिस्थितियो के वीच कालान्तर से कविवर मलिक मोहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास ने जन्म लिया।

वाल्यकालीन जीवन दोनो कवियो का विचित्रताओ से युक्त था जिनके वारे में अनेक किंवदतियाँ प्रचलित हैं। यहाँ हम व्यर्थ उन किंवदतियो की सत्यता-असत्यता की गहराई में न जा एक वाक्य में इतना ही कहना चाहेगे कि दोनो की वाल्यावस्था अनाथो की सी वीती जिसमें अपेक्षाकृत तुलसी का जीवन अधिक कष्टमय रहा।

'मातु-पिता जग जाय तज्यो, विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।'

—तुलसीदास

× × ×

"वारे ते ललात विललात द्वार-दीन-दीन,
जानत हौं चारिफल चारि ही चनक कों।"

—तुलसीदास

जहाँ तक शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न है उस समय दोनो, उपयुक्त सुविधाओ से वंचित रहे और जायसी को तो यह अभाव जीवन पर्यंत ढोना पडा। धीरे-धीरे वयस्क होने के साथ-साथ उनके जीवन की दिशायें भी वदली। युवाकाल में पत्नी रत्नावली के मर्मभेदी शब्द वाणो से घायल हो तुलसी ने वैराग्य ले लिया और ज्ञान-तृष्णा की शान्ति हेतु सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान-पीठो एव तीर्थ स्थानो का परिभ्रमण करते रहे और अन्त मे वाराणसी में गुरु शेष सनातन के चरणो

में बैठ १५ वर्ष तक साहित्य तथा धर्मादि का अनवरत गभीर अध्ययन किया, तदुपरि महाकवि के रूप मे सृजन-तूलिका उठाई। प्रतिकूल परिस्थितियो का शिकार जायसी का बाल्यकालीन जीवन विधिवत शिक्षा-ज्ञान का सौभाग्य न प्राप्त कर सका। फलतः विवश हो विश्व की खुली पाठशाला मे उसे अनुभव ज्ञान का अवलम्बन लेना पड़ा।

"बालक जायसी अनाथावस्था मे इधर-उधर मारा-मारा फिरा। अतः उसको स्कूलीय शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिला, किन्तु ईश्वर प्रदत्त धारणा शक्ति का पूर्णोपयोग उसने किया। उसकी पाठशाला प्रकृति का व्यापक क्षेत्र था, उसके शिक्षक सांसारिक घटनाएँ और व्यापार थे, सहपाठी ज्ञानेन्द्रियाँ और सत्संग थे तथा पुस्तक निर्मल हृदय था जिसमे अनुभूत व्यापारों का परायण होता रहता था। इस प्रकार मननशील जायसी युवावस्था तक शिक्षा प्राप्त कर संसार के समक्ष आया। ऐसे ही निरक्षर सम्राट् अकबर को संसार ने विद्वान माना और उसकी विद्वत्ता को सराहा था।"

—डा० जयदेव (सूफी महाकवि जायसी पृष्ठ ४२-४३)।

जायसी के काव्य ग्रंथों की सूची अन्य कवियो की भांति लम्बी बताई जाती है किन्तु मान्यता अभी प्रमुख रूप से केवल तीन ग्रथो को ही मिल सकी है।

(१) आखिरी कलाम, (२) पद्मावत, (३) अखरावट।

तुलसीदास के निम्न ग्रथो को मान्यता मिली हुई है।

१. रामचरित मानस (स० १६३१) २. दोहावली (स० १६४०)
३ कवित्त रामायण (स० १६६५-७१) ४. गीतावली (स० १६२७)
५ कृष्ण गीतावली (स० १६२८) ६ विनय पत्रिका (स० १६४२)
७ रामलला नहछू (स० १६०३) ८ वैराग्य सदीपनी (स० १६६९)
९ बरवै रामायण (स० १६६९) १० पार्वती मगल (स० १६४३)
११ जानकी मंगल (स १६४३) १२. रामाज्ञा प्रश्न (स० १६६९)

जहाँ तक इन ग्रन्थो के वर्ण्य-विषय का प्रश्न है, भक्तिकाल में जन्म लेने के नाते सामान्यतया दोनों ने भक्ति एवं धर्म सम्बन्धी विचारो को प्रधानता

दी। साथ ही काव्य-कला का चरम उत्कर्ष भी प्रकट किया। वैसे तुलसी के साहित्य में विविध विचारो का अक्षय भडार है किन्तु प्रमुखता जायसी की भाति धार्मिक विचारो की ही है।

दोनो की कृतियो का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय सबसे पहला विचार जो हमारे मस्तिष्क में आता है वह यह कि दोनो ही महान प्रतिभाशाली विचारक और भावुक भक्त हृदय सम्पन्न महाकवि हैं। प्रेम के अनन्य पुजारी हैं, अपने-अपने धर्म के अन्ध विश्वासी हैं, मानव चरित्र के कुशल पारखी और जीवन के सूक्ष्म दृष्टा हैं।

काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। भावपक्ष में कल्पना तत्व, बुद्धितत्व तथा रागात्मक तत्व का समावेश होता है और कलापक्ष मे छद, भाषा, शब्द और अलकार योजना, लोकोक्तियाँ तथा मुहाविरो आदि का प्रयोग। इस दृष्टि से दोनो कलाकारो ने महान मेधा शक्ति और सफल कवि कर्म का परिचय दिया है। भाव तथा कलापक्ष के समस्त तत्वो का समुचित और मूल्याकन की कसौटी पर खरा उतरने वाला प्रयोग किया है। दोनों महान प्रतिभाशाली हैं जिनके हृदय की भावुकता एक दूसरे से होड करती हुई आगे चलती है।

छन्दो में जायसी ने आखिरी कलाम और पद्मावत में दोहे चौपइयो का प्रयोग किया है किन्तु अखरावट में दोहे-चौपाइयो के साथ-साथ सोरठे का भी प्रयोग है। तुलसी ने अपने समय की प्रचलित सभी काव्य-शैलियो में रचनायें की। चन्द के छप्पय, कबीर के दोहे, सूरदास के पद, जायसी की दोहा-चौपाइयाँ, रहीम के बरवै तथा राजदरबारों में प्रचलित कवित्त-सवैया आदि सभी पद्धतियों को अपने काव्य में स्थान दिया। इस दृष्टि से वे प्रतिनिधि कवि हैं।

भाषा के क्षेत्र में तुलसी का अवधी और व्रजभाषा दोनो पर समान अधिकार है परन्तु जायसी का केवल अवधी पर ही। तुलसी के रामचरित मानस में पश्चिमी अवधी का साहित्यिक रूप मिलता है और बरवै रामायण मे पूर्वी अवधी का। जायसी ने बोलचाल की ठेठ पूर्वी अवधी का प्रयोग किया है। तुलसी की भाषा में जो प्रांजलता है वह जायसी की भाषा में नहीं। तुलसी

की भाषा भावानुसारिणी, ओज और माधुर्य से परिपूर्ण है। यत्र-तत्र फारसी और अरबी तथा बुंदेलखण्डी के भी शब्द पाये जाते हैं। जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य "भाषा" का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य निराला है। वह संस्कृत की कोमल-कांत-पदावली पर अवलम्बित नही। उसमे अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिये हुए है। "मंजु, अमंद" आदि की चासनी उसमें नही है। जायसी की भाषा और तुलसी की भाषा मे यही बड़ा भारी अन्तर है। जायसी की पहुँच अवध मे प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहुते हुए माधुर्य स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुँच दीर्घ-संस्कृत-कवि परम्परा द्वारा परिपक्व चाशनी भांडागार तक भी पूरी-पूरी थी। दोनो के भिन्न प्रकार के माधुर्य का अनुमान नीचे उद्धृत चौपाइयों मे हो सकता है—

(१) जब-हुँत कहि गा पंखि संदेशी। सुनिउँ की आवा है परदेसी॥
तब-हुँत तुम बिन रहै न जीऊ। चातक भइउँ कहत 'पिउ-पीऊ'॥
भइउँ चकोरि सो पंथ निहारी। समुद सीप जस नयन पसारी॥
भइउं बिरह जरि कोइलि कारी। डार-डार जिमि कूकि पुकारी॥
—जायसी

(२) अमिय-मूरि-मय चूरन चारू। समन सकल भवरुज-परिवारू॥
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मगल मोद-प्रसूती॥
जन-मन-मंजु-मुकुर-मल हरनी। किए तिलक गुनगन बस करनी॥
श्री गुरु-पद-नख-मनि-गन-जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
—तुलसी

यदि गोस्वामी जी ने अपने "मानस" की रचना ऐसी ही भाषा में की होती जैसी कि इन चौपाइयों की है—

कोउ नृप होइ हमें का हानी। चेरि छाँडि अब होब कि रानी ?॥
जारै जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥

तो उनकी भाषा पद्मावत ही की भाषा होती और यदि जायसी ने सारी "पद्मावत' की रचना ऐसी भाषा में की होती जैसी की इन चौपाई की है—

को प्राप्त कर लेना चाहते हैं। इसके विपरीत तुलसी के प्रेम मे मर्यादा है उच्छृङ्खलता और अनैतिकता को वहाँ बिलकुल स्थान नही है। मर्यादा से गिरा हुआ प्रेम,-प्रेम की सज्ञा को सार्थक नही करता वह हेय है और उसे वासना की कोटि में स्थान मिलना चाहिए। तुलसी के प्रेम में श्रद्धा का सम्मिश्रण है, जिसने उनके प्रेम को महान् गम्भीरता प्रदान की है।

जायसी ने समाज विषयक यत्र-तत्र जो चर्चायें की हैं वे उनके कथा के प्रसग वश हैं किसी सामाजिक दृष्टि से नही। राजनैतिक विचारो की ओर से जायसी वहुत उदासीन हैं। मसनवी शैली के अनुमार ग्रन्थ रचने के कारण अपने 'पद्मावत' में उन्होने शाहे वक्त (शेरशाह) की प्रसशा अवश्य की है पर वह परम्परा पालन मात्र ही है उससे देश की तत्कालीन राजनैतिक दशा पर कोई विशेष प्रकाश नही पडता। जहाँ तक भक्ति और साधना विषयक प्रश्न हैं जायसी मुसलमान सूफी भक्त कवि थे किन्तु उनके काव्य पर हिन्दू धर्म के सिद्धान्तो की भी छाप है वे उदार हृदय और विधि पर पूरी आस्था रखने वाले हैं। वेद, पुराण, कुराण आदि उनकी दृष्टि में कल्याण कारी हैं। वेद विरोधियो के लिए उनका कहना था।

बेद वचन मुख साच जो कहा।
सो जुग जुग अहि थिर ह्वै रहा॥

अपनी साधना में उन्होंने सभी धर्मों से कुछ न कुछ लिया है उपासना के क्षेत्र में वे भगवान् के निर्गुण रूप के उपासक थे किन्तु सूफी सिद्धान्तो की ओर झुकाव होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासक की सहृदयता पाई जाती है सूफी धर्म उनका अभीष्ट धर्म था और सूफी साधना ही उनकी अभीष्ट साधना थी।

इसके विपरीत तुलसीदास आर्य सस्कारो से सम्पन्न वैष्णव भक्त थे। नवधा भक्ति उनकी वैष्णव साधना के प्राण के रूप प्रतिष्ठापित हुई है। भगवान राम की सगुणोपासना करते हुए उन्होंने जन-जन को नवधा भक्ति का सन्देश दिया और समाज में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करते हुए हिन्दू जाति

में आर्य गौरव का महामंत्र जगाया। उनके राम की साकार उपासना से उनका 'राम नाम' अधिक महत्वशाली है। वे रूप की अपेक्षा नाम को श्रेष्ठ बताते हैं क्योंकि—

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

यह नाम की महिमा है जो निर्गुण और सगुण दोनो उपासको के बीच समान आदर पाती है। शक्ति, शील और सौन्दर्य से समन्वित उनके मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्म होने के साथ-साथ सामान्य मानव के रूप में भी आचरण करते हैं और लोक-आदर्श की प्रतिष्ठा करते है। जायसी के रत्नसेन या पद्मावती द्वारा इस प्रकार की आशा हम नही कर सकते। मानव जीवन की जितनी विविध दशाओ का चित्रण तुलसी ने किया है जायसी उतनी सोच भी नही सके हैं। प्रेम मार्ग मे जिनसे उनका सम्बन्ध हुआ केवल उन्ही की चर्चा उनको अभीष्ट जान पडी।

जायसी भी धार्मिक प्रवक्ता हैं और तुलसी भी, किन्तु तुलसी के प्रवचन मे आकर्षण है, व्यापकता और समन्वयात्मकता है, जायसी मे इस्लामियत अथवा व्यापक रूप मे यो कहिए कि सूफी मत-विशेष की ही स्पष्ट गंध है। उसमे जातीयता का सकोच है।

सस्कृति के पोषक के रूप मे आचार्य तुलसी अमर हैं। दोनों मे समन्वय की भावना है। जायसी सास्कृतिक समन्वय के लिए कुछ अधिक प्रयत्नशील हैं। भारत की सस्कृति शाश्वत सस्कृति है, इस नाते तुलसी का अपेक्षाकृत कुछ स्वतन्त्र होना स्वाभाविक है। वैसे तुलसी अपनी सस्कृति के महान् पुनरुद्धारक के रूप में प्रसिद्ध हैं और इसी नाते बुद्ध के बाद उन्हें ही लोक नायक की उपाधि मिली (क्योंकि उनमे सब प्रकार के भावों के प्रतिनिधित्व और समन्वय करने की क्षमता थी।) जायसी ने भी भारतीय कलेवर में सूफी आत्मा को सजाया और उससे अपनी सस्कृति के मधुर बोल सुनवाये पर उनका जादू भारतीयो के बीच उतना कारगर न हो सका।

महाकाव्य के समस्त लक्षणो के अनुसार दोनो ने क्रमश अपने पद्मावत और रामचरित मानस को बनाने का प्रयत्न किया है। अपनी विशिष्टताओ के कारण रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। पद्मावत का स्थान हिन्दी में दूसरा है। पर यह भी सत्य है कि रामचरित मानस के प्रणेता में भाषा भाव और विचारो की श्रेष्ठता तथा व्यापकता भले ही अधिक हो किन्तु प्रेम की वह एकनिष्ठता तथा गहराई नही जो पद्मावत के प्रणेता जायसी में है। चतुर्दिक सतर्क रहने के कारण गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि निर्विवाद सिद्ध होते हैं और एकागी दृष्टि रखने के कारण जायसी को उनकी श्रेणी के काव्यकारो में द्वितीय स्थान मिलता है। दोनो महाकवियो ने अपनी-अपनी पावन वाणी से साहित्य की जो श्री वृद्धि की है उसके लिए हिन्दी आजीवन ऋणी रहेगी। ध्यान रहे रामचरित मानस से ३४ वर्ष पूर्व पद्मावत का सृजन हो चुका था। पद्मावत हिन्दी का प्रथम सफल कहाकाव्य है। तुलसी काव्य के क्षेत्र में पद्मावत पथ के अनुगामी हैं इसे अस्वीकार नही किया जा सकता है। इस प्रकार एक महान् प्रतिभासम्पन्न विनयशील मेधावी महाकवि के रूप में जायसी अमर हैं और हिन्दी काव्य गगन के पीयूष वर्षी इन्दु तुलसी की गरिमा का तो कहना ही क्या!

प्रश्न २२—रहस्यवाद की परिभाषा, उसके उद्भव तथा विकास की कथा सक्षेप मे बताते हुए जायसी और कबीर के रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

रहस्यवाद की कोई स्वतन्त्र परिभाषा नही। वह मनोरजक होते हुए भी वडा दुस्साध्य विपय है। उसका विस्तार सागर की भाँति सम्पूर्ण विश्व साहित्य मे फैला हुआ है। अगणित कवियो के हृदय से उसकी अजस्र धारा प्रवाहित हुई है जिसके कल-कल निनाद में उन्होने अलौकिक सगीत का अनुभव किया है। वे उसमें खो गये हैं, अपना भौतिक अस्तित्व भुला वैठे हैं। योगी और यती आदिकाल से ही उसे समझने का प्रयास करते चले आ रहे हैं परन्तु किसी निष्कर्ष पर नही पहुँच सके। रहस्य रहस्य ही बना रह गया।

उसे वाणी न मिल सकी, और जो मिली भी वह अटपटी तथा कहीं-कहीं अत्यन्त ही भावात्मक और स्निग्ध पारे की सी गतिमान। बड़े-बड़े मनीषियों और तत्वचिन्तकों की जब यह दशा है तो सामान्य बुद्धि की बात ही क्या हो सकती है। फिर भी जिज्ञासु मन को आश्वस्त करने के लिए विद्वानों ने रहस्यवाद को यथा सम्भव परिभाषाओं की डोर में बांधने के प्रयत्न किये हैं। जिनमें से कुछ को हम नीचे दे रहे हैं।

"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर ही नहीं रह जाता है।"—डा० रामकुमार वर्मा

"साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है काव्य के पक्ष में वही रहस्यवाद है।"—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

"रहस्यवाद साहित्यिक धारणाओं और मान्यताओं के अनुसार उस मनःप्रवृत्ति का प्रकाशन है जो अव्यक्त और सर्वव्यापी ब्रह्मवाद से परिचित होने के लिए प्रयास करती है। यह प्रवृत्ति मन का गुण है इसका प्रकाशन काव्य में होता है। यह प्रयास जिस भाव साधना के सोपानों से अग्रसर होता है, वह एक उच्च स्तर की मानसिक स्थिति होती है। यह स्थिति साधारण जन के लिए रहस्य है।"—डा० मुंशीराम शर्मा

"रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव स्थिति से उस असीम एवं स्वर्गिक महा अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।"—गंगा प्रसाद पाण्डेय।

एक वाक्य में हम यों कहेंगे कि आत्मा और परमात्मा का सीधा सम्बन्ध जब काव्यमयी भाषा में व्यक्त होता है तो उसे साहित्य में रहस्यवाद के नाम से पुकारा जाता है। उस अप्राप्य ब्रह्म अथवा अज्ञात—अव्यक्त चरम सीमा सत्ता को प्राप्त तथा व्यक्त करने के लिए मानव हृदय व मन ने जो निरन्तर प्रयत्न किये हैं उसे ही रहस्यवाद की परिभाषा मिली है।

इस रहस्यवाद मे अद्वैतवाद की भावना काम करती है। 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद का आधार है। ब्रह्म और जीव तथा ब्रह्म और जगत की एकता रहस्यवाद के दो छोर हैं। इसी तथ्य की पृष्ठ में अनेक तत्व चिन्तको और काव्य मनीषियो ने उसे विविध दिशायें देने का प्रयत्न किया है। अद्वैतवाद के दोनो पक्ष मिलकर 'सर्ववाद' की प्रतिष्ठा करते है।

भारतीय संतों और भक्तो ने अपनी साधना के लिए पहले पक्ष के लिए अधिक महत्व दिया है परन्तु दूसरे पक्ष की अनुभूति के बिना उनकी व्यापक भावना को पूर्णता नही मिलती। प्रकृति की प्रत्येक विभूति में, संसार के प्रत्येक—कोमल और कठोर, प्रीतिकर और भयंकर कार्य-व्यापार मे उन्हे इस अव्यक्त और परोक्ष सत्ता का आभास मिलता है।

"पहले पक्ष को लेकर भारत और फारस मे सूफी और योग मार्ग चले हैं उन पथों और मार्गो पर चलने वालों का अन्तत अपनापन खुदा या वन्दे मे लय करना ही लक्ष्य है।

दूसरे पक्ष को लेकर भावुक हृदय मे एक भाव लोक की सृष्टि हुई जिसमें कहीं ईश्वर को सर्व व्यापक मानकर प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ, घटना और व्यापार मे उसकी विभूति और व्यापारो का वर्णन है, तो कहीं ईश्वर को प्रेममय, प्रेमरूप मानकर उसकी लीला का प्रसार है। इसी की परिणति एक दिशा में माधुर्य भावना मे हो जाती है।" —डा० सुधीन्द्र।

आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के दो भेद किये है —

१ साधनात्मक।
२ भावात्मक।

जिस रहस्यवाद का आधार योग है वह साधनात्मक रहस्यवाद है और जिसका आधार भक्ति या सूफी प्रेम सिद्धान्त है वह भावात्मक रहस्यवाद है।

साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत योग के अप्राकृत और जटिल आसन, कर्मकाण्ड, तप और काया कष्ट आदि हैं। इनमें वरवस इन्द्रियों का दमन किया जाता है। और इस प्रकार साधक मन को अव्यक्त तत्वयों का साक्षात्कार तथा अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ भगवान के निकट पहुँचने का प्रयत्न करता है। तन्त्र और रसायन भी साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत ही आते हैं पर उनका स्तर अपेक्षाकृत निम्न है।

भावात्मक रहस्यवाद की कई श्रेणियाँ हैं जिसमे से किसी एक रहस्य-भावना को आधार मानकर भक्त सरल एव मधुर भाव से अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता है। भक्त और साधक मे अगाध विश्वास तथा आत्म समर्पण की भावना बडी प्रबल रहती है। इस रहस्यवाद के अन्तर्गत अद्वैत ब्रह्म की ही कल्पना होती है।

इस अद्वैतवाद का प्रतिपादन सर्व प्रथम उपनिषदो मे मिलता है। उपनिषद् भारतीय ज्ञानकाण्ड के मूल हैं। अद्वैतवाद की पृष्ठ भूमि में एक दार्शनिक सिद्धात है, कवि कल्पना या भावना नही। वह मनुष्य के तत्वचिन्तन और बुद्धि प्रयास का फल है।

इस ज्ञान का उदय प्रेमोन्माद या इलहाम के रूप मे नही हुआ था। वस्तुत अद्वैतवाद चिन्तन की वस्तु है, भावनामात्र की नही। ब्रह्म जीव तथा प्रकृति के रहस्यों को समझने के पश्चात् मनीषियो ने उसके उद्घाटन के जो विविध मार्ग अपनाये उसमे भावना को स्थान मिला। रहस्यवादी भावना भी उद्घाटन के विविध मार्गों मे से एक है।

गीता के दसवें अध्याय में सर्ववाद का जो अद्वैतवाद का विकसित रूप है, भावात्मक प्रणाली पर निरूपण है। वहाँ भगवान ने विभूतियो का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। सर्ववाद को लेकर जब भक्त की मनोवृत्ति रहस्योन्मुख होगी तब वह अपने को जगत के नाना रूपो के सहारे इस परोक्ष सत्ता की ओर ले जाता हुआ जान पड़ेगा। इस आधार पर अवतारवाद का मूल भी रहस्य भावना ही ठहरती है। परन्तु रहस्यवाद के सिद्धान्त रूप में

गृहीत हो जाने पर तथा राम कृष्ण के ईश्वर विष्णु के अवतार निश्चित हो जाने पर यह रहस्य दशा समाप्त हो गई।

श्रीमद्भागवत के उपरान्त कृष्ण भक्ति को जो रूप प्राप्त हुआ उसमें रहस्य भावना को प्रश्रय मिला। भक्तो की दृष्टि से कृष्ण का लोक सग्रही रूप हटने लगा और वे प्रेम मूर्ति मात्र रह गये। अभिप्राय यह कि भक्त लोग उन्हे अपने निजी दृष्टिकोण से देखने लगे। गोपियो का प्रेम जिस प्रकार एकान्त और रूप माधुर्य मात्र पर आश्रित था उसी प्रकार भक्तो का भी हो चला। यहाँ तक कि कुछ स्त्री भक्तो ने भगवान की कल्पना प्रियतम के रूप में की। बडे-बडे मन्दिरो और देवदासियो की जो प्रथा थी उससे इस माधुर्य भाव को और भी सहारा मिला। माता-पिता कुमारी लडकियो को मन्दिरो में दान कर आते थे जहाँ उनका विवाह देवता के साथ हो जाता था। उनकी भक्ति देवता को पति रूप में मानकर ही विकसित हुई। इस पति या प्रियतम के रूप में भगवान की भावना को वैष्णव भक्तिमार्ग में 'माधुर्य भाव' कहते हैं। इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य रूप से रहता है।

स्वभाव से भारतीय भक्ति रहस्यात्मक नही है। इस नाते इस भावना का अधिक प्रचार न हो सका। हाँ, जब सूफी भारत में आये तो उनका प्रभाव भारतीय भक्तों पर पडा। मीरा बाई ने ऐसे भक्तों का प्रतिनिधित्व किया। चैतन्य महाप्रभु की मण्डली, सूफियो की भाँति ही कीर्तन करते-करते मूर्छित हो जाती थी। भारतीय भक्ति भावना पर सूफियो के प्रभाव सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत द्रष्टव्य है —

"मुसलमानी जमाने मे सूफियो की देखा-देखी इस भाव की ओर कृष्ण भक्ति शाखा के कुछ भक्त प्रवृत हुए। इसमें मुख्य मीरा बाई हुईं जो लोक लाज खोकर अपने प्रियतम श्री कृष्ण के प्रेम मे मतवाली रहा करती थीं। उन्होंने एक बार कहा था कि "कृष्ण को छोड और पुरुष है कौन ?" सारे जीव स्त्री-रूप हैं।"

सूफियो का असर कुछ और कृष्ण भक्तो पर भी पूरा-पूरा पाया जाता है। चैतन्य महाप्रभु में सूफियो की प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं। जैसे सूफी कव्वाल

गाते हुए हाल की दशा मे हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु जी की मण्डली भी नाचते-नाचते मूर्छित हो जाती है। यह मूर्छा रहस्यवादी सूफियो की रूढि है। इसी प्रकार मद प्याला उन्माद तथा प्रियतम ईश्वर के विरह की दूरारूढ़ व्यजना भी सूफियो की बधी हुई परम्परा है। इस परम्परा का अनुसरण भी पिछले कृष्ण भक्तो ने किया। नागरीदास इश्क का प्याला पी-पीकर झूमा करते थे। कृष्ण की मधुर मूर्ति ने कुछ आजाद सूफी फकीरो को भी आकर्षित किया। नजीर अकबराबादी ने खडी बोली के अपने बहुत से पद्यो में श्री कृष्ण का स्मरण प्रेमालबन के रूप में किया है।

निर्गुण शाखा के कबीर दादू आदि सन्तो की परम्परा मे ज्ञान का जो थोडा बहुत अवयव है वह भारतीय वेदान्त का है, पर प्रेम तत्व बिलकुल सूफियो का है। इन मे से दादू, दरिया साहब आदि तो खालिस सूफी ही जान पडते हैं। कबीर में माधुर्य भाव जगह जगह पाया जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि भावात्मक रहस्यवाद का प्रभाव हमारे कबीर परम्परा सन्त कवियो तथा कृष्ण भक्ति शाखा के भक्तिमार्गी वैष्णव कवियो दोनो पर था। इसके साथ-साथ मुसलमानो की सूफी धारा भी देश में प्रवाहित हो रही थी जिसकी विचारधाराओ के मूल में भी हमें इसका आभास मिलता है।

इसी क्रम में श्री यज्ञदत्त शर्मा जी ने अपने ग्रंथ 'जायसी साहित्य और सिद्धान्त' मे लिखा है—"साधनात्मक रहस्यवाद का सम्बन्ध ज्ञान मिश्रित हठयोगी भावना और ब्रह्म की कल्पना से है। हठयोग, तन्त्र, रसायन इत्यादि की बातें भी साधारण मस्तिष्क के लिये रहस्य की बातें हैं। साधक अपनी साधना के चमत्कार से कुछ विशेष बातें प्रदर्शित करता है, तो वह जनता के लिए रहस्य का विषय है। इन सबका वर्णन और फिर कल्पनात्मक वर्णन, बस यही साधनात्मक रहस्यवाद का विषय है। कबीर ने भारतीय ज्ञान विचारावलि अर्थात् वेदात और सूफी प्रेम का सम्मिश्रण करके जिस रहस्यवाद की सृष्टि की उसे हम अधिक बल के साथ साधनात्मक रहस्यवाद

ही कहेंगे । इगला, पिंगला, सुषुम्ना नाडी और शरीर के भीतरी चक्रों की चर्चा इस रहस्यवादी धारा मे मिलती है। इस विचारधारा में ईश्वर को केवल मन के अन्दर खोजने की भावना रहती है।

भारतीत भक्त इस काल मे ईश्वर की खोज अपने मन में नहीं करता था। भारत मे अवतारवाद का प्रचार था और भक्त अपने उपास्य को दिल के एकात कोने मे प्रतिष्ठित न करके उसे वहिर्लोक मे प्रतिष्ठित करता था । इसी मे भगवान का लोकरजक स्वरूप निहित था। भारत मे भावात्मक रहस्यवाद तेजी से फैल रहा था । इसमे अद्वैत की झलक थी। वहां शायरी का तो प्रथम विषय ही यह वन गया। खलीफाओ की कडी धार्मिक शासन प्रणाली की कड़ियाँ सूफी फकीरों की मधुर वाणी ने छिन्न-भिन्न कर डालीं। जनता सूफियो के प्रेममय सगीत में वह निकली और प्राचीन रूढ़ियाँ आप से आप टूट कर गिर पड़ीं। जब सूफी मुसलमान भारत मे आये तो उन्होंने भारत के वेदाती लोगों से भेंट की। दोनों का विचार-विमर्श हुआ और उसके फलस्वरूप वे सभी प्रभावित हुए। हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म दोनों अपनी विभिन्न शाखाओं में बह निकले। इन शाखाओ की मान्यताओं में कहीं मेल था और कहीं बेमेल । विचित्र बात जो सामने आई वह यह थी कि बहुत-सी मुसलमानी शाखाओं की अपनी मान्यतायें और हिन्दू धर्म की शाखाओ की अपनी मान्यतायें ऐसी मेल खा गई जितना मेल उन शाखाओं का अपने धर्म की अन्य शाखाओं से नहीं था। इसके फलस्वरूप एक सामान्य भावना ने जन्म लिया। ये मान्यतायें अकवर के 'दीन-इलाही' मजहब की मान्यतायें न थीं, वरन् ईश्वर भक्तों की भावनायें थीं, जिनमे सरलता, मधुरता और कोमलता से सच्चाई को परखने की जिज्ञासा थी, यह भक्ति-भावना थी। इसी सामान्य विचारधारा का प्रभाव हमे कवीर, जायसी, मीरा इत्यादि की कविता में मिलता है। इस सामान्य विचारधारा में वेदात और सूफीमत का सामजस्य था, अद्वैती रहस्यवाद का मूल सिद्धान्त जहाँ से रस पाता है, खुराक पाता है—यह वह स्थान था।"

उपर्युक्त पक्तियो में हमने रहस्यवाद के मूल उद्गम, उसके भारतीय

साहित्य तथा भक्ति में प्रवेश और विकास का सांकेतिक परिचय प्राप्त किया है। अब हम जायसी और कबीर के रहस्यवादी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

रहस्यवाद को लेकर जायसी और कबीर के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कोई कबीर को सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी ठहराता है तो कोई जायसी को रहस्यवाद का कुशल नायक मानकर उसके काव्य-सौंदर्य में अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। अधिक नहीं, हम यहाँ दो-तीन विद्वानों के उद्धरण दे रहे हैं जिनसे उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जायगा।

(१) डा० श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ ७५।

(पंचम संस्करण)—"रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों (जायसी आदि) का रहस्यवाद तो उनके प्रबन्ध के बीच-बीच में बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबन्ध से अलग उसका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है।"

(२) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ १६४।

(पंचम संस्करण)—"कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है। वे सूफियों की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप-माधुर्य्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृङ्गार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।"

(३) डाक्टर चन्द्रावली पाण्डेय—"कबीर का रहस्यवाद प्राय. शुष्क और नीरस है, पर जायसी आदि का ऐसा नहीं है।"

इन विद्वानों के मतों को देखने से ऐसा लगता है कि ये अपने-अपने प्रिय कवि को लेकर साहित्य-न्यायालय में वकालत कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि

उनका दृष्टिकोण निष्पक्ष और सर्वांगीण नहीं। इन मतो में एकागिता स्प परिलक्षित है।

इतना तो सभी जानते है कि साधना के क्षेत्र में कबीर और जायसी दो साधनात्मक रहस्यवाद को (जिसमें योग, तत्र, रसायन, आदि का समावे होता है) मानते है। अन्तर केवल भावना के क्षेत्र में है। कबीर प्रकृति व मिथ्या मानते हैं, इस नाते उनके यहाँ से प्रकृति तिरस्कृत है। परतु जायसी यहाँ 'सर्व खल्विद ब्रह्म' होने के कारण प्रकृति परमात्मा की झलक का साध बन गई है। इसे यो भी कहा जा सकता है कि कबीर मे आत्मा और परमात्म का सीधा सम्बन्ध है, जबकि जायसी मे प्रकृति परमात्मा के सौन्दर्य का प्रका होने के कारण स्वय परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। कबीर में ज्ञा प्रेम पर विजयी हुआ है, परन्तु जायसी में प्रेम ने ज्ञान पर विजय प्राप्त क है। इस प्रकार एक ही लक्ष्य तक पहुँचने वाले इन दो साधको की भावना में पर्याप्त भेद हो गया है। वैसे जहाँ दोनो मे प्रेम की तन्मयता की अभिव्यक्ति है वहाँ उनकी उक्तियो को देखकर ऐसा लगता है कि दोनो में कोई भेद है नहीं। समानता के लिए पहले हम विरह के उदाहरण लेंगे।

हाड भये सब किंगरी, नसें भईं सब ताँति।
रोंव-रोंव ते धुनि उठे, कहौं बिथा केहि भाँति।।

—जायसी

सब रग तंत रबाब तन, विरह बजावै नित्त।
और न कोई सुन सकै, कै साईं के चित्त।।

—कबीर

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उडाव।
मकु तेहि मारग उडि परै, कत धरै जहँ पाँव।।

—जायसी

यह तन जारौं मसि करौं, ज्यो धूआ जाइ सरग्ग।
मति वे राम दया करै, बरसि बुझावै अग्ग।।

—कबीर

करि सिंगार तापर का जाऊँ, ओहि देखहु ठावँहि ठाऊँ ॥
जो जिउ में तो उहै पियारा, तन मन सो गहि होय निनारा ॥

—जायसी

सोवो तो सुपने मिले, जागो तो मन माहिं।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥

—कबीर

कुहुकि-कुहुकि जस कोयल रोई। रकत कै आंसु घुंघुचि बन बोई।
जँह-जँह ठाढ़ होंहि बनवासी। तँह-तँह होंहि घुंघुचि कै रासी ॥
बुंद-बुंद मँह जानहु जीऊ। गुंजा गुंजि करै पिउ-पीऊ ॥

—जायसी

नैना नीझर लाइया, रहत बसै निसि जाम।
पपिहा ज्यों पिउ-पिउ करों, कबरे मिलोगे राम ॥

—कबीर

अब मिलन के कुछ उदाहरण लीजिए—
देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥
गा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि फूटी ॥
अस्ति-अस्ति सब साथी बोले। अंध जो अहैं नैन निज खोले ॥

—जायसी

दुलहिन गावहु मंगलचार।
हमारे घर आये राजा राम भरतार ॥
तन रत कर मैं मन रत करिहौं, पांचो तत्त बराती।
रामदेव मेरे पाहुन आये, मैं जोबन मदमाती ॥
सरिर सरोवर वेदी करिहौं, ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव संग भांवरि लैहौं, धनि-धनि भाग हमारा ॥
सुर तैतीसो कौतुक आये, मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरुष एक अविनासी ॥

—कबीर

तात्पर्य यह है कि जहाँ मिलन और तीव्रता का वर्णन है, जहाँ शुद्ध आध्यात्मिक धरातल पर आत्मा के शोक और हर्ष की व्यजना है, वहाँ कवीर और जायसी मे कोई भेद नही। सूफी सिद्धान्तो के परिणाम स्वरूप अभिव्यक्त होने वाली इस समान अनुभूति में कोई एक दूसरे से पीछे नही है। कही-कही तो यह पता लगाना भी मुश्किल हो जाता है कि प्रेम विरह और मिलन की ये सामान्य भावनायें जायसी द्वारा पहले लिखी गई या इन दोनो की प्रेरणा का स्रोत कोई तीसरा ही है (डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश')।

कवीर शकर के मायावाद से प्रभावित हैं। उनकी दृष्टि में आत्मा और परमात्मा वस्तुत एक है। माया के कारण ही दोनो में भिन्नता है। यदि माया का पर्दा बीच से हट जाय तो जीव और ब्रह्म पुन मूलाकार में आ जांय। दोनो भागो का एकीकरण हो जाय। देखिए इसी तथ्य को कवीर ने अपने काव्य में कितने सुन्दर ढग से व्यक्त किया है —

जल मे कुंभ, कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ कथौ गियानी॥

कवीर को माया से वडी चिढ है। उनके विचार में वह पिशाचिनी है। वही जीव को सासारिक आकर्षणो में बाँधे रहती है। इसी से वे कहते हैं—

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले, वोले माघुरी बानी।

अथवा

इक डाइन मोरे हिय वसी, निस दिन मोरे हिय को डसी।
या डाइन के लरिका पांच, निस दिन मोंहि नचावे नाच॥

(पांचो लडको से तात्पर्य-काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ से है) वस्तुत जीव भगवान से मिलने के लिए अत्यत आतुर है परतु मार्ग में सासारिक माया-मोह वाघक हैं।

मैं जानू हरि सो मिलूं, मो मन मोरी आस।
हरि विच डारे अन्तरा, माया वड़ी पिशाच॥

इस माया को दूर भगाने का एक मात्र साधन वे ज्ञान को बताते हैं। उनका विश्वास है कि इससे मुक्ति पाते ही आत्मा और परमात्मा एक तत्व हो जायेंगे—

"जैसे जलहिं तरंग तरंगिनि, ऐसेहि हम दिखरावेंगे।"

जायसी पूर्णतः सूफी हैं। सूफी मत में भी यद्यपि बंदे और खुदा का एकीकरण हो सकता है, पर उसमें माया को कोई स्थान नहीं। जिस प्रकार अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए एक यात्री को मार्ग में कुछ स्थल पार करने पड़ते हैं, उसी प्रकार सूफी मत में आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र होती है और परमात्मा से मिलने के पूर्व अपनी साधना के मार्ग में उसे चार दशायें पार करनी पड़ती हैं—

१ शरीअत, २ तरीकत, ३. हकीकत, ४. मारिफत। इस 'मारिफत' में जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है। वहाँ आत्मा स्वयं 'फना' (स्वाधीनता) होकर 'बका' (तद्रूपावस्था) के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का अनुभव होने लगता है और 'अनलहक' सार्थक हो जाता है। अपने अनुराग में चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार करके ईश्वर से उसी प्रकार मिलती है जैसे शराब और पानी। जायसी ने "चार बसेरे जो चढ़ै, सत से उतरै पार' कहकर इसी सूफी साधना की ओर संकेत किया है।

कबीर ने जिसे माया कहा है, सूफी कवियों की साधना का वह प्रमुख माध्यम है। जायसी की दृष्टि समष्टि मूलक है। सम्पूर्ण विश्व में वे उसी अनंत अनादि का व्यापक रूप देखते हैं। इस नाते विश्व की कोई भी वस्तु अनादरणीय व त्याज्य नहीं। देखिए उस परोक्ष ज्योति और सौन्दर्य सत्ता की ओर कैसा हृदय ग्राही मधुर संकेत है—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ जहँ विहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हस भा, दसन जोति नग हीर॥

कवीरदास को वाहर जगत में भगवान की रूप कला नही दिखाई देती। वे सिद्धो और योगियो के अनुकरण पर ईश्वर को केवल अन्तस में बताते हैं—

मोको कहाँ ढूँढे बदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना कावे कैलाश में॥

इसी भावना को जायसी ने भी व्यक्त किया है—

पिउ हिरदय मँह, भेंट न होई।
कोरे मिलाव कहाँ केहि रोई॥

उस अखड ज्योति का आभास पाकर जायसी का हृदय किस तरह जगमगा उठता है इसे निम्न पक्तियो में देखिए—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा।
गा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि फूटी॥
कँवल विगस तस विगसी देही। भँवर वसन होइ कै रस लेही॥

अन्तर्जगत और वाह्य जगत का कैसा अपूर्व सामजस्य है, कैसी विव-प्रति-विम्व स्थिति है।

उस प्रेममय के प्रेम से सस्सृति-प्रकृति किस प्रकार ओतप्रोत है इसके लिए दूसरा उदाहरण देखिए—

उन वानन अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ ससारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने। ते सव वान ओहि के हने॥
धरती वान वेधि सव राखी। साखी ठाढ देहि सव साखी॥
रोंव-रोंव मानुष तन ठाढे। सूतहि सूत भेद अस काढे।
वरुन चाप अस ओपहँ। वेधे रन-वन ढाँख।
सौजहि तन सव रोवां, पखिहि तन सव पांख॥

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर दोनो एक थे न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है—

धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन बिछोहू ॥
समस्त प्रकृति इस विरह-वियोग से पीड़ित है—
सूरज बूड़ि उठा होइ राता। श्रौ मजीठ टेसू वन राता ॥
भा वसत राती बनसपती। श्रौ राते सब योगी यती ॥
भूमि जो भीजि भयऊ सब गेरू। श्रौ राते सब पंख-पखेरू ॥
प्रकृति के महाभूत उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं—
पवन जाइ तहँ पहुँचे चहा। मारा तैस लोटि भुंइ रहा ॥
श्रगिनि उठी जरि बुझी नियाना। धुंश्रा उठा उठि बीच बिलाना ॥
पानि उठा उठि जाइ न छूश्रा। बहुत रोइ श्राइ भुंइ छूश्रा ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के माध्यम से जायसी श्रपना मतव्य कितने सरस, हृदयग्राही तथा प्रभावोत्पादक ढग से व्यक्त करने मे सफल हो सके हैं। प्रकृति को श्रपने घर से निर्वासित कर देने के नाते कबीर इतने सरस, मनमोहक श्रौर प्रभावशाली न बन सके। उनमे नीरसता श्रा गई।

कबीर का रहस्यवाद हिन्दुश्रो के श्रद्वैतवाद श्रौर कुछ सीमा तक मुसलमानो के सूफीमत पर श्राश्रित है। श्रद्वैतवाद ने माया श्रौर चिन्तन तथा सूफीमत से प्रेम लेकर उन्होने श्रपने रहस्यवाद की सृष्टि की है।

उस विराट की महा श्रनुभूति प्राप्त करने के लिए श्रात्मा को प्रेममय होना पडता है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दो में, वह सासारिकता का बहिष्कार कर दिव्य श्रौर श्रलौकिक वातावरण मे उठती है। वह उस ईश्वर के निकट पहुँच जाती है जो इस विश्व का निर्माण कर्ता है। उस ईश्वर का नाम है सत्पुरुष। सत्पुरुष के ससर्ग मे वह श्रात्मा उस दैवी शक्ति के कारण हत बुद्धि सी हो जाती है। वह समझ ही नही सकती कि परमात्मा क्या है, कैसा है। वह श्रवाक रह जाती है। वह ईश्वरीय शक्ति श्रनुभव करती है, पर उसे प्रकट नही कर सकती। इसीलिये गूगे के गुड के समान वह स्वय तो परमात्मानुभव करती है, पर प्रकट में कुछ भी नही कह सकती। कुछ समय के बाद जब उसमे कुछ बुद्धि श्राती है श्रौर कुछ जबान खुलती है तो वह एकदम से पुकार उठती है—

कहँहि कबीर पुकारि के, श्रदभुत कहिए ताहि।

उस समय आत्मा में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वह परमात्मा की ज्योति का निरुपण करने मे समर्थ हो सके। वह आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती रहती है। अन्त मे वह बडी कठिनता से कहती है—

बरनौं कौन रूप औ रेखा, दोसर कौन आहि जो देखा।
ओंकार आदि, नहि वेदा, ताकर कहहु कौन कुल भेदा॥

× × ×

शून्य सहज स्मृति से प्रकट भई इक जोति।
ता पुरुष की बलिहारी, निरालब जे होति॥

रमैनी—६

यहाँ आत्मा सत्पुरुष का रूप देखकर मुग्ध हो जाती है। धीरे-धीरे आत्मा, परमात्मा की ज्योति में लीन होकर विश्व की विशालता का अनुभव करती है और उस समय वह आनदातिरेक से परमात्मा के गुण वर्णन करने लगती है—

जेहि कारण शिव अजहूं वियोगी।
अग विभूति लाइ भे जोगी॥
शेख सहस मुख पार न पावै।
सो अब खसम सहित समुझावै॥

इतना सब कहने पर अन्त में यही शेष रह जाती है—

तहिया गुप्त स्थल नहि काया।
ताके शोक न ताके माया॥
कमल पत्र तरग इक माहीं।
सग ही रहै लिप्त पै नाहीं॥
आस ओस अडन मे रहई।
अगनित अड न कोई कहई।
निराधार आधार लै जानी।
राम नाम लै उचरै बानी॥

× × ×

मर्म क बांधि लई जगत, कोई न करै विचार ॥
हरि की शक्ति जाने विना, भव बूड़ि मुआ संसार ॥

इसी प्रकार संसार के लोगों को उपदेश देती हुई आत्मा कहती है—

जिन यह चित्र बनाइया, साचो सो सूरतिहार।
कहहि कबीर ते जन भले, जे चित्रवतहि लेहि विचार ॥

इस प्रेम की स्थिति यहां तक पहुँचती है कि आत्मा स्वयं परमात्मा की स्त्री बनकर उसका एक भाग हो जाती है। यही इस प्रेम की उत्कृष्ट स्थिति है।

एक अंड अकार ते, सब जग भया पसार।
कहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भर्तार ॥
—रमैनी २७ ॥

और अन्त में आत्मा कहती है—

हरि मोर पिउ साईं, हरि मोर पीव।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव ॥
हरि मोर पीव मै राम की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥ शब्द ११७ ॥

यथा—

जो पै पिय के मन नहि भाये।
तौ का परोसिन के दुलराये ॥
का चूरा पाइल झमकाये।
कहा भयो बिछुआ ठमकाये ॥
का काजल सेंदुर के दीये।
सोलह सिंगार कहा भयो कीये ॥
अंजन मंजन करै ठगौरी।
का पचि मरै निगोड़ी बौरी ॥
जो पै पतिव्रता है नारी।
कैसेहि रहे सो पियहि पियारी ॥

तन मन जोबन सौंपि सरीरा।
ताहि सुहागिन कहैं कबीरा॥

इस रहस्यवाद की चरम सीमा उस समय पहुँच जाती है जब आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा में सबद्ध हो जाती है, दोनो में कोई अन्तर नही रह जाता। यहाँ आत्मा अपनी आकांक्षा पूर्ण कर लेती है और फिर आत्मा परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है। कबीर उस स्थिति का अनुभव करते हुए कहते हैं।

हरि मरिहै तो हमहूँ मरिहैं।
हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं।

आत्मा और परमात्मा में इस प्रकार मिलन हो जाता है कि एक के विनाश से दूसरे का विनाश और एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व सार्थक होता है। इस चरमसीमा का पाना ही कबीर के उपदेश का तत्व था। इस तरह रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति हम कबीर की कविता में पाते हैं।

कबीर के रहस्यवाद मे ज्ञान अधिक है प्रेम तथा विरह की अभिव्यक्ति कम। इसीसे उनमें नीरसता भी है। वे सर्वत्र पाठक का हृदय रस मग्न नहीं कर पाते। उनकी वाणी अटपटी और जनसाधारण की समझ से परे हैं। इसी कारण उनकी कविता का प्रभाव सर्वसाधारण पर अच्छा नही पडा। हाँ इसमें अवश्य कोई सन्देह नही कि कबीर की कविता भारतीय परम्परा के अनुसार है। शकर के मायावाद से तो वे प्रभावित ही हैं। विरह के पदो में स्त्री रूप आत्मा, पुरुष रूप परमात्मा से मिलने को आकुल है। यह भारतीय परम्परा के अनुकूल है। गुरु की महत्ता कबीर ने बडे जोरदार शब्दो में स्वीकार की है। वस्तुत कबीर में मुक्त कण्ठ से मुक्त आत्मा को मुक्त ब्रह्म से मिलाने का प्रयत्न है। कबीर ने मसि कागद तो छुआ नही था और न कलम ही हाथ गही थी। उनका सारा ज्ञान सुना सुनाया और सद्सगति द्वारा अर्जित था। यही कारण है कि उनकी कविता का बाह्य पक्ष अन्तरिक पक्ष की अपेक्षा अधिक निर्बल है। भाषा तो उनकी खिचडी और असाहित्यिक है ही। छदो की योजना भी कही ठीक नही है। उनकी कविता पर अनेक लोगो का अनेक प्रकार का प्रभाव है।

जायसी के रहस्यवाद में रमणीयता और सौन्दर्य के साथ-साथ रसमयता है। उच्चकोटि की भावुकता के प्रदर्शन में जायसी पूर्ण सफल हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि उन्होंने लौकिक कथा के माध्यम से पारलौकिक बातों का निरूपण किया है। भौतिक सौन्दर्य में आध्यात्मिक सौन्दर्य की झाँकी देखी है। जायसी के रहस्यवाद में प्रेम की पीडा है, तडपन है, मिलन है और है एकात्मकता।

किन्तु साधनात्मक रहस्यवाद के वर्णनो में जायसी भी कबीर की तरह ही नीरस हैं। एक उदाहरण लीजिए —

नौ पौरी तेहि गढ मंझियारा। औ तह फिरहि पांच कोतवारा ॥
दसंव दुवार गुपुत एक ताका। अगम चढाव बाट सुठि बाका ॥
भेदै जाई सोइ वह घाटी। जो लहि भेद चढै ओहि चाटी ॥

इसमें नाथ पथियो का प्रभाव है। इसे झूठा रहस्यवाद भी कहा जा सकता है।

चित्तौड गढ के वर्णन मे कवि ने इसी प्रकार शरीर स्थित सात खण्ड और नौ भँवरी का वर्णन किया है —

सातों भँवरी कनक केवारा।
सातों पर बाजहि घरियारा ॥
सात रंग तिन सातौं पंवरी।
तब तिन्ह चढै फिरै नव भँवरी ॥

इसी प्रकार की हठ योग की साधना पद्धति और उसकी सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग पद्मावत में स्थान-स्थान पर हुआ है। राजा रत्नसेन तो एक नाथपंथी योगी के ही रूप में चित्रित हुआ है।
यथा —

कहाँ पिंगला सुखमन नारी। सूनि समाधि लागि गई तारी ॥
बूंद समुन्द्र जैसे होई मेरा। गा हेराई अस मिलै न हेरा ॥

× × × ×

जस घँस लीन्ह समुद मर जीया । उघरैं नैन रैं जबस वीया ॥
खोजि लीन्ह सो सरग दुवारा । वज्र जो मूंदे जाई उघारा ॥

भावात्मक वर्णनो में जायसी ने कमाल कर दिया है । उनकी दृष्टि व्यापक है । इसी कारण उनकी अनुभूति भी व्यापकता लिए हुए है । सम्पूर्ण ससार उनकी सवेदना में डूबा हुआ है । इसीलिए जीवात्मा स्वरूप रत्नसेन ब्रह्मस्वरूप पद्मावती से मिलने के लिए अकेला नहीं जाता पूरे समाज के साथ जाता है । दूसरी ओर नागमती के वियोग वर्णन में भी हम इसी व्यापकता को पाते हैं । वह पशु पक्षी तथा सम्पूर्ण प्रकृति में अपनी वेदना को फूक देना चाहती है ।

जायसी की यही विशेपता उन्हे अधिकाधिक सरस और सवेदनशील बना देती है । उनके निकट सबकी सहानुभूति रहती है । प्रकृति के कण-कण में अनन्त ज्योतिमय का प्रकाश देखना ही जायसी के रहस्यवाद में मधुरता भर देता है । लोक को साथ रखने से उनकी सरसता सुरक्षित है । कबीर ने प्रकृति को माया कहकर ठुकरा दिया है । इसी कारण वे जायसी की भाँति सरस न बन पाये ।

कबीर और जायसी के रहस्यवाद में अन्तर होने का कारण एक और भी है—वह यह कि कबीर शकर के अद्वैतवाद से प्रभावित थे और जायसी सूफी फकीरो की प्रेम साधना से । ज्ञान और प्रेम मे अन्तर स्वाभाविक ही है, यद्यपि दोनो एक ही लक्ष्य के गामी हैं । गुरु की महत्ता दोनो स्वीकार करते हैं । जायसी का तो पूर्ण विश्वास है कि बिना गुरु के निर्गुण कौन पा सकता है ।

दोनो ने गुरु को अत्यधिक महत्व देते हुए उसे साधना मार्ग का प्रदर्शक बताया है । वह साधक के जीवन में आने वाली कठिनाइयो का सद्ज्ञान द्वारा निवारण करता है ।

गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागूं पांव ।
बलिहारी वा गुरु की जिन गोविन्द दियो बताय ॥

—कबीर

गुरु विरह चिनगी जो मेला ।
जो सुलगाई लेइ सो चेला ॥

—जायसी

गुरु के प्रयत्नो से आत्मा और परमात्मा उसी तरह मिलते हैं जैसे शराब और पानी ।

वस्तुतः भावुकता ने ही जायसी को जनता के अधिक निकट कर दिया । जायसी फारसी और भारती दोनो प्रेम पद्धतियो से प्रभावित है । किन्तु कबीर विशुद्ध भारतीय पद्धति से ही, कही-कही अवश्य सूफियो का प्रभाव स्पष्ट झलक आया है । पर यह निश्चित है कि कबीर की रुझान उधर स्थायी रुप से नही थी इस प्रकार के कुछ उदाहरण लीजिए —

हरि रस पीया जानिए कबहूँ न जाय खुमार ।
मैमन्ता घूमत फिरै नाहीं तन की सार ॥
लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गइ लाल ॥

अन्त मे डा० त्रिगुणायत के शब्दो मे हम कहेगे कि जायसी और कबीर दोनो हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं एक का रहस्यवाद भारतीय भक्ति मार्ग और श्रुति ग्रन्थ, सिद्धमद, और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित होने के कारण आध्यात्मिक एकान्तिक व्यष्टिमूलक सजीव और वर्णनात्मक है; दूसरे का सूफी साधना भावना से अनुप्राणित होने के कारण अत्यन्त सरस सकेतात्मक और समष्टिमूलक है । वह प्रेमाख्यान के सहारे अभिव्यक्त होने के नाते मधुर और नाटकीय भी है ।

आइये मानवता के एकनिष्ठ पुजारी महाकवि कबीर के निम्न सुन्दर और आध्यात्मिक पद के साथ इस प्रसग को समाप्त करे ।

जोगिया की नगरी बसै मति कोई ।
जो रै बसे सो जोगिया होई ॥
वही जोगिया के उलटा ज्ञाना ।
कारा चोला नाहीं माना ॥

प्रगट सो कन्या गुप्ता धारी।
तामें मूल सजीवन भारी॥
वा जोगिया की युक्ति जो बूझै।
राम रमै से त्रिभुवन सूझै॥
अमृत बेली छन-छन पीवै।
कहैं कबीर सो जुग-जुग जीवै॥

प्रश्न २३—पद्मावत एक अन्योक्ति, सूफी काव्यो की विशेषताएँ और सूफी धर्म के तत्व पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

जायसी ने पद्मावत के अन्त में लिखा है —

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुध पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनियाँ-धधा। बाँधा सोइ न एहि चित बधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौं बूझै पारहु॥

अर्थात् तन रूपी चित्तौड का मन रूपी रत्नसेन राजा है। हृदय सिंघल है और पद्मिनी ही प्रज्ञा अथवा ब्रह्म है जिसे प्राप्त करने के लिए सुआ रूपी गुरु की आवश्यकता पडती है। विना गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार नही किया जा सकता। नागमती रूपी दुनियाँ धधा मनुष्य को विविध प्रकार से अपने में बाधे रहती है, जो उसे समझ लेता है उसे मुक्ति मिलती है। साधना के मार्ग में अलाउद्दीन रूपी माया और राघवचेतन रूपी शैतान सबसे बडे अवरोध हैं। इन्हें हटाकर ही चरम सिद्धि की प्राप्ति की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण कथा एक रूपक (अन्योक्ति) बन जाती है। कुछ विद्वानो का यह कथन है कि उपर्युक्त अश जायसी कृत नही है और जब यह अश जायसी कृत नहीं है तो फिर सारी कथा को निश्चित रूप से अन्योक्ति ही मान बैठना काव्य और कथा के साथ जबर्दस्ती करना है। इन

विद्वानों को ग्रंथ में आये अनेक पात्र अपने प्रतीकात्मक अर्थ की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ नहीं दिखाई देते। यहाँ तक कि 'पद्मावती' और 'रत्नसेन' के भी प्रतीकों का ठीक-ठीक निर्वाह सर्वत्र नहीं हो पाया है। इन लोगों का यह भी कहना है कि जायसी ने एक सामान्य कथा को काव्यमयी भाषा में प्रस्तुत किया है। उस समय उनका ऐसा अन्योक्ति पूर्ण उद्देश्य नहीं था। भाव और कल्पना के धनी जायसी की लेखनी से कुछ ऐसे मर्म स्पर्शी स्थल अंकित हो गए हैं कि हमें वहाँ अलौकिक सत्ता का आभास होने लगता है। परन्तु ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं और इन्हीं स्थलों के आधार पर सम्पूर्ण 'पद्मावत' को एक अन्योक्ति नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त मत के समर्थक विद्वानों के विरोध में मुझे यह कहना है कि जिस आधार पर उन्होंने पद्मावत के उक्त अंश को प्रक्षिप्त माना है वह कोई विशेष प्रामाणिक आधार नहीं कहा जा सकता। एक गुट का समर्थन पा लेने मात्र से उक्त अंश को मैं प्रक्षिप्त अंश मानने के लिए तैयार नहीं। जायसी साहित्य की अभी अधिकाधिक खोज होनी चाहिए और प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर ही विद्वानों को कोई ऐसा सर्वमान्य निर्णय करना चाहिए। अभी तक जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। उपर्युक्त अंश कितनी पाण्डुलिपियों में है और कितनी में नहीं—यह बात कोई अधिक महत्व नहीं रखती। मेरा तो निवेदन इतना ही है कि काव्य के मूल प्रेरणा-स्रोत को देखा जाय। पद्मावत के प्रणेता को पद्मावत लिखने की प्रेरणा किस बिन्दु से मिली है? पता लगाने पर सम्भवतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि जायसी का हृदय एक अलौकिक प्रणय की पीर से भरा होने के नाते ही पद्मावत ऐसे महाकाव्य को वाणी दे सका है। 'पद्मावत' लिखने के मूल में पद्मावती और रत्नसेन की सामान्य प्रेम-कथा की भावना का प्राधान्य नहीं दिखाई देता है। अलौकिक प्रेम से अभिभूत होने के कारण ही ऐसे उत्कृष्ट भाव और कल्पना का सृजन कवि द्वारा हो सकता है, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जायसी एक सूफी भक्त हैं जिसमें शायद दो मत नहीं। सूफी भक्तों का मूल उद्देश्य क्या रहा है? इसे विद्वान भली-भाँति जानते हैं। जायसी अपने मूल लक्ष्य को

भूल जाते यह मैं कैसे मान लूं ? पद्मावत में रूपक (अन्योक्ति) का सागोपाग निर्वाह न होने का कारण कवि के शास्त्रीय अध्ययन का अभाव कहा जा सकता है। कवि के जीवन वृत्त वाले प्रश्न में मै इस पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ। विधिवत् अध्ययन के अभाव में कवि अपने चरित्रो का सतुलन नही रख पाया है। एक प्रमुख कारण यह भी है कि इस दिशा में उसका निर्देशक करने वाला कोई नही था। केवल अनुभव-ज्ञान के आधार पर इतने विशाल काव्य का प्रणयन करते समय यदि कवि से कही-कही असतुलन हो गया है तो इस आधार पर हम उसके मूल लक्ष्य पर आक्षेप नही कर सकते। इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा उदाहरण लीजिए— किसी युवती से यदि एक वैज्ञानिक और एक साहित्यकार दोनो प्रेम करें और कोई ऐसा अवसर आये कि इनके प्रेम की माप की जाने लगे तो शायद साहित्यकार को अधिक अक मिल जायें क्योकि वह वाणी का धनी है और बेचारे वैज्ञानिक के पास अगाध भावो से भरा, पवित्र प्रेम से परिप्लावित किन्तु मूक-हृदय-मात्र है। जायसी का भी अध्ययन यदि शास्त्रीय ढग पर हुआ होता तो शायद अपनी इस असावधानी को वे बडी चतुराई से छिपा ले गए होते, परन्तु अनाथ जायसी के भाग्य में तो विद्यालय का मुँह देखना भी नही बदा था। विश्व की खुली पाठशाला में अनुभव का पाठ, पढ-पढ कर वे विद्वान बने थे और प्रकृति के करण-करण में परम प्रियतम की सत्ता का आभास पाकर महाकवि।

पद्मावत में सूफीमत के साथ-साथ हठयोग आदि का भी पर्याप्त समावेश है। कुछ उदाहरण देखिए :—

चौदह भुवन जे तर-उपराहीं।
ते सब मानुष के घट माँही॥

× × ×

नौ पौरी वाकी नौ खण्डा।
नवौं जो चढै जाइ बरभंगा॥

× × ×

फिरहि पांच कोतवार सुपौरी।
कांपे पांव चढत वह पोरी ॥
× × ×
गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया,
पुरुष देस ओही कै छाया।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हें,
जेइ पावा ते आपहि चीन्हें।
नौ पौरी ते गढ मँझियारा,
औ तहँ फिरहि पांव कोतवारा।
दसवँ दुआर गुपुत इक ताका,
अगम चढाव वाट मुठि वाका।
भेदे जाइ कोइ वह घाटी,
जो लह भेद चढे होइ चाटी।
गढ़तर कुंट सुरंग तेहि भांवा,
तंह वह पंथ, कहाँ तोहि पांवा।
दसंव दुआर ताल कै लेखा,
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।

इन पक्तियो मे हठयोगी साधना का चौदहो लोक शरीर के नवद्वार पर (नवपौरी) कुण्डलिनी शक्ति की नवस्थितियों (नवखंड के ब्रह्म रध्र) (दशवां दुआर), पच-प्राण (पांच कोतवार), आत्मबोध (आपुहि चीन्हे), साधना का दुर्गम मार्ग (अगम चढाव वाट मुठि बांका), कुण्डलिनी मार्ग (घाटी) पिपीलिका मार्ग (चढे होइ चांटी), अग्नि चक्र (गढतर कुट), अतर्मुखी दृष्टि (उलटि दिस्टि) का स्पष्ट सकेत है।

सूफीमत के अनुसार साधना मार्ग की चारो अवस्थाओ (शरीयत, तरीकत, मारिफत, और हकीकत) का स्पष्ट विवेचन हमे पद्मावत मे मिल जाता है।

नवौ खंड नव पौरी, औ तंह वज्र केवार।
चारि बसेरे जो चढ़ै, सत सौं उतरै पार ॥

यहाँ चारि बसेरे से चारों अवस्थाओ तथा सत से सात अवस्थाओं की ओर कवि का सकेत है ।

सातो मुकामात रत्नसेन रूपी साधक के मार्ग मे आये हैं और साधनामार्ग की समस्त कठिनाइयो को पार करके रत्नसेन ने पद्मावती को प्राप्त किया है ।

'पद्मावत' की रूपक कथा को और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए मैं यहाँ डा० रामरतन भटनागर द्वारा किए गए विवेचन को प्रस्तुत करने का, लोभ सवरण नही कर सकता ।

इसमें चित्तौड तन है, रत्नसेन मन है । चित्तौड रूपी तन में स्थित मन साधारण रूप से लौकिक विषय वासना में लिपटा रहता है । रत्नसेन केवल तन में स्थित है, उसकी वृत्तियाँ कायिक हैं । वह दुनियाँ-धन्धे (नागमती) में लिप्त है । परन्तु ईश्वर की अनुकम्पा से एक दिन उसे नागमती से भी बडे सौंदर्य का पता चल जाता है । इस दुनियाँ के धधे से भी बडा धधा मनुष्य के लिए है, वह जान लेता है । उस लक्ष्य के लिये उसके हृदय में आकुलता उत्पन्न हो जाती है परन्तु उस लक्ष्य तक उसका पथप्रदर्शक कौन बने । पथप्रदर्शक बनता है हीरामन तोता (सुआ) वह सूफी साधना के 'गुरु' का प्रतीक है । अनेक बाधाओ को पारकर के गुरू के दिखाये पथ पर बढता हुआ साधक रत्नसेन लक्ष्य की प्राप्ति करता है । परन्तु लक्ष्य कही बाहर नही है । इसी हृदय (सिंहल) के भीतर अवस्थित सहज सौंदर्य बुद्धि (Intution) ही ही साधक का लक्ष्य है । पहले इस सहज बुद्धि (पद्मिनी) को ही पाना होता है । सूफी परिभाषा में इस सकेत-कोष को इस प्रकार भी रख सकते हैं —

चित्तौड = तन = } सालिक, आविद की 'अक्ल'
(राजा) रत्नसेन = मन = }

(सुआ) हीरामन = गुरू = मुरशिद

सिंहलद्वीप = हृदय = कल्ब (रूह)

पद्मिनी = सहजबुद्धि = मुआरिफ (प्रज्ञा)

नागमती = दुनियाँ-धधा = नफ्स

उत्तरार्ध में नागमती (नफ्स) का कोई महत्व नही रह जाता। वह पद्मावती (म्वारिफ) की पोषक या सहगामिनी मात्र है। 'सुआ' और 'सिंहल' के प्रतीक भी समाप्त हो जाते हैं। कुछ नये प्रतीक आये हैं। राघव चेतन—शैतान) अलाउद्दीन सुलतान—माया। इन दो प्रतीको को देकर उत्तर कथा की ओर से जायमी निश्चिन्त हो गए हैं और अर्थ खोलने के लिए पडित-बुद्धि को चैलेन्ज देते हैं। साधक की नफ्स—शुद्धि और प्रज्ञा (मुआरिफ) से उसका मेल शैतान को पसन्द नही। खुदा और बन्दे के बीच में शैतान है। मुआरिफ खुदा की ओर ले जाती है, अत शैतान को यह विष लगता है। इसलिए वह बदे और खुदा (रत्नसेन और पद्मावती) में विछोह डालना चाहता है। वह माया की शरण जता है। सूफी परिभाषा में राघवचेतन शैतान है और अलाउद्दीन—को जायसी ने 'माया' कहा है सूफी दार्शनिक चिंतन में माया को स्थान ही नही है। हमारे यहाँ 'माया' जीव-ब्रह्म के बीच का व्यवधान है। माया का अर्थ सांसारिकता भी है जो जीव-ब्रह्म के मिलन में बाधक होती है जो साधक को ऐन्द्रियता की ओर ले जाती है। इस्लाम में 'माया' का स्थान शैतान ने ले लिया है। अलाउद्दीन को 'माया' कहकर जायसी ने भारतीय दार्शनिक चिंतन के एक शब्द को अपना लिया, परन्तु विद्वानो के लिये समस्या खडी कर दी। अलाउद्दीन—माया ?

सालिक जब सहज-बुद्धि, प्रज्ञा या मुआरिफ को प्राप्त हो गया तो फिर शैतान और माया का क्या काम ? परत् जायसी तो कथा की रक्षा करते हुए आगे बढना चाहते थे। यदि वे ३७ वें खण्ड (पुत्रजन्म खण्ड) पर ही कहानी समाप्त कर देते तो प्रतीको की आवश्यकता ही नही पडती। परन्तु अलाउद्दीन-पद्मिनी की अत्यत प्रसिद्ध कथा को वे एक दम आँख की ओट नही कर सकते थे। जब वह उत्तरार्द्ध की सारी कथा लिख गये तो उन्हें विवश होकर उसके सूफी-अर्थ करने पडे। इसी मे नए प्रतीक आये। शैतान और (या) माया साधक के प्रज्ञा के आनद मे बाधा डालने के लिये सब कुछ करेगा यही तथ्य है। हो सकता है वह सफल भी हो जाय (जैसा पद्मावत में हुआ है।) परतु यह किसी निश्चित तथ्य को उपस्थित नही करता। साधारण कथा को लेकर उस

पर आध्यात्म पक्ष का आरोप करने मे जो कठिनाइयाँ होती हैं वह जायसी को भी हुई।

संक्षेप मे मुझे यही कहना है कि 'तन चितउर मन राजा कीन्हा' वाला अंश प्रक्षिप्त नहीं है। फिर संपूर्ण कथा को एक अन्योक्ति मान लेने में किसी को विरोध नहीं होना चाहिए। क्योकि पद्मावत की मूल कथा साधना की कथा है, सामान्य कथा नहीं। साधना के मार्ग मे पग पग पर तर्क से काम लेना काव्य की हत्या करना है। जिस निराकार भक्ति का मसनवी शैली मे जायसी ने प्रतिपादन किया है उसकी महानता मे किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। कवि के शास्त्रीय अध्ययन की कमी, काव्य-गुरु का अभाव, जीवन की अनस्थिरता आदि ने मिलकर पद्मावत मे अनेक स्थलो पर उसके प्रतीको की निर्वाहगति मे विघ्न डाला है जिसके लिए कवि को एक दम क्षमा तो नहीं किया जा सकता किन्तु फिर भी उसकी मूल साधना को ध्यान मे रखकर हमें उसके प्रतीको पर विश्वास करना ही पडेगा। काव्य और भक्ति मस्तिष्क के साथी न होकर हृदय के अधिक साथी हैं। डा० सुधीन्द्र ने ठीक ही कहा है "पद्मावत एक विराट अध्यात्मिक रूपक संकेत अथवा "अन्योक्ति" है, जिसमें लौकिक, शारीरिक और बोधगम्य प्रतीक के द्वारा अलौकिक, अशरीरी और ज्ञानातीत ब्रह्म, जीव और उसके चिरन्तन सम्बन्ध अद्वैत की व्यंजना की है।" पद्मावत अपने मे समासोक्ति की अधिकाधिक विशेषताओं को समेटते हुए भी अतत. एक अन्योक्ति काव्य है।

मेरी मान्यतायें

१ पद्मावत की मूल कथा अन्योक्ति है।

२ काव्य मे आये हर पात्र की प्रतीकात्मकता का प्रश्न उठा कवि के मूल उद्देश्य पर पर्दा नहीं डाला जा सकता।

३ काव्य मे अंकित प्रत्येक पंक्ति अन्योक्ति अर्थ को नहीं ध्वनित करेगी।

४ भक्त साधक होने के साथ-साथ जायसी एक महाकवि भी हैं जो देश

५ काव्य के अपेक्षित विस्तार और कवि की दृष्टि विशदता की ओर से आँख मूंद कर एकमात्र रूढिवादिता से अन्योक्ति का अर्थ न ध्वनित किया जा सकेगा।

६ 'तन चित उर मन राजा कीन्हा' वाला अश जायसी कृत ही है।

७ जायसी का लक्ष्य महान, युग और साहित्य की माँग के अनुकूल था।

हिन्दी सूफी काव्य की विशेषताएँ :—हिन्दी सूफी-काव्य की विशेषताओ को जानने से पूर्व हमें उसकी पृष्ठि भूमि का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

देश के भाग्याकाश से वीरगाथाकालीन विपय परिस्थितियो के वादल छँटने के उपरात देश में एक नये वातावरण की सृष्टि हुई। राजनीति और जीवन की नित्य व्यवहारिक गति-विधि से प्रभावित हो हिन्दुओ और मुसलमानो में मेल-जोल के भावो का उदय हुआ। पारस्परिक भेद-भावो को दूर करने के लिये अनेक सन्त और महात्मा आगे आये। इनमें कवीरदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवीरदास ने धर्म के वाह्याडबरो से मुक्त हो निर्गुण-उपासना का मार्ग बताया। भेद-भाव से रहित, सामान्य मानवीय गुणो से युक्त जीवन पर बल दिया। उनके पथ का अनुगमन करने वाले अन्य सतो ने भी उनकी इस क्रिया में हाथ बँटाया। मुसलमानो की ओर से यह कार्य प्रेम कहानियाँ लिखकर सूफी सतो ने किया। कबीर आदि ने पारस्परिक भेद-भाव को मिटाने के लिए जो ढग अपनाया वह तीखा होने के साथ-साथ प्रति क्रियावादी भी था। इससे उन्हें अभीष्ट सफलता न मिली। आचार्य शुक्ल के शब्दो में "मनुष्य-मनुष्य के वीच जो रागात्मक सबध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदय साम्य का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है उसकी अभिव्यजना उससे न हुई। कुतुवन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एकसा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू और मुसलमाल-हृदय को आमने-सामने करके अजनवीपन

मिटाने वालों मे इन्हीं का नाम लेना पडेगा।" इन साधकों ने हिन्दी में 'एक विशेष प्रकार के साहित्य को लुप्त होने से बचा लिया।

प्रेम कहानियो की यह परम्परा कुतवन शेख से आरम्भ होती है जो सोलहवी शताब्दी के आरम्भ में उत्पन्न हुए थे। कुतवन के पश्चात् मझन जायसी, उसमान शेख नवी, कासिमशाह तथा नूर मोहम्मद आदि कई प्रेम गाथाकार हुए। इन सब में 'पद्मावत' के अमर प्रणेता जायसी को सर्वाधिक ख्याति मिली।

प्रेम कहानियो के उक्त सभी लेखक सूफी हैं। इनके काव्यो मे सूफी सिद्धांत बादल में पानी की बूंद की भांति पिरोये हुए हैं। इसी नाते इनको सूफी काव्य कहा जाता है। हमें इन्हीं काव्यो की समष्टिगत विशेषताओ पर प्रकाश डालना है।

इन सभी सूफी काव्यो में काफी समानता है। सबकी मूल प्रेरक भावना एक ही है। हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के प्रयत्न के साथ-साथ परम-प्रियतम और जीव के अनन्त सम्बन्ध का दार्शनिक विवेचन करना ही इन कवियो का प्रमुख लक्ष्य रहा है। सामान्यतया इन सूफी काव्यो की निम्नलिखित विशेषताएँ कही जा सकती हैं ।—

(१) कथानक भारतीय हिन्दू परिवार से सम्बन्धित कल्पना और इतिहास का मिश्रण।
(२) चरित्रो का हिन्दू संस्कृति के अनुसार निर्माण।
(३) प्रेम पद्धति पर सूफी धर्म का प्रभाव।
(४) फारसी मसनवी शैली पर घटनाओ का संगठन।
(५) वियोग की प्रधानता।
(६) भाव व्यंजना में अनूठापन तथा लोक भाषा का प्रयोग।
(७) समस्त कथा का अन्योक्ति रूप मे कथन।
(८) हठयोग का समावेश।
(९) हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय की चेष्टा।
(१०) जीव को पुरुष और ब्रह्म को स्त्री के रूप में ग्रहण करना।

समस्त सूफी काव्यो की यह प्रमुख विशेषता है कि उनकी कथा का आधार हिन्दू परिवार है। पद्मावत, मधुमालती, मृगावती तथा चित्रावली आदि सभी ग्रथों की कथायें हिन्दू घरानो से सम्बन्धित हैं जिनके द्वारा तात्कालिक भारतीय समाज की रीति-नीति और सांस्कृतिक विकास ह्रास का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। सभी प्रेम कथाओ में कल्पना और इतिहास का सम्मिश्रण है। कवियो ने इतिहास से अपनी रुचि तथा उद्देश्य के अनुकूल प्रेम-कथायें चुनकर और सूफी साधना के सिद्धान्तों पर रुचिर-कल्पना के माध्यमें से उनका विकास किया। जायसी का पद्मावत ऐसा ही एक उत्कृष्ट काव्य है। उसका पूर्वार्द्ध काल्पनिक और उत्तरार्द्ध बहुत कुछ ऐतिहासिक आधार पर है। जायसी की मनोहर कल्पना ने उसमें जो प्राण प्रतिष्ठा की है वह अवर्णनीय है।

सभी सूफी कवियो ने अपने पात्रो (विशेषत नारी पात्रो) का चारित्रिक विकास भारतीय सस्कृति के आधार पर किया है इन काव्यो मे वर्णित प्रमुख नारियाँ दिव्य प्रेम और सतीत्व की साक्षात देवियाँ प्रतीत होती हैं। पद्मावत की नागमती का पावन-चरित्र एक आदर्श भारतीय रमणी की जीवन-झाँकी प्रस्तुत करता है। जिसमें हमारी सस्कृति और सामाजिक निष्ठा बोलती है। नागमती को अपने काव्य एव हृदय की समस्त वेदना दे जायसी भारतीय साहित्य में सदैव के लिए अमर हो गए।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि समस्त सूफी साधना का प्राण प्रेम है। सूफी काव्यो मे उसी दिव्य प्रेम की कथा कही गई है। यह प्रेम लौकिक से आरम्भ होकर अलौकिक में परिवर्तित हो जाता है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति ही इन सूफी काव्यों का चरम लक्ष्य है। सूफी-साधना के आधार पर इन प्रेम कहानियो का विकास हुआ है कथा का नायक पुरुष जीव का प्रतीक और नायिका ब्रह्म की। गुरु के द्वारा उस ब्रह्म एव परम प्रियतम के प्रति पूर्व राग उत्पन्न होता है और फिर उसी के निर्देशन में सूफी-साधना के आधार पर विकसित होता हुआ वह उत्कृष्ट प्रेम में बदल जाता है।

प्राय सभी प्रेमाख्यानक कवियो का प्रणयन मसनवी शैली पर हुआ है कथा प्रारम्भ विकास और उपसहार सभी उसी पद्धति का अनुकरण करते हैं

पद्मावत भी उसी शैली का एक उत्कृष्ट काव्य है उसमें मसनवी पद्धति के लिए अपेक्षित समस्त बातों का यथास्थान उल्लेख है।

सभी सूफी काव्यो में संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष की प्रधानता है उसका प्रधान कारण यह है कि यह अखिल सृष्टि उस परम प्रिय के वियोग में शोकाकुल है। सूफी काव्यों में उसी प्रियतम के अनन्य प्रेम की लौकिक आधार पर व्यंजना की गयी है उससे वियोग की प्रधानता स्वभाविक रूप से हो गयी है प्रेम की सच्ची कसौटी संयोग न होकर वियोग ही है। उत्कृष्ट प्रेम की कहानी कहने वाले ये सूफी कवि फिर कैसे इसे भूल जाते।

सूफी ग्रन्थो की भावव्यंजना का अनूठापन अवर्णनीय है ये कवि मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियो की स्वाभाविक और विशद व्यंजना प्रस्तुत करते हैं पद्मावत मे प्रेम या रीत भाव के अतिरिक्त स्वामिभक्ति, वीर-दर्प तथा पातिव्रत आदि अनेक भावो का जो हृदयग्राही चित्र जायसी ने खीचा है वह उनकी काव्य कुशलता का स्पष्ट प्रमाण है। धीरोदात्त नायक के हृदय की उदात्त भावनाओं-दया, क्षमा, धैर्य, सहनशीलता तथा शूरवीरता आदि का चित्रण देखते ही बनता है वास्तव में इन सभी सूफी काव्यकारो ने अपने ग्रन्थ का नायक अभिजात्य वर्ग का रक्खा है। वे सभी आदर्श प्रेमी दृढव्रती तथा वीर और अपूर्व साहसी हैं। लोक भाषा में इन कथाओ का माधुर्य और भी निखर उठा है।

सभी प्रेम कथाएँ प्राय अन्योक्ति के रूप मे कही गयी हैं अर्थात् अलौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक कथा का रहस्य उद्घाटित किया गया है। पद्मावत एक सुन्दर अन्योक्ति काव्य है इसकी चर्चा हम पिछले पृष्ठो मे कर चुके हैं।

सभी सूफी काव्यो पर हठयोग का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है सूफी धर्म का विकास बताते समय मैंने इस बात का संकेत किया है कि किस प्रकार नाथ पंथ तथा हठयोग का समावेश उसमें सहज ही हो गया था। जायसी के पद्मावत मे तो हठयोग का स्पष्ट स्वरूप देखा जा सकता है अनेक स्थल इस बात की प्रमाणिक पुष्टि करते हैं।

सूफी काव्यकारों ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य जो किया वह है हिन्दू मुस्लिम सस्कृति के समन्वय की चेष्टा। हिन्दू सस्कृति की मूल विशेपताग्रो को' अक्षुण्य रखते हुए इन्होने अपनी सूफी साधना का प्रदिपादन किया। इन्होने हिन्दू दर्शन के प्रति अपनी अपूर्व निष्ठा प्रकट की। साथ ही साथ अपनी सूफी साधना के प्रचार व प्रसार के मूल लक्ष्य को भी वे नही भूले। जो कुछ भी हो इन मुसलमान सूफी काव्यकारो ने जिस साहित्य की सृष्टि की वह हिन्दू और मुस्लिम दोनो को समान रूप से प्रभावित करने वाला हुआ आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"**इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओ की कहानियाँ हिन्दुओं की बोली में पूर्ण सहृदयता से कह कर उनके जीवन की मर्म स्पर्शिणी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी वह जायसी द्वारा पूरी हुई।**"

मानव हृदय की सरलतम भावव्यजना करने वाले इन सूफी काव्यो में ब्रह्म को स्त्री और जीव को पुरुष रूप में ग्रहण किया गया है जायसी के पद्मावत में रत्नसेन आत्मा का प्रतीक और पद्मावती परमात्मा का स्वरूप है। सूफी साधना में जीव को ब्रह्म में लय होने के लिए चार अवस्थायें पार करनी होती है। वे हैं शरीकत, तरीकत, मारीफत और हकीकत (सिद्धावस्था)। 'जायसी नें' इसकी ओर स्पष्ट सकेत किया है।

चार बसेरे जो चढ़े सत से उतरे पार।

निर्गुण उपासना का जनता में प्रचार करने के लिये ज्ञान मार्गी सन्तो की शैली उपयुक्त न हो सकी। उस कमी को इन सूफी काव्यकारो ने अपनी प्रेम कथाओ के माध्यम से पूर्ण किया।

सूफी साहित्य ने जीवन में सरलता और पवित्रता का सचार किया और समाज के भावात्मक वैर विरोध को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस साहित्य से भारतीय साहित्य के एक विशेप अग की पूर्ति हुई जिसका अपना एक निजी महत्व है वैसे इन सूफी कवियो का मूल तथा परोक्ष लक्ष्य चाहे जो

कुछ रहा हो परन्तु प्रत्यक्ष में इन्होंने जिस साहित्य की सृष्टि की उससे हिन्दी की अपूर्व श्री वृद्धि हुई। इस नाते सूफी साहित्य का स्थायी महत्व है।

सूफी साधना के तत्व :—सूफियों के अनुसार अनादि अनन्त स्वरूप ब्रह्म एक है। अखिल सृष्टि उसी ब्रह्म की क्रीडा है। सृष्टि के विविध रूपों में वही भासमान हो रहा है। वह सौंदर्य का प्रकाश-पुञ्ज है जिसके परिणाम-स्वरूप उसे स्वयं से ही प्रेम हो गया। अस्तु उस महान आत्म-सौंदर्य के अवलोकनार्थ उसने अपने को सृष्टि के नाना रूपों में बिखेर दिया। जीव उसी का अंग है, किन्तु प्रपंच में पडा रहने के कारण भेद-वृत्ति से युक्त हो गया है। वह अपने पूर्व स्वरूप को भूल चुका है और अहमन्यतावश विश्व के प्रपंच में लिप्त रहता है।

इस प्रपंच से मुक्त होने के लिए साधक को साधना-पथ का अनुगमन करना पडता है। जिस पर वह क्रमश. शरीयत, तरीकत और मारिफत तथा हकीकत अवस्थाओं को प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ अन्तर्यामा भी होती हैं जिसमें सात कयाम होते हैं। वे सात कयाम और कुछ नही सात स्थितियाँ ही हैं। तदनंतर साधक ब्रह्मरंध्र में ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। इस कार्य में उसे 'योग' से भी पर्याप्त सहायता लेनी पडती है। योग का समावेश भारतीय सूफीमत की अपनी विशेषता है। बाह्य सूफीमत में ऐसा नहीं है। आइए उक्त चारों अवस्थाओं और सातों कयाम का अब विधिवत अध्ययन कर लिया जाय —

शरीयत :—यह सूफी साधक की प्रथमावस्था है इस अवस्था में उसमें और एक सामान्य मुसलमान में कोई अन्तर नही होता। दोनों शरअ के अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं। हाँ परिणाम में अवश्य अन्तर है और वह यह कि मुसलमान के लिए शरीयत ध्येय है परन्तु सूफी इसके विपरीत आगे बढता है। यदि वह इससे आगे न बढे तो सूफी ही नहीं कहा जायगा। इस अवस्था में तो उसे मोमिन की संज्ञा मिली रहती है। मोमिन को शरीयत की मंजिल पार करने में कुछ मुकामात से गुजरना पडता है जिनके नाम इस प्रकार है— तोबा, जह्द, सब्र, शुक्र, रिजाअ, खौफ, तवक्कुल, रजा, फिक्र और मोहब्बत।

सर्वप्रथम मोमिन (अर्थात् अल्लाह के प्यारे) को उन बातो का त्याग तथा पश्चाताप करना पडता है जो अल्लाह के रास्ते मे बाधक हैं। इन्हे 'तोबा' कहा जाता है। उसे इन बाधाओ से लडना पडता है जो 'जहद' कहलाती हैं। प्रयत्न मे सफल होने पर उसे 'सब्र' का सहारा लेना पडता है नहीं तो उसमे 'अह' के उदय हो जाने की सभावना रहती है अह साधना का विनाशक है। भुलावा देने के लिए शैतान सदैव तैयार रहता है। इस नाते मोमिन को काफी सतर्क रहना पडता है इसलिए अपनी सफलता में उसे अल्लाह का 'शुक्र' मानना पडता है। ईश्वर के आदेश पर चलना 'रजाअ' उससे भयभीत रहना 'खौफ' जीविका के लिए इधर-उधर न भटकना 'तवक्कुल' तथा तटस्थ होकर ईश्वर का ध्यान करना 'रजा' है। इस प्रकार निरन्तर साधना 'फिक्र' से उसमें अल्लाह की मोहव्वत का जन्म होता है 'मोहव्वत' की मजिल पर पहुँच कर मोमिन 'सूफी' (सालिक) बन जाता है और फिर तरीकत में प्रवेश करने को पाँव आगे बढाता है।

तरीकत :—वस्तुत यह 'सूफी' की प्रथमा और 'साधक' की द्वितीयावस्था है। इस समय मोमिन साधक (सालिक) बन जाता है और उसे किसी भेदिए की आवश्यकता पडती है। वह भेदिया मुरशिद अर्थात् गुरु होता है जो उसे तरीकत के रहस्यो का परिचय कराता है। पीर या मुरशिद अपने मुरीद (शिष्य) की भगवान के प्रति सच्ची लगन देख उसमें प्रेम की चिनगारी डाल देता है। अब चेले का यह काम होता है कि वह उस चिनगी को सुलगाले।

गुरु विरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाई लेइ सो चेला।

—जायसी

पीर अपने मुरीद की प्रत्येक कमजोरी को भली-भाति जानता है, इसलिए वह उसमें ऐसे भाव भरता है जिससे शिष्य को अपने लक्ष्य की दिशा में गति मिले।

पीर की अनुकपा, दया, दाक्षिण्य तथा अपनी सच्ची लगन के सहारे इस द्वितीयावस्था को पार कर साधक तीसरी कक्षा में प्रवेश करता है।

मारिफत :—यह ज्ञानावस्था है। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते मुरीद, परम सत्ता के आभास के साथ-साथ उसके सारे रहस्यो की कुँजी भी प्राप्त कर लेता

है। इस अवस्था को 'हाल' की दशा भी कहा जाता है। सूफी की संज्ञा 'सालिक' से अब 'आशिफ' हो जाती है।

यह अवस्था ईश्वरीय कृपा का प्रसाद है "अत. वह बिना शरीयत और तरीकत के व्याकरण के भी सम्पन्न हो सकता है" (तसव्वुफ अथवा सूफीमत—आचार्य डाक्टर चन्द्रबली पाण्डेय)। इस अवस्था के उपरांत ही साधक हकीकत में प्रवेश करता है।

हकीकत :—इस अवस्था तक आते-आते साधना मे पूर्णता आ जाती है। यह अन्तिम अवस्था है। इसमे साधक 'अनलहक' का उदघोस करता है। परम सत्ता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर साधक ब्रह्ममय हो जाता है। यही फना की स्थिति है। इस अवस्था को 'मकाम' भी कहा जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय की एक रूपता से भी ऊपर साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त कर मनुष्य पूर्ण बन जाता है। उसकी आत्मा ईश्वर मे निवास करती है। यही सूफी का चरम् लक्ष्य 'बका' है। 'फना' और 'बका' में अन्तर इतना ही है कि 'फना' में साधक का 'अहंभव' तिरोहित हो जाता है और तब वह सब प्रकार के द्वन्दो से मुक्त हो उस परम प्रियतम में लय हो जाता है जिसे 'बका' की स्थिति कहते हैं।

इन चारो अवस्थाओ को अपने यहाँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था कहते हैं।

सूफियो ने उपर्युक्त चारो अवस्थाओ के साथ-साथ चार लोकों की भी कल्पना की है जो नासूत, मलकूत जबरूत और लाहूत की संज्ञा पाते हैं।

"साधारण धार्मिक मुसलमान (मोमिन) प्रथमावस्था में शरीयत का पालन करते हुए नासूत (नर लोक) का सेवन करता है, द्वितीयावस्था में मुरीद 'तरीकत' पर विचरण करता हुआ मलकूत (देवलोक) का निवासी बनता है। तत्पश्चात् 'सालिक' तुरीयावस्था (मारिफत) मे जबरूत (ऐश्वर्य लोक) में विहार करता है अन्त में 'आरिफ'-'हकीकत' अवस्था में लाहूत (सत्य लोक शिवा माधुर्य लोक) में विचरण करता है।" —डा० जयदेव

सूफियों के मुकामात—सूफियो के निम्न सात मुकामात बताये जाते हैं।

१—अबूदिया (यह मोमिन के लिए है)

२—इश्क

३—जहद

४—म्वारिफ

५—वज्द

६—हकीकी

७—वस्ल

जायसी ने भी सूफियो के सात ही मुकामात माने हैं और उनका सकेत 'पद्मावत' तथा अखरावट दोनो में किया है।

"आविद (खोजी) शरीयत की मंजिल मे 'तोबा', आदि पड़ावो को पार करके 'इश्क' के मुकाम पर प्रथम मंजिल समाप्त कर देता है। इसके पश्चात् इश्क को लेकर 'सालिक' जहद करते हुए तरीकत की दूसरी मंजिल को 'म्वारिफ' मुकाम पर पूर्ण करता है। अब 'म्वारिफ' के पार आरिफ वज्द प्राप्त करता हुआ 'हकीक' के मुकाम पर तृतीय मंजिल समाप्त करता है। तदुपरान्त 'हक' वस्ल को प्राप्त कर 'फना' के मुकाम पर अपनी यात्रा समाप्त कर देता है। इस यात्रा के समाप्त होने पर उसे शाश्वत आनन्द (बका) की प्राप्ति हो जात है जो सूफियों का ध्येय है।"—डा० जयदेव

इस यात्रा का विवरण निम्नांकित चार्ट से कुछ अधिक सरलता से समझा जा सकता है —

क्रम सख्या	अवस्था	लोक	यात्री की सज्ञा	मुकामात		
				प्रारम्भ	मध्य	अन्त
१	शरीयत	नसूत	मोमिन	अब्द	—	इश्क
२	तरीकत	मलकूत	सालिक	इश्क	जहद	म्वारिफ
३	मारिफत	जबरूत	आरिफ	म्वारिफ	वज्द	हकीक
४	हकीकत	लाहूत	हक	हकीक	वस्ल	फना

कुछ लोग अन्तिम अवस्था 'बका' मानते हैं, जो 'फना' के पश्चात् प्राप्त होती है, और अन्तिम लोक 'हाहूत' बताते हैं।

प्रश्न २४—अखरावट में सूफी दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा आखिरी कलाम में निर्णय के दिन का वर्णन है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अखरावट जायसी का सिद्धान्त ग्रन्थ और उनकी अन्तिम कृति है। इसमें उनके दार्शनिक विचारों को वाणी मिली है। उनका चिन्तक मन अपने गम्भीरतम स्वरूप में प्रकट हुआ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस दार्शनिक काव्य ग्रन्थ में उनके दर्शन का स्वरूप क्या है ? क्या सूफी दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही कवि का प्रमुख लक्ष्य रहा है ? ग्रन्थ का आद्योपांत मनन करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि अखरावट का दर्शन विभिन्न दर्शनों के सार का नवनीत है। उसमें अनेक दर्शन के तत्व आकर मिले हैं परन्तु प्रधानता सूफी दर्शन की है। इसका प्रमुख कारण यही है कि जायसी एक सूफी मुसलमान भक्त कवि थे, फिर यह कैसे सम्भव था कि सूफियों के मूल लक्ष्य को वे भूल जाते, रक्त-गत संस्कारों से दूर चले जाते। हाँ, यह मैं अवश्य कहूँगा कि उनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अन्य सूफी कवियों से अधिक उदार तथा विशद था। वे संकीर्णता से बहुत ऊँचाई पर थे। सूफी होते हुए भी अन्य दर्शन के मूलभूत विचारों को उन्होंने उचित आदर प्रदान किया और उनसे जितना सुविधापूर्वक ग्रहण कर सकते थे ग्रहण भी किए। किसी के प्रति संकुचित भाव उनके हृदय में न थे। आइये अब प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित कवि के दार्शनिक विचारों एवं सिद्धान्तों का विवेचन कर लिया जाय।

ईश्वर जीव और सृष्टि—इस सम्बन्ध में अखरावट का कवि भारतीय वेदान्त से प्रभावित है। कवि की कल्पना है कि प्रारम्भ में केवल एक महाशून्य था और कुछ नहीं था उस महाशून्य में ईश्वर व्याप्त था। उसी महाशून्य से सृष्टि की रचना हुई। इस्लामी रवायतों (कथाओं) में यह है कि महाशून्य

रूपी अल्लाह् ने कहा—'कुन्' (अर्थात् प्रकाश हो) और प्रकाश हो गया। अखरावट का कवि भी कहता है

गगन हुता, नहिं महि हुती, हुते चद नहिं सूर।
ऐसह अन्धकूप महँ, रचा मुहम्मद नूर॥

उस अल्लाह (साईं, आदि गोसाईं) ने खेल के लिए इस सृष्टि की रचना की। चौदह भुवनो का विस्तार उसी का खेल है और उनमें वही व्याप्त है। इन भुवनो में अठारह सहस्र योनियो के सभी जीव उसी से उत्पन्न हुए हैं।

आदिहु ते जो आदि गोसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाईं॥
जस खेलेस तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा॥
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती॥

मुहम्मद नामक नूर के प्रेम बीज से श्वेत और श्याम दो अकुर निकले। श्वेत अकुर से निकलने वाला पत्र धरती बना और श्याम अकुर से निकलने वाला पत्र आकाश। तदुपरि इसी द्वैत के आधार पर सूरज-चाँद, दिन-रात, पाप-पुण्य, सुख-दुख, आनद-सताप, तथा नरक-वैकुण्ठ और झूठ सच की सृष्टि हुई। फिर उसने इबलीस का निर्माण किया तथा अपनी ही प्रतिमूर्ति के रूप में आदम का। इसके बाद चार फरिश्ते, फिर चार भूतों और अत में पँच भूतात्मक इन्द्रियों की रचना हुई। इन पच भूतो और भूतात्मक इन्द्रियों से उसने 'काया' का निर्माण किया जिसमें बीच-बीच में नव खुले द्वार रखे और दसवाँ द्वार (ब्रह्मरध्र) बद रखा। आदम की सृष्टि जब हो गई तो ब्रह्म (अल्लाह) ने इबलीस तथा अन्य फरिश्तो को बुलाया और उनसे कहा कि यह दूसरी सृष्टि है, इसकी बदगी में सर झुकाओ। सब फरिश्तो ने सर झुकाये परतु इबलीस (नारद=शैतान) ने नही। तब अल्लाह् ने उसे दशवें द्वार का रक्षक बनाया। यही से नारद का आदम से साथ हो गया और उसने मनुष्य को धर्म मार्ग से बहका कर पापी कर दिया। आदम द्वारा हौवा का सृजन हुआ। शैतान के चक्कर मे पड़कर उन्हें स्वर्ग से निकलना पड़ा और फिर

जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध बडा न्यारा है जीव की रचना ब्रह्म ने अपनी प्रभुता प्रकट करने मात्र के लिए की।

जौं उतपति उपराजै चहा। आपनि प्रभुता आपु सौं कहा ॥
रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। बरसा सहस अठारह बुंदा ॥
सोइ अंस घटै घट मेला। औ सोइ बरन-बरन होइ खेला ॥
भए आपु औ कहा गुसाईं। सिर नावहु सगरिउ दुनियाई ॥
आने फूल भाँति बहु फूले। बास बेधि कौतुक सब भूले ॥

जीव ब्रह्म के अनुरूप ही है—

बूँदहि बूँद समान, यह अचरज कासो कहौं।
जो हेरा सो हैरान, मुहम्मद आपुहि आपु महँ ॥
× × ×
दूध माँझ जस घीउ है, समुंद माँह जस मोति।
नैन मीजि जो देखहु, चमक उठै तस जोति ॥

जीव और ब्रह्म के बीच जो भिन्नता दिखाई देती है वह अज्ञान के कारण। जिस प्रकार एक बालक दर्पण मे अपने ही प्रतिबिम्ब को अन्य समझता है, वैसे ही जीव और ब्रह्म की स्थिति है—

दरपन बालक हाथ, मुख देखै दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साथ, मुहम्मद एकै जानिये ॥
× × ×
उहै दोउ मिलि एकै भयऊ। बात करत दूसर होइ गयऊ ॥

इस प्रकार ब्रह्म और जीव की एकता की स्पष्ट घोषणा कवि करता है।

ब्रह्म ही समस्त जगत एव सृष्टि का आदि कारण है—

बिना उरेहु अरंभ बखाना। हुता आप महँ आपु समाना।

वह रूप रग जाति रहित, ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी परे दार्शनिकों का निरुपाधि ब्रह्म है। वह अगम है अगोचर है, अद्वैत है।

बरन न घरति न चंनमय, बरम्ह न त्रिगुन महेस।
बजर बीज बीरो अस, आहि न रग न भेस ॥
× × ×

वा वह रूप न जाइ बखानी। अगम-अगोचर अकथ कहानी ॥

× × ×

ओहि ना बरन न जाति अजाती। चंद न सुरज, दिवस ना राती ॥

× × ×

जो किछु है सो है सब, ओहि बिनु नाहिन कोइ।
जो मन चाहा सो किया, जो चाहै सो होइ ॥

× × ×

एक से दूसर नाहि, बाहर भीतर बूझि लै।
खांडा दुइ न समाइ, मुहम्मद एक मियान महँ ॥

शरीर की रचना—व्यापक ब्रह्म जिस प्रकार सारी सृष्टि में समाया हुआ है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी। इसलिए कवि मनुष्य के शरीर में संसार की प्रतिच्छाया देखता है। यह शरीर चार फरिश्तों—मीकाईल, जिब्राईल, इसराईल तथा इसराफील—द्वारा चार तत्वों—मिट्टी, जल, अग्नि और वायु से निर्मित किया गया है और उसमें पाँच इन्द्रियो को प्रविष्ट कराया गया है—

भइ आयसु चारिहु कै नाऊँ। चारि वस्तु मेर बहु एक ठाऊँ ॥
तिन्ह चारिहू कै मन्दिर सँवारा। पाँच भूत तेहि महँ पैसारा ॥

इस शरीर रूपी मन्दिर के दस द्वार हैं किन्तु दसवाँ द्वार ब्रह्मरंध्र बन्द कर दिया गया है—

नव द्वारा राखै मँझियारा। दसँव मूँदि कै दिएउ केवारा ॥

यह शरीर जगत का एक संक्षिप्त संस्करण है—

माथ सरग धर धरती भयऊ। मिलि तिन्ह जग दूसर होइ गएऊ ॥

× × ×

सुनु चेला जस सब संसारू। ओही भाँति तुम कया विचारू ॥

कवि ने पिण्ड ब्रह्माण्ड की समानता का बड़े विस्तार मे वर्णन किया है और उस पर इस्लामी धर्म का पूर्ण आरोप किया है। इसी में स्वर्ग-नर्क, चाँद-सूरज,

दिन-रात, ऋतु-महीने, मक्का-मदीना, फरिश्ते, मुरशिद, खलीफा तथा आसमानी पुस्तकें आदि सभी कुछ विद्यमान है। संक्षेप में—

सातों दीप नवखंड, आठों दिसा जो आहि।
जो बरम्हंड सो पिंड है, हेरत अन्त न जाहि॥

कवि ने शरीर के सातो खण्डो मे सात ग्रहो की कल्पना की है। इस शरीर निर्माण का प्रमुख कारण यह है कि जीव उसमें रहते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार कर ले।

साधना—अखरावट में वर्णित साधना, सूफी-साधना है। सूफी साधना मूलत प्रेम और विरह की साधना है। 'साधक को अपने भीतर बिछुड़े हुए प्रियतम (अद्वैत स्थिति, अल्लाह) के प्रति 'प्रेम की पीर' जगानी पड़ती है।' किसी समय जीव और ब्रह्म एक ही थे। न जाने कब किस कारण उनमें भेद उत्पन्न हो गया। तभी से जीव उस ब्रह्म से एकाकार होने के लिए प्रतिपल तड़पा करता है।

हुता जो एकहि संग, औ तुम्ह काहे बीछुरे॥
अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाई किछु॥

वस्तुत. यह तरंग प्रेम की ही तरग है। परन्तु उस परम प्रेममय को प्राप्त कर लेना सरल नहीं। वैसे तो उसे प्राप्त करने के लिए अनेक मार्ग हैं यहाँ तक कि असंख्य हैं—

विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन-रोआं जेते॥

परन्तु एक सच्चे मुसलमान की भांति जायसी का पूर्ण विश्वास था कि इन असंख्य मार्गों में सर्वाधिक सहज और सरल मार्ग मुहम्मद साहब का है—

तेहि महँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनो जग छाज बड़ाई।
सो बड पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा॥
लिखि पुरान विधि पठवा सांचा। भा परवान दुऔ जग वांचा।
सुनत ताहि नारद उठि भागे। छूटे पाप पुन्नि सुनि लागे॥

वह मारग जो पावै, सो पहुँचे भव-पार।
जो भूला होइ अनतेंहि, तेहि लूटा बट-मार॥

सूफियों के अनुसार कुरान एक पवित्र ग्रथ था और मुहम्मद साहब एक महान् पुरुष थे। इसलिए वे उनका आदर तो करते थे परन्तु इस्लाम की तरह विश्वास नही। ईश्वर की सर्व व्यापकता एव अद्वैतता में उन पर अद्वैत का प्रभाव स्पष्ट था। प्रपच के कारण ही जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न अनुभव करता है। इस प्रपच से मुक्त होने के लिए जायसी ने सूफीमत की चारो अवस्थाओ और सातो मुकामात का साकेतिक विवेचन किया है। देखिए वे स्पष्ट कहते हैं कि बिना शरीयत के अनुसरण के साधक अपने ध्येय को कभी प्राप्त ही नही कर सकता। उसके अनुसरण के पश्चात् ध्येय प्राप्ति का पूर्ण विश्वास हो जाता है।

सांची राह शरीयत, जेहि विस्वास न होइ।
पांव राखि तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचे सोइ॥

× × ×

राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत पार पहूँची॥

× × ×

सात खण्ड और चार नसेनी। अगम पड़ाव पँथ तिरबेनी।

× × ×

बाँक चढ़ाव सात खण्ड ऊँचा। चारि बसेरे जाइ पहूँचा॥

सूफीमत में गुरु की महत्ता कितनी होती है यह बताने की आवश्यकता नही। अखरावट का कवि भी इसे भली-भाँति जानता है और उसे यह पता है कि प्रेम के इस अगम मार्ग पर गुरु की बिना विशेष अनुकम्पा के कोई अग्रसर नही हो सकता। इसलिए वह कहता है —

दा-दाया जाकँह गुरु करई। सो सिख पथ समुझि पग धरई॥

× × ×

तौं वह चढ़ै जो गुरु चढ़ावै। पांव न डिगै, अधिक बल आवै॥

जो विना गुरु की सहायता के आगे बढता है वह अवश्य ही पथ-भ्रष्ट हो जाता है—वह शैतान के जाल में फँस जाता है—

जो अपने चल चढ़ि कै नाघा। सो खसि परा टूटि गइ जांघा ॥
नारद दौरि संग तेहि मिला। लेइ तेहि साथ कुमारग चला ॥

अस्तु गुरु-कृपा का सयोग परम आवश्यक और अत्यन्त सुखकर है —

जेइ पावा गुरु मीठ, सो सुख मारग मँह चलै।
सुख आनन्द भा डीठ, मुहम्मद साथी पौढ़ जेहि ॥

प्रियतम का मार्ग वडा ही कठिन है, स्वय को खोकर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोए सव जाइ।
देखहु बूझि विचार मन, लेहु न हेरि हेराइ ॥

जिन्हे ऐसा करने पर सिद्धि मिल जाती है उनके लिए एक वड़ा कड़ा प्रतिवन्ध है कि वे अपनी सिद्धि को प्रकट नहीं कर सकते, यदि प्रकट कर दें तो साधना भग हो जाय। इसलिए जो सफल हो जाता है वह चुप ही रहता है।

जो जानै सो भेद न कहई। मन मँह जानि बूझि चुप रहई ॥

कवि ने साधक को मन वचन कर्म से अत्यन्त ही पवित्र सयमित रहने का उपदेश दिया है।

जायसी ने नाथ सम्प्रदाय से अनेक वातें ज्यो की त्यों ग्रहण कर ली है और उनके पारिभाषिक शब्दो को अपनी साधना में मिला अपने सूफीमत को एक विचित्र स्वरूप प्रदान किया है। जायसी की यह देन भारतीय सूफीमत की एक विशिष्टता वन गई। जायसी की साधना समन्वयात्मक गुणो से भरपूर है।

इस प्रकार हम देखते हैं अखरावट में सूफी दर्शन के सिद्धांतो की प्रधानता है। उसे ही केन्द्र मानकर कवि ने अपने दार्शनिक सिद्धातों का विवेचन किया है। जैसे "अखरावट मे जायसी किसी सिद्धांतवाद मे वँध जाना नहीं चाहते। वे योग उपनिषद अद्वैतवाद, भक्ति और इस्लामी एकेश्वरवाद से वहुत कुछ ग्रहण करते है। उनके लिए कुछ भी अग्राह्य नहीं है, यदि वह उनमे प्रेम की पीर जगाने में सफल हो सके। अलग-अलग पंथों की अनेक साधनायें, अनेक

विचारावलियां, अनेक सूक्तियां जायसी के धर्मभाव में मिलकर उससे इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि चमत्कृत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वैत) योग (हठयोग, चक्रभेद और आनन्दवाद) और सूफी इस्लामी सिद्धान्तों का समन्वयात्मक एकीकरण जायसी की विशेषता है।"

(डा० रामरतन भटनागर)

आखिरी कलाम—आखिरी कलाम इस्लामी युवक जायसी द्वारा खींचे गए कयामत के दिन का चित्र उपस्थित करता है। इसकी कथा वस्तु का विस्तृत विवेचन जायसी की कृतियो वाले अध्याय में मैं कर चुका हूँ। यहाँ पर कुछ प्रमुख स्थलो का उदाहारण देकर मैं मूल कथावस्तु का सकेत मात्र करूँगा।

जिस समय जायसी ने इस ग्रन्थ की रचना की उस समय वे सूफीमत के रग में नही रँगे थे। कुरान और हदीसो पर विश्वास रखते थे। इसी नाते कट्टर मुसलमान की भाँति उन्होने मुहम्मद साहब और फरिश्तो का चित्रण प्रस्तुत किया है।

"इस्लाम ग्रथों मे महाप्रलय एव न्याय-दिवस का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि महाप्रलय मे सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश हो जायेगा। तत्पश्चात समस्त प्राणी परमात्मा के सम्मुख उपस्थित होकर अपने-अपने कृत्यों का विवरण देंगे, उनकी इन्द्रियां उनकी साक्षी होंगी। विचारक परमात्मा उनके कृत्यो के अनुसार प्रत्येक प्राणी को स्वर्ग नरक की व्यवस्था देंगे। इस विवरण में 'पुले-सरात', 'कौसर-स्नान,' शराब, हूर, आदि के प्रसग भी सम्मिलित हैं। मुसलमानों का यह भी विश्वास है कि हजरत मुहम्मद अपने अनुयायियों के पापों को परमात्मा से क्षमा करा देंगे। खुदा उस वक्त कयामत के लिए कहेगा "ऐ मुहम्मद जिनको तुमने पेश किया वे तुम्हें जानते हैं मुझे नहीं जानते"
—आचार्य शुक्ल।

"यह सूफियों की धारणा है। सारांश यह है कि कयामत का होना, प्राणियों का उठना, पुले-सरात को पार करना ईश्वर के समक्ष उपस्थित होना रसूल उम्मत को क्षमा प्रदान तथा शाश्वत स्वर्ग विहार—ये मूल बातें धार्मिक ग्रथों से ली गई हैं। इनके अतिरिक्त ४० दिन अग्नि उपल वर्षण

४० दिन जल वर्षण, ४० वर्ष तक ईश्वर का एकांत एवं विचार, प्राणियों का नंगे वदन तथा तालू पर आंख होना, अन्य पैगंबरों के पास जाकर रसूल का दैत्य प्रदर्शन, फातिमा की खोज, उसका क्रोध, खुदा की रसूल पर धौंस, रसूल का फातिमा को समझाना, दावत विशेषताएँ ईश्वर दर्शन, दो दिन तक बेहोश पड़े रहना आदि विवरण कवि-कल्पना प्रसूत है।"— डा० जयदेव

अब कुछ उदाहरण लीजिए —

प्रलय का दृश्य—

जबहिं अंत कर परलै आई। धरमी लोग रहे ना पाई॥
जारहिं माया मोह सब केरा। मच्छ रूप कै आयहि बेरा॥
धूम बरन सूरज होइ जाई। कृस्न बरन सब सिष्टि देखाई॥
जो रे मिले तेहि मारै, फिरि-फिरि आइकै गाज।
सब ही मारि 'मुहम्मद' भूज अरहिता राज।

× × × ×

पुनि मैकाइल आयसु पाये। अनवन भाँति मेघ बरसाये॥
पहिले लागै परै अगार। धरती सरग होइ उजियार॥
लागी सबै पिरिथिमी जरै। पाछे लागे पाथर परै॥
जिया जंतु सब मरि घटे, जिता सिरजा संसार।
कोउन रहे मुहम्मद, होइ बीता संसार।

× × × ×

जिबराइल पाइब फरमानू। आइ सिष्टि देखब मैदानू॥

× × × ×

मकाइल पुनि कहब बोलाई। बरसौ मेघ पिरिथिमी जाई॥

× × × ×

पुनि इसराफील फरमाये। फूंकै सब संसार उड़ाए।

× . × × ×

अजराइल कह वेगि बोलाए। जीव जहाँ लगि सबै बोलाई।

और फिर—

विचारावलियाँ, अनेक सूक्तियाँ जायसी के धर्मभाव में मिलकर उससे इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि चमत्कृत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वैत) योग (हठयोग, चक्रभेद और आनन्दवाद) और सूफी इस्लामी सिद्धान्तों का समन्वयात्मक एकीकरण जायसी की विशेषता है।"

(डा० रामरतन भटनागर)

आखिरी कलाम—आखिरी कलाम इस्लामी युवक जायसी द्वारा खीचे गए कयामत के दिन का चित्र उपस्थित करता है। इसकी कथा वस्तु का विस्तृत विवेचन जायसी की कृतियो वाले अध्याय में मै कर चुका हूँ। यहाँ पर कुछ प्रमुख स्थलो का उदाहारण देकर मैं मूल कथावस्तु का सकेत मात्र करूँगा।

जिस समय जायसी ने इस ग्रन्थ की रचना की उस समय वे सूफीमत के रग में नहीं रँगे थे। कुरान और हदीसो पर विश्वास रखते थे। इसी नाते कट्टर मुसलमान की भाँति उन्होने मुहम्मद साहब और फरिश्तो का चित्रण प्रस्तुत किया है।

"इस्लाम ग्रथों मे महाप्रलय एव न्याय-दिवस का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि महाप्रलय मे सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश हो जायेगा। तत्पश्चात समस्त प्राणी परमात्मा के सम्मुख उपस्थित होकर अपने-अपने कृत्यों का विवरण देंगे, उनकी इन्द्रियाँ उनकी साक्षी होंगी। विचारक परमात्मा उनके कृत्यो के अनुसार प्रत्येक प्राणी को स्वर्ग नरक की व्यवस्था देंगे। इस विवरण में 'पुले-सरात', 'कौसर-स्नान,' शराब, हूर, आदि के प्रसग भी सम्मिलित हैं। मुसलमानों का यह भी विश्वास है कि हजरत मुहम्मद अपने अनुयायियों के पापों को परमात्मा से क्षमा करा देंगे। खुदा उस वक्त कयामत के लिए कहेगा "ऐ मुहम्मद जिनको तुमने पेश किया वे तुम्हें जानते हैं मुझे नहीं जानते"
—आचार्य शुक्ल।

"यह सूफियों की धारणा है। सारांश यह है कि कयामत का होना; प्राणियों का उठना, पुले-सरात को पार करना ईश्वर के समक्ष उपस्थित होना रसूल उम्मत को क्षमा प्रदान तथा शाश्वत स्वर्ग विहार—ये मूल बातें धार्मिक ग्रथों से ली गई हैं। इनके अतिरिक्त ४० दिन अग्नि उपल वर्षण

४० दिन जल वर्षण, ४० वर्ष तक ईश्वर का एकांत एवं विचार, प्राणियों का नंगे वदन तथा तालू पर आंख होना, अन्य पैगंबरों के पास जाकर रसूल का दैत्य प्रदर्शन, फातिमा की खोज, उसका क्रोध, खुदा की रसूल पर धोंस, रसूल का फातिमा को समझाना, दावत विशेषताऐं ईश्वर दर्शन, दो दिन तक बेहोश पड़े रहना आदि विवरण कवि-कल्पना प्रसूत है।"— डा० जयदेव

अब कुछ उदाहरण लीजिए —

प्रलय का दृश्य—

जबहिं अंत कर परलै आई। धरमी लोग रहैं ना पाई ॥
जारहिं माया मोह सब केरा। मच्छ रूप कै आयहिं बेरा ॥
धूम बरन सूरज होइ जाई। कृस्न बरन सब सिष्टि देखाई ॥
जो रे मिले तेहि मारैं, फिरि-फिरि आइकैं गाज।
सब ही मारि 'मुहम्मद' भूज अरहिता राज।

× × × ×

पुनि मेकाइल आयसु पाये। अनवन भाँति मेघ बरसाये ॥
पहिले लागैं परैं अंगार। धरती सरग होइ उजियार ॥
लागी सबै पिरिथिमी जरैं। पाछे लागे पाथर परैं ॥
जिया जंतु सब मरि घटे, जिता सिरजा संसार।
कोउन रहै मुहम्मद, होइ बीता ससार।

× × × ×

जिबराइल पाइब फरमानू। आइ सिष्टि देखब मैदानू ॥

× × × ×

मकाइल पुनि कहब बोलाई। बरसी मेघ पिरिथिमी जाई ॥

× × × ×

पुनि इसराफील फरमाये। फूंके सब ससार उड़ाए।

× × × ×

अजराइल कह बेगि बोलाए। जीव जहां लगि सबै बोलाई।

और फिर—

चालिस वरिस जबहिं होइ नै हैं। उठिहि मया पहिले सब अैहैं ।।
मयामोह कै किरपा आये। आपुहि कहे आपु फरमाये ।।
मै संसार जो सिरजा एता। मोर नांव कोऊ नहिं लेता ।।
जतने परे अब सबहिं उठावो। पुल सेरात कै पथ रगावो ।।

इस प्रकार कथा आगे चलती है। सम्पूर्ण ग्रथ के अवलोकन से यह ज्ञा होता है कि इस्लाम के अनुसार कयामत के दिन का जो वर्णन है जायसी 'आखिरी कलाम' में उसे ही प्रमुखता दी है। हाँ अपनी ओर से काल्पनि तथ्य जो उन्होने जोडे हैं, वे उनकी मौलिक उपज के अन्तर्गत आते हैं। आखिर कलाम में जायसी का एक कट्टर इस्लामी मुसलमान का ही स्वरूप प्रमुख रू से प्रकट हुआ है। समन्वयात्मक प्रवृत्ति के तो वे थे ही, जो कि उस युग क एक विशेषता थी। प्रारम्भिक कृति होने के नाते कवि के अपरिपक्व विचार और सिद्धातो को ही उसमें वाणी मिली है।